अनुसधान का
व्यावहारिक स्वरूप

लेखिका की अन्य रचनाएँ

- आधुनिक हिंदी कविता में मनोविज्ञान
- स्वामी रामतीर्थ और उनकी कविता
- नैतिक शिक्षा
- सती शिवा सुंदरी

अनुसंधान का व्यावहारिक स्वरूप

[Practical aspect of Research]

लेखिका

डॉ० उर्वशी जे० सूरती

रीडर एवं अध्यक्ष,

हिन्दी विभाग,

एस० एन० डी० टी० महिला विद्यालय,

बम्बई २०

●

प्रकाशक

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर (प्रा०) लिमिटेड,

हीराबाग, बम्बई ४

शाखा—ब्रज भवन २१-दरियागंज, दिल्ली ६

प्रकाशक :

यशोधर मोदी,
मैनेजिंग डायरेक्टर,
हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर (प्रा०) लि०,
हीराबाग, पो० बॉ० ३६२२,
बम्बई ४

शाखा

ब्रज भवन, दयानन्द रोड
२१-दरियागंज, दिल्ली ६

●

प्रथम संस्करण
१९७३

●

मूल्य
सत्रह रुपये

●

मुद्रक

सतीश कं० एजेंसी द्वारा
कुमार प्रदम प्रिंटिंग प्रेस,
नवीन शाहदरा दिल्ली ३२

अनुसंधित्सुओं को ।

प्रकाशकीय

हिन्दी में अनुसंधान के सैद्धांतिक स्वरूप का विवेचन करनेवाली दो एक पुस्तकें अवश्य हैं, पर अनुसंधान के व्यावहारिक स्वरूप का निरूपण एवं विशद विवेचन करनेवाली पुस्तकों का नितान्त अभाव है। प्रस्तुत पुस्तक अनुसंधान का व्यावहारिक स्वरूप (लेखिका डॉ० उर्वशी जे० सूरती) इस अभाव को पूरा करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। अनुसंधान के व्यावहारिक पक्ष से जुड़े अनेक प्रश्नों और पहलुओं को इस पुस्तक में पहली बार उठाया गया है। शोध के व्यावहारिक प्रतिमानों की खोज के सिलसिले में इस ग्रन्थ का महत्त्व असंदिग्ध है। शोध छात्रों के लिए तो यह एक अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है ही।

●

अनुक्रम

●

प्राक्कथन

सन् १९५५ की बात है जब मैंने सर्वप्रथम, 'बी० एड०' करने के बाद, 'एम० एड०' के अध्ययन हेतु अनुसंधान के क्षेत्र में कदम ही रखा था। अपनी रुचि एवं ज्ञान की पीठिका का ध्यान रखकर मैंने शिक्षा के क्षेत्र में 'पाठशाला के विद्यार्थियों के जीवन में नैतिक शिक्षा' विषय को चुना।

यों तो स्नातकोत्तर उपाधि के हेतु अध्ययन करने में अनेक पी एच० डी० के शोध प्रबन्धों को पढ़ना पड़ता है। पर उस समय शोध प्रबन्धों की गवेषणा शैली पर ध्यान उलझ कर रह जाता है। मौलिक विचारों तथा उपलब्ध सामग्री के सम्मिश्रण से शोध के नए मान दण्डों की स्थापना की दुरूह प्रक्रिया का अनुभव मुझे तभी हुआ। अनुसंधान की वैज्ञानिक प्रक्रिया भी उसी के दौरान समझ में आई। सन् १९५७ में डा० मधुरीबेन शाह (म्युनिसिपल कमिश्नर इन एजुकेशन) के मार्ग-दर्शन में एम०एड० का अनुसंधान विषयक मेरा प्रथम प्रयोग यशस्वी हुआ।

अनुभव हुआ कि अनुसंधान पद्धति पर कोई अच्छी पुस्तक नहीं है। अभाव खटकता रहा और मेरे ही जैसे अनेक अनुसंधित्सुओं की समस्याएं मेरे सामने समय समय पर उपस्थित होती रहीं। सन १९६२ में पी एच० डी० की उपाधि मुझे मिली और सन १९६६ में अपने विश्वविद्यालय में शोध छात्रों की मैं मार्गदर्शिका नियुक्त हुई। तब भी अनुसंधान पद्धति' पर कोई उपयोगी पुस्तक नहीं दीखी।

अपने अनेक विद्यार्थियों को मैंने हिन्दी की इस विषय से सम्बन्धित दो पुस्तकें 'अनुसंधान का स्वरूप' तथा 'अनुसंधान पद्धति' और अंग्रेजी की 'सेंडस की साहित्य के इतिहास में अनुसंधान पद्धति' पढ़ने को दी हैं, पर इनमें नितान्त सैद्धान्तिक दृष्टि से विषय का प्रतिपादन हुआ है। अतः शोध छात्रों के लिए, जिन्हें शोध के 'व्यावहारिक' पक्ष में उलझना होता है उनकी उपयोगिता बहुत सीमित है।

अतः सन् १९६९ में अपने विश्वविद्यालय को प्रेरित करके अनुसंधान-पद्धति

व्याख्यान माला का आयोजन करवाया। शिक्षाविदो एव विशेषज्ञो को इस काय के लिए आमन्त्रित किया गया। हिन्दी म अनुसधान प्रक्रिया पर मैंने जो व्याख्यान दिये थे उनका सशोधित सम्बन्धित स्वरूप प्रस्तुत है। हिन्दी म इस विषय की कुल पाँच पुस्तकें मिलती हैं पर मेरा दृष्टिकोण इन सब से अलग है।

अनुसधान काय के व्यावहारिक स्वरूप का निरूपण प्रत्येक सिद्धान्त को लेकर विस्तार से हो सकता है। इस क्षेत्र म अभी बहुत कुछ करना शेष है, इस दिशा म बढ़ाया मेरा यह प्रथम चरण आशा है शोधका का ध्यान आकृष्ट करेगा।

—उवशी जे० सूरती

मकर सक्रान्ति, १९७३

तथ्यानुसंधान और तथ्याख्यान | १

तथ्यानुसंधान का स्वरूप

तथ्यानुसंधान का विषय अत्यन्त विशाल और गहन है। इसका परम प्रयोजन सत्योपलब्धि होने के कारण अनेक और विविध तथ्यों का संकलन, उसका परीक्षण और उसके सत्यासत्य का निर्णय एक लम्बी प्रक्रिया का निर्माण कर देता है। देखने में आता है कि एक ही व्यक्ति या विषय पर तथ्यानुसंधान करने वाले विभिन्न अनुसंधाता कभी समान तो कभी विभिन्न तथ्यों को नये-नये संदर्भों तथा रूपों में प्रस्तुत करते हैं और उनकी व्याख्या भी वैसी ही अलग-अलग होती है। एक ही तथ्य की व्याख्या दो भिन्न अनुसंधाता कभी-कभी परस्पर विरोधी अर्थों में करते हैं और उनके समर्थन में प्रयुक्त तर्कशैली हमें दोनों की प्रामाणिकता को स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है। इनके मूल में एकता का सामान्य सूत्र निहित होता है, परन्तु तात्त्विक दृष्टि के अभाव में अपूर्ण खोज के कारण बाह्य विरोधाभास का हमें भ्रम होता है। प्रमाण के अभाव में या मात्र अपनी रुचि, इच्छा, संस्कार और प्रयोजन से या राग-द्वेष से प्रेरित होकर जो तथ्यानुसंधान और तथ्याख्यान करता है, उसे कभी स्वीकृति नहीं मिल सकती। बाद के अनुसंधाता उन उपलब्ध तथ्यों की निराधारता सिद्ध करके वैज्ञानिक अनुसंधान प्रणाली के आधार पर उन तथ्यों पर नवीन प्रकाश डालते हैं और वस्तु का सत्य के निकट ले जाने में प्रयत्नशील रहते हैं।

इस प्रकार नये तथ्यों की खोज और उपलब्ध तथ्यों का पुनराख्यान अनुसंधान का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है जो विवेक और तटस्थता के प्रकाश में ही सम्पन्न हो सकता है। स्वतन्त्र रूप में देखा जाय तो तथ्य जड़ है परन्तु मानव-जीवन के स्पर्श से उसमें चैतन्य का ऐसा आविर्भाव होता है कि एक ही तथ्य नित्य-नूतन अर्थ देने में समर्थ हो जाता है। ऐसा साधक तथ्य अनुसंधान के मार्ग को प्रशस्त करता है।

अनुसंधाता यदि तथ्य के संग्रह मात्र में लगा रहे और अन्य स्रोतों में न उलझ जाय तो उसे तथ्य में ही एक उचित मार्गदर्शन मिल जाता है। वह तथ्य पर निर्भर रहे, तथ्य उसकी इच्छा पर निर्भर न रहे यह आवश्यक है।

तथ्य के प्रकार

मुख्यतः तथ्य के दो प्रकार हैं - विहित और निहित। इनको स्थूल और सूक्ष्म, बहिरंग और अंतरंग या प्रकट और गुप्त भी कहा जाता है। मात्र प्राचीन समय के लेखक और उनकी रचनाओं का ही तथ्यानुसंधान संभव है यह धारणा अनुचित है। प्राचीन लेखकों संबंधी तथ्यानुसंधान में खोज कार्य का उत्तरोत्तर विकास होता है और साथ साथ उन पर नया नया प्रकाश पड़ता है और स्थूल परन्तु लुप्त तथ्य उपलब्ध होते हैं यह अनुभव में सिद्ध हो चुका है और ऐसा खोज कार्य आवश्यक भी है। परन्तु लेखक के जीवन के घटनागत तथ्यों का अनुसंधान ही पर्याप्त नहीं है। उसके जीवन की बाह्य रूपरेखा तो खोज का आधार मात्र है। इसी प्रकार अमुक लेखक ने कब और कितनी रचनाएं लिखी इस तथ्य की खोज लेखक के व्यक्तित्व दर्शन की आधार भूमि प्रस्तुत करती है। ये सारे तथ्य बहिरंग होते हैं।

बहिरंग तथ्य से अधिक महत्त्वपूर्ण अन्तरंग तथ्य होते हैं जो तात्त्विक ज्ञान के कारण सत्य प्रकाशन में प्रत्यक्ष रूप से सहायक होते हैं। इसी को अनुसंधाता की वास्तविक उपलब्धि कहते हैं और यही उसके कार्य का मुख्य उद्देश्य है।

तथ्य साधन है या साध्य ?

तथ्य साधन है और तात्त्विक साध्य। तथ्य अनुसंधाता को कहीं संकेत या सूचना देता है तो कहीं निर्देश और मार्गदर्शन। प्रारम्भिक स्थूल बहिरंग तथ्य साधन बन कर अन्तरंग सूक्ष्म तथ्यों की साध्य रूप में अनुसंधाता को उपलब्धि करा देते हैं। अनुसंधाता का बहिरंग तथ्यानुसंधान का कार्य पूर्ण होने पर साध्य रूप में उपलब्ध अंतरंग तथ्य लेखक या रचना के मर्म तक पहुँचने के सोपान बनते हैं। उत्तरोत्तर सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथ्यों की पूर्ण उपलब्धि होने तक साधन साध्य का यह क्रम व परिवर्तन गतिमान रहता है।

यदि अनुसंधाता के लिए लेखक का व्यक्तित्व दर्शन अंतिम प्रयोजन है तो तथ्यानुसंधान के क्रम में वह साध्य सिद्ध होगा। परन्तु यदि कोई अनुसंधाता किसी एक विशिष्ट लेखक के व्यक्तित्व दर्शन तक न रुककर लेखक मात्र की सर्जक प्रतिभा के रहस्यों का उद्घाटन करना चाहता है तो भिन्न भिन्न लेखकों का व्यक्तित्व दर्शन अन्तरंग होते हुए भी साधन होगा और उसका साध्य विशुद्ध तात्त्विक और अंततम होगा जो उसे अतिमानव के धरातल पर पहुँचाने में और ब्रह्मानंद सहोदर काव्यानंद की अनुभूति का विषय बनाने में समर्थ होगा। सम्भव है, इस कक्षा पर

पहुँचने वाला इस साध्य को भी साधन बनाकर परम स्रष्टा की खोज अर्थात आत्मा परमात्मा की एकता के अनुभव को साध्य रूप म प्राप्त करने के लिए प्रवृत्त हो। यदि लेखक का व्यक्तित्व दशन अर्थात अनुसधाता और लखक की आत्मैक्यता साध्य है तो परमात्मैक्य बोध उसका परम साध्य। पर तु कभी कभी तत्त्व का महत्त्व देने से तथ्य कमजोर पड जाता है। यथा "आचाय रामचन्द्र जी शुक्ल का आलोचना-पद्धति म तत्त्वदशन के प्रति इतना प्रबल आग्रह था कि व तथ्यों की अधिक चिता नहीं करते थे। उनके इतिहास' तथा भूमिकाओं एव सद्धान्तिक निबन्धों मे तथ्याधार स्पष्टत दुबल है। आत्मा का अनुसधान ही उनका ध्येय रहा है। तथ्यों के सकलन और सांख्यिकी पद्धति के अवलम्बन के प्रति उनकी रुचि नहीं थी।"[1]

सत्योपलब्धि की दो विधियाँ

तथ्यानुसधान की क्रमिक प्रक्रिया क माध्यम स सत्योपलब्धि की दो विधियाँ हैं—दशन और विज्ञान।

दशन—स्वरूप स दर्शन म तरग और आध्यात्मिक प्रकृति का ज्ञान के कारण उसकी गति म ऋजुता सरलता और त्वरा रहती है। वह लक्ष्य पर सीधी पहुँचने वाली होने क कारण शीघ्र परिणाम देती है परन्तु उसम तथ्यात्मक प्रमाण का अभाव रहने के कारण भ्रांति का खटका रहता है। अनुसधाता म विवेक और तटस्थता का अभाव हो तो मान हुए सत्य का दशन भी बहुधा विकृत रूप म होता है।

विज्ञान—इसकी प्रकृति बहिरग और तथ्यात्मक होने के कारण उसकी गति क्लिष्ट शिथिल और विलम्बित होती है। इसम भ्रांति की सभावना कम रहती है और ठोस आधार तथा पुष्ट प्रमाण के बल पर अनुसधान का काय आग बढता है, परन्तु अनुसधाता तथ्य सकलन म इस हद तक उलझ जाता है कि तात्त्विक दृष्टि का लोप हो जाय तो आश्चय न होगा।

निष्कर्ष रूप म यही स्थापित होता है कि अनुसधाता की दृष्टि दशन और विज्ञान म समन्वयात्मक रह, जिससे अन्तर्दृष्टि की गति अवरुद्ध न हो, शरीर की जाँच मे कहीं हृदय खो न जाय तथा हृदय की जाँच म कहीं शरीर स उसका विच्छेद न हो जाय। एकांगी होने पर दोनो मे असगति का भय है।

अनुसधान और आलोचना

अनुसधान अर्थात ज्ञानवृद्धि के लिए अनुपलब्ध की खोज और उपलब्ध का परीक्षण, अर्थात लक्ष्य बाँधना निशाना लगाना। आलोचना याने ज्ञान की जानकारी

---

१ अनुसधान की प्रक्रिया, स० डॉ० सावित्री सिन्हा, पृ० ५०

के लिए प्रस्तुत विषय का भाग और स्वरूप निर्धारित करता। आलोचना से अनुसंधान का कार्य दुहरा है। उसमें तथ्य के परीक्षण में व्याख्या की क्रिया सम्मिलित है। यह व्याख्या आलोचना में भी रहती है। किन्तु वह आत्मगत किए होती है परन्तु आलोचक मानस के साथ तादात्म्य होने से जिस रागात्मक प्रतिक्रिया से सचालित होता है उसका अनुसंधानगत व्याख्या में अभाव रहता है। ऐसी स्थिति में साहित्य मर्मज्ञ और सहृदय रसिक अनुसंधाता ही इस कार्य का सम्यक और सफल बना सकता है।

अनुसंधान कार्य का इतिहास देखा जाय तो समय समय पर उस विषय में बदलती हुई मान्यताओं और तदनुसार व्यावहारिक रूप में किए हुए प्रयत्न बताते हैं कि उसकी परिभाषा में विकास रहा है। प्रारम्भ में स्थूल इतिवृत्त और पाठानुसंधान को अनुसंधान की स्वीकृति भी मिली परन्तु आलोचना से उसे असम्पृक्त ही माना गया। किन्तु कालान्तर में यह रूप अपूर्ण मालूम हुआ और उसकी पूर्ति के हेतु उसके साथ आलोचना का स्वरूप जोड़ा गया। धीरे धीरे आलोचना का प्रभाव इतना बढ़ा कि वह अनुसंधान पर छा गया। तब इस अतिवाद से इसे मुक्त करके व्यवस्थित करने के लिए अनुसंधान और आलोचना के क्षेत्र को पृथक पृथक बनाया गया। इस विभाजन से अनुसंधान में तथ्य संकलन का महत्व बढ़ गया। तथ्य संकलन के लिए आवश्यक अन्तःसाक्ष्य, बहिस्साक्ष्य, जनश्रुति और अन्य सहायक प्रमाणों की शास्त्रीय व्यवस्था हुई। फलस्वरूप तथ्याख्यान सत्य के अधिक निकट आ गया। क्रमशः उसमें तटस्थता का आग्रह बढ़ा और व्यक्तिगत रुचि तथा राग द्वेष से वह मुक्त हो गया।

परन्तु तथ्याश्रित प्राधान्य कार्य तात्विक सत्य से दूर पड़ गया। अनुसंधाता तथ्य के जाल में घिरा रहा। साहित्य की आत्मा रस से हीन हो जाने के कारण उसमें मानव जीवन का संस्पर्श न रहा और वह मात्र पांडित्य का आडम्बर हो के रह गया। साहित्य मर्मज्ञ की रसिक दृष्टि ऐसी अवरुद्ध हो गई कि वह भाव पक्ष के साथ साथ उसके बुद्धि वैभव से भी हीन हो गई। कला पक्ष को समृद्ध करने के प्रयत्न होने लगे। साहित्य के अन्तस्तल के तथ्य प्रेमी नये आलोचक छायावादी आलोचना करने लगे। अब आलोचक तत्त्वप्रधान अतिवाद से मुक्त होकर उससे भी अधिक घातक अतिवाद में जा फँसा। उसके लिए सत्योपलब्धि कठिन हो गई। अधुना देखा जाता है कि अनुसंधान कार्य में अनुसंधान का तत्त्व शून्यवत रहता है और शुद्ध आलोचना को अनुसंधान बनाया जाता है।

इस वास्तविक परिस्थिति का अनुसंधान करने पर निष्कर्ष यह निकलता है कि तथ्यानुसंधान और तत्त्व दर्शन दोनों का अनुसंधान में समान महत्त्व है। प्रत्येक अनुसंधाता तथ्य संकलन करने के बाद उस पर शास्त्रीय शैली से विचार करे और

सत्य के निकट पहुँचने के लिए एकाग्रता से मनन करे। विचार की यह आतरिक प्रक्रिया उसे मानसी प्रत्यक्षीकरण की स्थिति में पहुँचाने वाली होनी चाहिए, जहा लेखक और विचारक के व्यक्तित्व की युति होती है।

तथ्यानुसधान और तथ्याख्यान

तथ्य के दो प्रकार बताये गये—प्रकट और गुप्त, बहिरग और अतरग, विहित और निहित। इसी कारण तथ्याख्यान भी दो प्रकार का हो जायगा—बहिरग तथ्यो की व्याख्या और अतरग तथ्यो की व्याख्या। प्रारम्भ मे बहिरग तथ्यो का सकलन और उनकी व्याख्या के बाद अतरग तथ्यो का सकलन और उनकी व्याख्या में प्रवृत्त होना अभीष्ट है। बहिरग तथ्यो के सकलन और व्याख्या म निम्नलिखित बातो पर ध्यान देना होगा—

(क) लेखक का जीवन-वृत्त

(ख) लेखक की प्रामाणिकता

(ग) रचना की प्रामाणिकता

(घ) रचना काल का निर्णय

सकलन की व्याख्या की इस विधि को सम्पन्न करने के लिए अन्त साक्ष्य, बहिर्साक्ष्य, जनश्रुति और अन्य सहायक प्रमाणो का आधार लिया जाता है।

अन्त साक्ष्य—कविरचित ग्रथो के अतगत उल्लिखित अपने पूवज, अपने जीवन तथा जीवन काल म घटित घटनाओ की सहायता से मुख्यत उसका वश-परिचय उसकी विद्वत्ता एव अध्ययन, आश्रयदाता, रचना-काल तथा देशकाल का निर्णय हो जाता है। प्राचीन काल मे हमारे लेखक की प्रवृत्ति आत्मचरित्र लिखने की दिशा मे बिल्कुल न रहने के कारण प्रसगवश उल्लिखित सदर्भो म व्यक्तिगत परिचय पूणत प्राप्त नही हो पाता। ऐसी स्थिति मे बाह्यसाक्ष्य का आधार लेना पडता है।

बाह्यसाक्ष्य– लिखितस्वरूप मे उपलब्ध होते हुए भी इसम असदिग्ध प्रमाणिकता का अश कम और अनुमान अधिक रहता है। समकालीन तथा परवर्ती लेखको के ग्रथो में से कवि के जीवन विषयक अनेक प्रकार के विवरण प्राप्त होते हैं। इन विभिन्न स्रोतो से उपलब्ध तथ्यो का सग्रह करके अनुसधाता तटस्थ चित्त से उसका अध्ययन कर, सगति लगा कर, जीवन म स्थान देने को प्रवत्त होता है। उसे इस काय में पूर्ण सावधान रहना चाहिए, क्योंकि अन्य व्यक्ति लेखक के प्रति श्रद्धा से प्रेरित हो कर प्रसिद्धि से अभिभूत होकर या भावुकतावश अतिरजित चित्र अकित करें यह पूर्ण सभव है। व्यक्तिगत सपर्क प्रत्येक व्यक्ति को प्राय नही मिलता और लेखक के जनहितकारी जीवन से प्रभावित होकर प्राय लोग बहिर्साक्ष्य के आ पर ही जीवन लिख देते हैं। जहा तक हो सके, बहिर्साक्ष्य में भी मूल स्रोत

पहुचने का और उसके आधार पर निर्णय लेने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

जनश्रुति—इसका स्वरूप मौखिक होता है। बहिर्साक्ष्य मे भी जब लेखक के जीवन का पूर्ण परिचय प्राप्त नही होता, तब जनश्रुति का आश्रय लेना पडता है। समय के प्रभाव से अनेक परिवर्तन होते हैं और तथ्य अनेक बार वास्तविकता से इतना दूर हो जाता है कि अनिरजना की सबसे अधिक सभावना रहती है। इसलिए जन श्रुतियो का सग्रह करके प्रामाणिकता की जाँच के लिए अतरतम सत्य की उपलब्धि ही अनुसधान का एकमात्र उद्देश्य होता है। जनश्रुति के मुख्य दो क्षेत्र होते है—

(१) जिस प्रदेश मे लेखक का जन्म हुआ हो।
(२) जिस प्रदेश मे लेखक ने अपना अधिकाश जीवन व्यतीत किया हो।

अन्य सहायक प्रमाण—म्युनिसिपल रिकार्ड्स, स्कूल कालेज, साहित्य के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों मे प्रसिद्ध ग्रन्थो मे प्राप्त उल्लेख, एतिहासिक घटनाओ से सम्बन्धित तथ्य, सास्कृतिक या धार्मिक क्षेत्रो मे प्राप्त तथ्य और उपयुक्त दो क्षेत्रो से सबन्धित न होते हुए भी कुछ समय के लिए जिनके व्यक्तिगत सपर्क मे आने से विशेष अनुभव प्राप्त हुए हो ऐसे व्यक्ति।

इन प्रमाणो की सहायता से तथ्याख्यान का कार्य सम्पन्न होता है।

तथ्याख्यान का स्वरूप —

शरीर और शरीरी की भाति तथ्य और सत्य परस्पर सम्बन्धित है। आतरिक सत्य की उपलब्धि बाह्य तथ्य की व्याख्या से सभव है। अविलष्ट तथ्य की एक सामान्य व्याख्या तुरन्त अर्थ दे देती है फिर उसमे आगे अनुसधान की अपेक्षा नही रहती। परन्तु साहित्य मे निहित तथ्यो की व्याख्या मे एक पूरा क्रम रहता है। जैसे शरीर और शरीरी का विवेक करके पचकोश को पार करने पर आत्मोपलब्धि होती है वैसे ही क्रमिक अर्थों को पार करने पर अन्त मे सत्योपलब्धि होती है।

परम अर्थ और सत्य अन्तिम स्थिति मे एक है परन्तु जब तक व्याख्या का व्यवहार है, अर्थ सत्य तक पहुँचने का साधन है। जहाँ सारे अर्थों का पर्यवसान हो जाय, फिर अर्थ की परम्परा आगे बढ़ने ही न पावे वह सत्य अर्थात परम अर्थ है। साहित्य के अनुसधान मे लेखक की आत्मा का साक्षात्कार अर्थात रस सप्रदाय की भाषा मे कहे तो लेखक की निर्वैयक्तिकता मे हमारे सीमित व्यक्तित्व का विलय होने पर अनुभवगम्य रसानुभूति की स्थिति पाठक के व्यक्तिगत लाभ के लिए किया गया तथ्याख्यान है। परन्तु अनुसधाता जो मात्र आत्मलाभ के लिए नही सर्वलाभ मे प्रवृत्त होता है वह प्रेय को छोड कर श्रेयवश या प्रेय और श्रेय मे अद्वैत स्थापन करते हुए इससे भी आगे बढ कर सब के लिए इस रसास्वादन को सुलभ और सुगम बनाता है। यही साहित्यानुसधान का अन्तिम और तथ्याख्यान का चरम स्वरूप है।

विहित तथ्य का अनुसंधान और उसकी व्याख्या | २

लेखक का जीवन वृत्त

लेखक के विषय में पूर्ण जानकारी पाने के लिए अध्ययन के अनिवार्य क्षेत्र —

(अ) १—लेखक के साहित्य सृजन की पृष्ठभूमि से सम्बन्धित बाह्य परिस्थितियाँ।

२—प्रेरणा तथा शक्ति देने वाली पूर्ववर्ती और समकालीन विभिन्न साहित्य धाराएँ।

३—लेखक का अपने विषय के क्षेत्र में अध्ययन।

४—लेखक की रचनाएँ।

(ब) लेखक एक व्यक्ति है और उसका व्यक्तिगत जीवन प्रायः बहुत दिलचस्प होता है। बाह्य परिस्थितियों से भी अधिक व्यक्तिगत जीवन की घटनाएँ उसके व्यक्तिगत निर्माण में प्रेरक होती हैं। जिस लेखक का समग्र अध्ययन किया जाय उसकी जीवनी अवश्य लिखी जाय।

(१) अनुसंधाता डा० नारायणदास खन्ना ने 'आचार्य भिखारीदास' के जीवन और कृतित्व का अध्ययन किया। उन्होंने इसमें उपयुक्त सब क्षेत्रों से तथ्य संग्रह किया। उनके विवेचन के मुख्य विषय थे—[1]

(क) रीतिकाल का आरम्भ—

(१) ऐतिहासिक पूर्वपीठिका

---
1 पृ० ४२-७२

(२) धार्मिक परिस्थितियाँ
(३) आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ
(४) साहित्यिक परिस्थितियाँ
(ख) रीतिकाव्य का शास्त्रीय आधार
(ग) हिन्दी में रीतियों की परम्परा
(घ) रीतिकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
(ङ) भिखारीदास के ग्रन्थ और उनकी प्रामाणिकता

लेखक का वंश परिचय

भिखारीदास के जीवन-वृत्त की दृष्टि से अन्तःसाक्ष्य का एक सुंदर प्रमाण उदाहरणस्वरूप में प्रस्तुत किया जा सकता है जिसके आधार पर अनुसंधाता ने तथ्य संग्रह किया। भिखारीदास ने अपना वंश परिचय देने की दृष्टि से एक कवित्त और एक दोहा लिखा है —

कवित्त—
अभिलाषा करी सदा ऐसो नीको होय नित्य सब ठौर दिन सब याही सेवा पर जानि ॥
नीमा लई नीच पान हलाहल ही को मत है किया पाताल निन्दा रस ही को जानि।
सेनापति देवी केर शोभा गनती को भूप पन्ना मोती हीरा हेम सोदा दास ही को जानि।
हीय पर देव पर बंदे मन रट नाउ लगा सन नग घर सीता नाथ को ला पानि ॥

इस कवित्त से दास का वंश परिचय पाने की युक्ति निम्न दोहे में बताई है—

या कवित्त अन्तवरण ल तुकान्त द्व छाँडि ।
दास नाम कुल ग्राम कहि नाम भगति रस माँडि ॥[2]

अनुसंधाता ने इसके आधार पर कवित्त की व्याख्या की—

कवि का नाम भिखारीदास कायस्थ तथा वंश बहोवार था। इनके भाई का नाम चयनलाल, पिता का कृपालदास पितामह का वीरभानु तथा प्रपितामह का रामदास था। ये यूसर प्रदेश में ट्योंगार ग्राम के नगर तायला के निवासी थे।'[3]

इसके अतिरिक्त अनुसंधाता ने लेखक के जन्म मृत्यु आश्रयदाता तथा वैयक्तिक जीवन की उपलब्ध प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत की है। इस कार्य में तीन जनश्रुतियों का आधार भी लिया गया है।

1 काव्यनिर्णय पृ० २४४
2 छन्दार्णव पिंगल, पृ० ४
3 आचार्य भिखारीदास, डा० नारायणदास खन्ना, पृ० ४

(२) एक नामधारी अनेक लेखकों में विशिष्ट लेखक

जब तक एक नाम के अनेक लेखक नहीं होते, तब तक अनुसंधान का कार्य इन तीन प्रमाणों के सहारे बड़ी सरलता से सम्पन्न होता है। परन्तु एक से अधिक लेखक एक ही नाम के हो जाने पर बड़ी सूक्ष्मता से कसौटी करके उद्दिष्ट व्यक्ति के जीवन वृत्त तथा उसकी रचनाओं का निर्णय किया जाता है। ऐसी स्थिति में जीवन-वृत्त और रचनाएँ परस्पर को प्रमाणित करने में सहायक होते हैं।

डा० नगेन्द्र ने देव और उनकी कविता पर अनुसंधान किया तो मालूम हुआ कि हिन्दी साहित्य में छह सात तो 'देव' अथवा 'देवदत्त' नामधारी कवि आते हैं। उन्होंने उन सबका अलग अलग विवरण देकर अभीष्ट देव और अन्यों के बीच के अन्तर को विषय, भाषा भाव, शैली छन्द-व्यवस्था, काव्य की उत्कृष्टता आदि अनेक दृष्टियों से परख कर स्पष्ट किया। इस स्पष्टीकरण में प्रमाण के अभाव में अनुमान से आरोपविधि पूर्वक काम लिया गया है और प्रामाणिकता के निकटतम पहुँचने वाले अनुमान को अन्तिम मान कर स्वीकार किया गया है। चर्चा का महत्वपूर्ण अंश प्रथम तीन देव कवियों के विवरण में मिल जाता है जो इस प्रकार है[1]—

(१) देव-काष्ट जिह्वा—भाषा भाव में काव्य हीन—काव्य, व्यक्तित्व और समय में अंतर।

(२) देवदत्त—समय सं० १७५२—रचना योगतत्व विषय और शैली में अन्तर।

(३) देवदत्त—जन्म सं० १७०५—ललित काव्य' छन्द के बन्धों में शिथिलता है परन्तु इनकी शैली में कुछ ऐसे स्थल हैं जिससे भ्रम हो जाय कि यह देव की आरम्भिक रचना है। उदा०

भई रहत नटको वहाँ अटकी नागर नेह।

देव को भी ऐसी उपमाएँ प्रिय थी। परन्तु 'मिश्रबन्धु' या 'खोज' में इनका उल्लेख नहीं है। ऐसी दशा में इस एक छन्द के आधार पर दो प्रकार की कल्पनाएँ की जा सकती हैं—

(१) यह छन्द देव के ही किसी प्रारम्भिक अप्राप्य ग्रंथों में से हो न हो।

(२) इसका रचयिता कोई दूसरा देवदत्त कवि था जो हमारे आलोच्य कवि से अवस्था में लगभग २५ वर्ष बड़ा था। वह भी रीतिकार कवि था और उसने भी नायिका भेद पर कोई ग्रन्थ लिखा। प्रस्तुत छन्द उसी में कलहान्तरिता के उदाहरण रूप दिया गया होगा। कविता में यह अपना उपनाम न लिख कर पूरा नाम 'देवदत्त' ही लिखता था जब कि देव के एक भी छन्द में 'देव' या 'देवजू' को छोड़ कहीं

1 पृ० १३-१५

'देवदत्त' नहीं मिलता। हमारी धारणा दूसरी ही है। इस कवि के ग्रन्थों की देव के ग्रन्थों के साथ कुछ गड़बड़ हो सकती थी परन्तु देव के ग्रन्थ स्फुट ग्रन्थों के समान नहीं हैं उनमें विशेषता [illegible] है। इसलिये यह खतरा भी नहीं रहता है।

डॉ० नगेन्द्र ने इस प्रकार अन्य देव नाम के कवियों की चर्चा करते [illegible] में निश्चय स्वरूप प्रमाणित किया कि प्रसिद्ध कवि देव का व्यक्तित्व उन सभी से पृथक था। उनका नाम देवदत्त था। यह कवित्त [illegible] में देव तथा [illegible] के परिच्छेद के [illegible] देवदत्त लिखा था। [illegible]

[illegible] गोत्र [illegible] कुल कान्यकुब्ज कमनीय।
देवदत्त कवि जगत में भये देव रमनीय॥

अपने आलोच्य कवि देव का निर्णय करने पर अनुसंधाता उसके जीवन-वृत्त का प्रामाणिक रूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। इस विषय में एक ही तथ्य पर यदि अन्तःसाक्ष्य बहिर्साक्ष्य और जनश्रुति तीनों उपलब्ध हों परन्तु तीनों में तथ्यात्मक एकता का अभाव हो तो लेखक का [illegible] अधिक प्रामाणिक होने के कारण अन्तःसाक्ष्य के रूप में स्वीकार करना चाहिए। अन्तःसाक्ष्य के अभाव में बहिर्साक्ष्य का आधार खोजना चाहिए। यह भी उपलब्ध न हो तो जनश्रुति और अन्य सहायक प्रमाणों की खोज की जाय। परन्तु उनके सहारे न मिलें तो अनुसंधाता अध्ययन की विभिन्न सामग्रियों के आधार पर अपने अनुमान से निश्चय करे यद्यपि जनश्रुति का महत्व कभी-कभी इतना व्यापक होता है कि सहायक होने के बदले बाधा नहीं करता है।

देव के जन्म के विषय में अन्तःसाक्ष्य—[1]

(१) शुभ सत्रह सौ छियालिस चढ़त सोरही वर्ष।
कढ़ी देव मुख देवता भाव विलास सहर्ष॥

उपर्युक्त दोहा भावविलास के उपसंहार रूप में लिखे हुए तीन दोहों में से दूसरा है इससे स्पष्ट है कि सं० १७४६ में देव ने सोलहवें वर्ष में पदार्पण किया था अर्थात उनका जन्म सं० १७३० ३१ में हुआ था। ठाकुर शिवसिंह ने देव का जन्मकाल सं० १६९१ लिखा है परन्तु देव की साक्षी के सामने उनका जनश्रुति पर आश्रित यह मत सर्वथा निराधार ठहरता है।

(२) वंश गोत्रादि—देव ने स्वयं अपने आप को घोसरिया ब्राह्मण कहा है। भावविलास की हस्तलिखित प्रति में इसका प्रमाण मिलता है—

घोसरिया कवि देव को नगर इटायो वास।
जीवन नवल सुभाव रस कीन्हो भावविलास॥

---

1 वही पृ० १७१

अन्त साक्ष्य के निकटतम या बहिर्साक्ष्य—

प्रपौत्र भोगीलाल द्वारा दिया गया वंश परिचय देव का कान्यकुब्ज ब्राह्मण होने का अकाट्य प्रमाण है। यथा,

काश्यप गोत्र द्विवेदि कुल कान्यकुब्ज कमनीय।

देवदत्त कवि जगत मे भये देव रमनीय॥

डा० नगेन्द्र ने प्रसिद्ध कवि देव की खोज म बडी सतर्कता बरती है और कुछ स्थापित मानदण्डों का आधार लिया है। किसी कवि की महानता का निर्णय करने म निम्नलिखित मानदण्डो को ध्यान म रखना आवश्यक है—

(१) अपने ही युग मे अन्य महान कवियो द्वारा सम्मानित।

(२) सुकवियों की भाषा के समान भाषा।

(३) परवर्ती कवियो द्वारा सादर स्मरण।

(४) परवर्ती कवियो द्वारा उसके काव्य का सकलन और कवि तथा काव्य के सामान्य विवेचन म उद्धरण।

(५) साहित्य के इतिहास म उसके महत्त्वपूर्ण स्थान की स्वीकृति।

इन मानदण्डो के आधार पर निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत कर कवि देव की महानता सिद्ध की गई है—[1]

(१) काव्यविद पंडितो और शास्त्रविद् कवियों म देव का नाम मध्ययुग स ही अत्यत आदर के साथ लिया जाता था।

(२) दास जैसे आचार्य कवि ने जिन सुकवियो की ब्रजभाषा को प्रमाण माना है उनमे देव के नाम का सादर उल्लेख है।

लीलाधर सेनापति निपट निवाज निधि,

नीलकण्ठ, मिश्र सुखदेव देव मानिए॥

—काव्यनिर्णय।

(३) इसके बाद सूदन कवि ने 'सुजान चरित्र' के आरम्भ मे अपने पूर्ववर्ती १७५ सत्कवियो को प्रणाम किया है। इस सूची में भी देव का नाम यथास्थान आता है।

(४) इनके अतिरिक्त कालिदास त्रिवेदी ने रतन हजारा म स० १७५५ के लगभग और दलपतिराय वंशीधर ने अलकार रत्नाकर मे स० १७९२ के लगभग देवकृत छन्दों को गौरव पूर्वक सत्काव्य के उदाहरणस्वरूप सकलित एव उद्धृत किया

1 पृ० १

है। ये दोनो ग्रथ देव के समय मे ही सपादित किये गये थे फिर भी दोनो मे देव की प्रतिभा की महत्वपूर्ण स्वीकृति है। इनके उपरात फिर तो जितने भी प्रसिद्ध सग्रह हुए उनमे देव को उचित स्थान मिला। जसे प्रतापसिंह के 'काव्यविलास' मे या गोकुलप्रसाद के 'दिग्विजय भूषण' मे अथवा सरदार के 'शृगार सग्रह' आदि मे। उपयु क्त तीनो ग्र थो के कर्ता या सपादक रीतिकाल के गभीर आचार्यो मे से हैं। अतएव उनका मत देव के महत्त्व पर यथोचित प्रकाश डालता है, इसमे सदेह नही। इधर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के देव अत्यन्त प्रिय कवि थे। उन्होंने मुख्यत 'शब्द रसायन' और साधारण रूप से जाति विलास के आधार पर देव के कतिपय उत्कृष्ट छदो का सकलन सु दरी सिलक नाम से प्रकाशित किया।

अनुसधाता से आशा की जाती है कि वह बहिर्साक्ष्य के अन्तगत अपने आलोच्य लेखक के पक्ष विपक्ष म उपलब्ध तथ्यो को सगृहीत करके उनके सहारे निर्णय करे। इसके लिए अन्य आलोचको, अनुसधाताओ और इतिहासकारो के ग्र थो का अध्ययन अनिवाय है। यदि ऐसा अध्ययन उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है तो उसका सक्षिप्त विवरण अपने प्रबन्ध मे देना जरूरी है। डा० नगेन्द्र ने इसी शली को अपनाते हुए देव विषयक उपलब्ध तथ्यो को इस प्रकार लिखा है—

(१) देव के प्रपौत्र भोगीलाल न अपने रसग्रन्थ—'बखतविलास' मे कविकुल वर्णन करते हुए अपने और अपने पूवज देव के वश वर्ण गोत्र आदि का निश्चत एव प्रामाणिक विवरण दिया है—

> काश्यप गोत्र द्विवेदि कुल कान्यकुब्ज कमनीय।
> देवदत्त कवि जगत मे भये देव रमणीय॥

(२) दव की प्रतिभा का विवेचन डा० शिवसिंह सेंगर के शिवसिंह सरोज मे आया ह।

(३) डा० ग्रियसन के 'भारत की आधुनिक भाषाओ का साहित्य स०१६४० मे प्रकाशित ग्रन्थ म दव को अपन युग का सवश्रेष्ठ कवि मानते हुए उन्हें भारत के सत्कवियो म स्थान दिया गया है।

(४) सुखसागर तरग की भूमिका प० बालकृष्ण मिश्र द्वारा लिखित है। देव के व्यक्तित्व और काव्य का यह पहला विवेचन है (स० १६५४)। इसम दव के जन्म जाति आदि का प्रामाणिक अनुसधान है।

डा० नगेन्द्र ने जिन स्रोतों से तथ्यो का सग्रह किया है उनका विवरण[1]—

(१) सुखसागर तरग म उपलब्ध तथ्य।

---

1 वही पृ० ३१०,

(२) इसके १३ वप उपरान्त मिश्र-बधुओ का 'नवरत्न' म तथ्य।

(३) मिश्रबधु 'देव ग्रथावली' मिश्रबधुविनोद 'देवसुधा'—इनमे कही-कही भेद है। नवरत्न के छठे सस्करण मे यह भेद मिट गया है।

(४) प० कृष्णबिहारी मिश्र—दव और बिहारी—स १९७७

(५) लाला भगवानदीन—बिहारी और देव मे दोप-दशन।

(६) आचाय रामचन्द्र शुक्ल का इतिहास।

(७) बाबू श्यामसुन्दर दास का इतिहास।

(८) प० गोकुलचन्द्र दीक्षित—'शृगार विलासिनी' का सम्पादन। इसमें लखक ने १५० पृष्ठो मे भूमिका लिखी है पर तु तीन दोप आ गये हैं।

(i) विवेचन म गम्भीरता नही है, और जल्दबाजी के कारण उचित परीक्षा का धैय नही रहा।

(ii) वाछित ऐतिहासिक आलोचनात्मक दृष्टिकोण की निधनता के कारण विवेचन बिखरा हुआ और असगत हो गया है। उसम सन् सवत का भेद नही रखा गया है।

(iii) बिना ग्रथ देखे समति दे दी गई है।

(९) 'कढी देव मुख देवता भावविलास मह्य'—यह पक्ति 'देव को सरस्वती सिद्ध थी' ऐसी किवदन्ती को अत साक्ष्य के रूप मे प्रमाणित करती है।

(३) लोकप्रिय महाकवि

किसी भी महान और लोकप्रिय कवि के जीवन वत्त को पूणत प्रामाणिक रूप में उपलब्ध करन म अनुसधाता को साक्ष्यो से बढकर अपन विवेक से काम लेना पडता ह। ऐसे कवि के जीवन चरित विषयक उपलब्ध ग्रथो का परीक्षण करने मे प्रामाणिकता का विशेष ख्याल करना पडता है। 'गोस्वामी तुलसीदास' पर लिखे गये प्रबध म जीवन वत्त के परीक्षण की वैज्ञानिक शली के दशन होते हैं। इन्होंने सदिग्ध तथा असदिग्ध जो जो सामग्री प्राप्त की उसका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार किया गया है—[1]

'स० १९६१ की ज्येष्ठ मास की 'मर्यादा' मासिक पत्रिका मे बाबू इन्द्रदेव नारायण ने तुलसीदास जी के एक बहत्काय जीवन चरित की सूचना प्रकाशित की। यह महाकाव्य गोसाइजी के शिष्य बाबा रघुवरदास का लिखा बताया गया था। इन्द्रदव नारायण जी ने इस ग्रन्थ का परिचय यो दिया था—

1 श्यामसुन्दर दास और पीताम्बर दत्त बडथ्वाल पृ० १५

'इस ग्रन्थ का नाम 'तुलसी चरित्र' है। यह बड़ा ही वृहत ग्रन्थ है। इसके मुख्य चार खंड हैं—(१) अवध (२) काशी (३) नर्मदा और (४) मथुरा। इनमें अनेक उप खंड हैं। इस ग्रन्थ की संख्या इस प्रकार लिखी हुई है—

चौ० एक लाख तैंतीस हजारा। नौ सै बासठ छंद उदारा॥

यह ग्रंथ महाभारत से कम नहीं है। इसमें गोस्वामी जी के जीवन चरित्र विषयक मुख्य मुख्य वृत्तांत नित्य प्रति के लिखे हुए हैं। इसकी कविता अत्यन्त मधुर, सरल और मनोरंजक है। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि गोस्वामी जी के प्रिय शिष्य महात्मा रघुवरदास जी विरचित इस आदरणीय ग्रन्थ की कविता श्रीराम चरित मानस के टक्कर की है और यह तुलसी चरित्र बड़े महत्त्व का ग्रन्थ है। इससे प्राचीन समय की बातों का विशेष परिज्ञान होता है।'

अनुसंधाता ने यह उद्धरण देने के बाद इस रचना को संदिग्ध मानने के युक्तिसंगत कारण प्रस्तुत किए हैं—[1]

'किन्तु खेद है कि इस वृहत ग्रन्थ के एक लाख तैंतीस हजार नौ सौ बासठ छन्दों में से हम केवल अवध खंड की ४२ चौपाइयों और ११ दोहों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिन्हें स्वयं इन्द्रदेव नारायण जी ने उक्त लेख में दे दिया है। ये दोहे चौपाइयाँ इस पुस्तक के पहले परिशिष्ट में दी गई हैं। शेष 'उदार' छंदों को जगत के सामने रखने की उदारता उन्होंने नहीं दिखाई है।

(२) उक्त ग्रन्थ को भी स्वयं इन्द्रदेव नारायन जी के अतिरिक्त और किसी लब्धप्रतिष्ठ लेखक ने नहीं देखा है।

संभवतः वे उसकी जाँच कराना पसंद नहीं करते। उस विषय के पत्रालाप से भी इन्होंने आनाकानी की है। इसलिए यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि यह ग्रन्थ कहाँ तक प्रामाणिक है।

अनुसंधाता को तुलसीदास के जीवन चरित का तब और ग्रन्थ उपलब्ध हुआ जिसे उन्होंने प्रामाणिक मानते हुए उसके समर्थन के पक्ष में कारण प्रस्तुत किये हैं—[1]

(१) अभी थोड़े दिन हुए गोस्वामीजी के एक और शिष्य बाबा वेणी माधवदास का लिखा एक ग्रन्थ मिला है जिसकी जाँच हाल में किसी प्रकार की अड़चन नहीं है। इस ग्रन्थ का नाम 'मूल-गोसाईं चरित' है। इसको जनता के समक्ष

---

1 पृ १२ १६

प्रकाशित करके उनाव के वकील पंडित रामकिशोर शुक्ल तुलसी प्रेमियों के हार्दिक धन्यवाद के भाजन हुए हैं।

× × ×

"पंडित रामकिशोर शुक्ल को वेणी माधवदास की प्रति कनक भवन, अयोध्या के महात्मा बालकराम विनायकजी से प्राप्त हुई थी।

(२) महात्मा जी की कृपा से उनकी प्रति को देखने का हमें भी सौभाग्य मिला है।

(३) जिस प्रति से यह प्रति लिखी गई थी वह मौजा मरन्व पोस्ट ओवरा जिला गया के पंडित रामधारी पाडेय के पास है। पाडेय जी ने लिखा है कि यह उनके पिता को गोरखपुर में किसी से प्राप्त हुई थी। तब से वह उनके यहाँ है और नित्य प्रति उसका पाठ होता है।

(४) पाडेय जी इस प्रति को पूजा में रखते हैं इससे वह बाहर तो नहीं जा सकती परन्तु यदि कोई उसे वहाँ जाकर देखना और जाँच करना चाहे तो ऐसा कर सकता है।

(५) प्रति का विवरण—जाँच कराने से ज्ञात हुआ है कि यह प्रति पुराने देशी कागज पर देव नागरी अक्षरों में लिखी है। इसमें नौ सही एक बटा दो इंच गुणा पाँच सही एक बटे दो इंच के आकार के ५४ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में १२ पंक्तियाँ हैं। ग्रंथ की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि यह प्रति सं० १८४८ की विजयादशमी को समाप्त हुई थी। इसे किसी पण्डित राम रत्नामणि और उनके पुत्र रमादास ने लिखा था।

(६) प्रसंग से संबंधित तिथियों का आधार—वेणी माधवदास की तुलसी से भेंट सं० १६०९ १६१६ के बीच। तुलसी की मृत्यु सं० १६८०। सपक ६४ ७० वर्ष।

निष्कर्ष—उनके लिखे जीवन चरित्र की प्रामाणिकता के विषय में संदेह के लिये बहुत कम अवकाश हो सकता है। यदि यह मूल चरित्र प्रामाणिक न हो तो आश्चर्य की बात होगी।

इसके बाद अनुसंधाता ने उपलब्ध सामग्री के आधार पर आगे के प्रकरण में तुलसी के जीवन का पुनर्निर्माण शीर्षक में अपनी जानकारी में प्रामाणिक जीवन वृत्त लिखा है। यहाँ 'पुनर्निर्माण शब्द तथ्य का पुनरुत्थान' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसमें उन्होंने तीनों साक्ष्यों का आधार लिया है तथा प्रमाण के अभाव में अनुमान

का विवेकपूर्वक प्रयोग किया है। उदाहरण के रूप में यहाँ दो प्रसंग प्रस्तुत किये जाते हैं[1]

(१) तुलसी का नाम 'रामबोला'—
प्रमाण (अ) अन्त साक्ष्य—

(i) कवितावली—
'रामबोला' नाम है गुलाम राम साहि को।

(ii) विनय पत्रिका—
राम को गुलाम नाम रामबोला' राख्यो राम।

(ब) बहिर्साक्ष्य—

(१) मूल गोसाई चरित के अनुसार रामबोला।

(२) कुलगुरु तुलसीराम ने तुलाराम' और 'तुलसी' भी रख दिया था। जनश्रुति इसी बात को थोड़ा बदलके बताती है कि उन्होंने तुलसीदास के काशी से शिक्षा प्राप्त करके लौटाने पर 'तुलसी' नाम रखा।

(क) जनश्रुति (१) नरहर्यानन्दजी ने हरिपुर में 'रामबोला' कह कर ही बालक तुलसी को प्रबोधन किया था।

(२) जन्म से ही राम' कहा था, इसलिए उनका नाम रामबोला रखा गया। इसी प्रथ में विनय पत्रिका की पंक्ति की सगत लगाई जा सकती है।

इन तथ्यों के आधार पर अनुमान के सहारे अनुसंधाता ने जो निर्णय दिया वह इस प्रकार है—[2]

(१) रामबोला संस्कार का नाम नहीं था।

(२) कभी कभी जनश्रुति अन्त साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के अभाव मे सशक्त तथ्य का काम देती है—[2]

तुलसीदास के ससुर और पत्नी का परिचय—यमुना के उस पार तारपिता नामक एक गाँव था। उस गाँव मे भारद्वाज गोत्रीय एक ब्राह्मण देवता रहते थे। वे बड़े धर्मनिष्ठ थे। वे सभी पर्वों को मानते थे। कार्तिकी द्वितीया का स्नान करने के लिए वे एक समय इस पार राजापुर आये। उनके कुटुम्बी जन भी उनके साथ थे। तुलसीदास की कथा की प्रशंसा उन्होंने भी सुनी थी। दान करके वे उनकी

---

1 वही पृ० १७ १८
2 वही, पृ० ३० ३१

कथा सुनने आये। व्यास गद्दी पर बैठे हुए तुलसीदास की योग्यता, उनकी शोभा और उनकी शारीरिक सुदरता को देख कर वे उन पर रीझ गए और जाते-जाते उनके बारे में पूछताछ करते गये, जनश्रुति इन ब्राह्मण देवता को दीनबधु पाठक और उनकी कन्या को रत्नावली नाम से जानती है, पर वेणी माधवदास इस विषय में चुप हैं।

'तुलसीदास' के जीवन और व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर अनेक बड़े बड़े विद्वानो द्वारा अनुसधान ग्रथ लिखे गये हैं, यह उनकी महानता का निश्चित प्रमाण है। परन्तु प्रत्येक अनुसधाता की अपनी विशेष दृष्टि, मान्यता, सस्कार रुचि और जानकारी के रहते भी वैज्ञानिक प्रयोगशाला के एक प्रयोग पर काम करने वाले विभिन्न प्रयोगकर्ता एक ही परिणाम की घोषणा करते हैं वैसी अन्तिम निष्कर्ष की एकता साहित्य के अनुसधान म प्राय नही देखी जाती। प्राचीन कवियो के आत्मचरित के बारे मे इस प्रकार की विभिन्नता हमारे ध्यान को आकृष्ट किये बिना नही रहती तुलसीदास विषयक उपयुक्त अनुसधान के विरोध मे एक अन्य अनुसधान ग्रथ बताता है कि वेणी माधवदास कृत मूल गोसाइ चरित' भी अप्रामाणिक है। उन्होंने उसकी अविश्वसनीयता के कारण इस प्रकार बताये हैं—[1]

(१) चमत्कार

(२) बचपन

(३) प्रेत ने हनुमान दर्शन कराया, परन्तु तुलसी भूत प्रेत के विरोधी थे।

(४) विनय पत्रिका (राम विनयावली)।

(५) गीतावली प्रथम कृति (प्रौढ) स० १६१६ १८। वैराग्य सदीपनी रामाज्ञाप्रश्न (अप्रौढ) स १६७०। क्या तुलसी की प्रतिभा तीस वर्ष तक मूर्छित रही ?

(६) जन्म स्थान गलत—रजियापुर (राजापुर) नही, ऐतिहासिक प्रमाण से वह विक्रमपुर है।

(७) सूरका चित्रकूट जाकर सागर दिखाना स० १६१६ मे।

(८) मीरा ने स १६१६ म तुलसी को पत्र लिखा। स १६०३ मे मीरा दिवगत हो गई फिर पत्र कैसे लिखा ?

(९) गग, केशव, जहागीर और अकबर से मिलना गप्प है।

(१०) पचायतनामा।

---

1 वही पृ० ३७

(११) जन्म मत्यु 'मानस समाप्ति पत्नी निधन की तिथियाँ गलत हैं।

इस जीवनी ग्रन्थ मे अनुसधाता ने संगित होने वाली प्रामाणिकता का उल्लेख भी किया है—'यज्ञोपवीत और विवाह की तिथियाँ प्रामाणिक हैं। इसका प्रमाण पुरातत्व विभाग से प्राप्त होना है।

तुलसीदास के जीवन चरित की सामग्री इकट्ठी करने के लिए इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्रोत इस अनुसधाता ने जाँचे और उन पर अपना मत दिया जो इस प्रकार है—[1]

(क) बहिर्साक्ष्य सामान्य साहित्य

(१) तुलसीचरित—रघुवरदास। अप्रामाणिक।

(२) गोसाई चरित—भवानीदास। अविश्वसनीय।

(३) अन्य कृतियाँ भी अविश्वसनीय—

घटरामायन—तुलसी साहब का जन्म—चरित्र, संदिग्ध।

गौतमचन्द्रिका—कृष्णदत्त मिश्र स० १६८१ पूर्ण प्रामाणिक नही। सच्ची निधन तिथि श्रावण शुक्ला तीज स० १६६०।

भविष्यपुराण—अप्रामाण्य।

भक्तमाल टीका और टिप्पणी पदप्रसगमाला दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता— विचारणीय।

स्थानीय सामग्री— काशी अयोध्या राजापुर सोरो वशावली।

(ख) जनश्रुतियाँ—५०

(ग) चित्र—६

(घ) अन्त साक्ष्य—तुलसी साहित्य की प्रामाणिक रचनाएँ।

अनुसधाता ने ■ त साक्ष्य के आधार पर तुलसीदास का जीवनवृत्त लिखा है।

(४) अविज्ञापित कवि —

उपर्युक्त सब कवि हिन्दी साहित्य मे अच्छी प्रसिद्धि पाये हुए हैं। उनका जीवन-वृत्त प्राप्त करना जितना सरल है उतना ही अतिशयोक्तियों का भरमार के कारण कठिन भी है। परन्तु अविज्ञापित कवियो के बारे मे अवसर प्रमाण का अभाव रहता है और अनुमान का सहारा लिया जाता है।

---

1 वही पृ० १७ २४

कवि का सम्प्रदाय और वर्ण—अनुसंधाता ने 'सुदामाचरित' के कवि नरोत्तमदास के सम्प्रदाय और वर्ण का निश्चय निम्नलिखित प्रक्रिया के आधार पर किया है।

(क) अंतःसाक्ष्य १ 'शिवसिंह सरोज' में नरोत्तमदास, ब्राह्मण जिला सीतापुर कस्बा बाटीयाने लिखा हुआ है[1]।

२ 'मिश्र बन्धु विनोद' में मिश्र बन्धुओं ने इस आधार पर उनको कान्यकुब्ज ब्राह्मण बताया है। सीतापुर में अधिकतर वे ही लोग रहते हैं।

(ख) अनुमान 'नरोत्तम' के साथ 'दास' युक्त है, इससे यह अनुमान किया जाता है कि वे भागवत सम्प्रदाय के अनुयायी थे क्योंकि परम्परा यह देखने में आती है कि भागवत सम्प्रदाय के अनुयायी अपने को दास कहते थे या लोग उनके नाम के साथ 'दास' कहा करते थे जैसे तुलसीदास, सूरदास, केशवदास।"

(५) अन्य सहायक प्रमाणों का जीवनवृत्त की जानकारी में स्थान —

म्यूजियम, ऐतिहासिक ग्रन्थ, शिल्प और चित्रकारी प्रसिद्ध व्यक्ति का प्रामाणिक वृत्त प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। अनुसंधाता ने कबीर जी के जीवन पर प्रकाश डालने के लिए इन साधनों का उपयोग किया और उसका विवरण इस प्रकार दिया।[2]

'भक्त साम्य, संत साहित्य, किंवदंतियाँ तथा इस काल की अन्य संत पुस्तकों तथा जीवनियों के अतिरिक्त कुछ अन्य साधन भी हैं जो कबीरदास जी के जीवन पर प्रकाश डालते हैं। इन साधनों में 'आईने अकबरी' (अबुलफज़ल कृत) उल्लेखनीय है। दबिस्ता (मोहसिन फानी कृत) तथा 'खज़ीनतुल आसफिया' (मोहसिन फानी कृत) द्वारा भी कबीर के जीवन तथ्यों का उद्घाटन होता है। इस प्रकार हम निम्नलिखित कबीरदास जी की जीवन सम्बन्धी घटनाओं पर उक्त साधनों के अन्तर्गत प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे—

(१) कबीर की जन्म मृत्यु की तिथियाँ

(२) कबीर का नाम

(३) कबीर की जाति और जन्म मृत्यु के स्थान

(४) कबीर का परिवार

(५) कबीर के गुरु

(६) कबीर का पर्यटन

---

1 सुदामा चरित, कैलाशबिहारी, पृ० १

2 कबीर साहित्य और सिद्धान्त, यज्ञदत्त शर्मा, पृ० २

(७) कबीर की शिष्य परम्परा

(८) कबीर के जीवन की अन्य प्रसिद्ध घटनाएं।

चित्र या मूर्ति की खोज

जीवन वृत्त के अनुसंधान में व्यक्ति के प्रामाणिक चित्र या मूर्ति की खोज उसका एक अनिवार्य अंग है क्योंकि मनोवैज्ञानिक प्रभाव के कारण उसमें परोक्ष को प्रत्यक्ष करने की, भूत को वर्तमान बनाने की और मृत को जीवित करने की तथा उसकी प्रामाणिकता में विश्वास उत्पन्न कराने की अद्भुत शक्ति है। उससे निराधार कल्पना को एक ठोस आधार मिलता है।

एक अन्य अनुसंधाता ने कबीर के प्रामाणिक चित्र को पाने के लिए ऐसा ही प्रयत्न किया है। वे लिखते हैं[1]—

कबीर मूर्तिपूजा के विरोधी होने से उनके मठों में उनकी मूर्ति नहीं है। उनका चित्र कहीं कहीं दीवारों या शिलाओं पर चित्रित है—

'कबीर का कोई प्राचीन चित्र तो मिलता नहीं है। उनके जो चित्र मिले हैं वे उत्तर मध्यकालीन प्रतीत होते हैं। कबीर ग्रन्थावली में कबीर के दो चित्र मिलते हैं—एक युवावस्था का और दूसरा वृद्धावस्था का। पहला चित्र कलकत्ता म्यूज़ियम से प्राप्त हुआ है और दूसरा कबीरपंथी स्वामी युगलानन्द जी से मिला है। श्यामसुन्दरदास का मत है कि दोनों चित्र एक ही व्यक्ति के नहीं मालूम पड़ते। दोनों की आकृतियों में बड़ा अन्तर है। यदि दोनों नहीं तो इनमें से कोई एक अवश्य अप्रामाणिक होगा। दोनों भी अप्रामाणिक हो सकते हैं किन्तु संत युगलानन्द जी वृद्धावस्था वाले चित्र के सम्बन्ध में अत्यन्त प्रामाणिकता का दावा करते हैं जो ४६ वय से अधिक अवस्था वाले व्यक्ति का ही हो सकता है।

'प्रसंगवश इस चित्र के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि यह अवश्य ही अन्य चित्रों से अधिक प्रामाणिक है। कबीर के दो चित्र, जो कबीर ग्रन्थावली और की' महोदय की पुस्तक 'कबीर एण्ड हिज़ फालोवर्स' में दिये गये हैं परस्पर बहुत कुछ मिलते हैं। ग्रन्थावली के चित्र का समय अज्ञात है किन्तु की के चित्र का समय १८ वीं शताब्दी है। इसमें सन्देह नहीं कि ये चित्र काल्पनिक हैं। कबीर के गले एवं हाथ में कण्ठी और माला के अतिरिक्त कबीर को झीनी झीनी चदरिया भी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस चित्र का आधार प्रचलित प्रभाव है इतिहास या सत्य नहीं।

लेखक के जीवन वृत्त के अनुसंधान में महत्त्वपूर्ण और आवश्यक अंगों पर

1 कबीर एक विवेचन डा० सरनामसिंह शर्मा, पृ० ७५ ७६

अनुसंधान की प्रक्रिया का निरूपण करते हुए पर्याप्त प्रकाश डाला गया। अब उसके कृतित्व के पक्ष का अनुसंधान जिस प्रक्रिया को अपना कर किया जाता है उसका निरूपण किया जायगा।

(ख) लेखक की प्रामाणिकता

प्रमाण और प्रमाण के अभाव में अनुमान, के सहारे मुख्यतः तीन विषयों की खोज आवश्यक होती है—लेखक की प्रामाणिकता, रचना की प्रामाणिकता और रचना काल।

लेखक की प्रामाणिकता के लिए रचना का अध्ययन कर लेखक की खोज की जाती है इसलिए रचना उपलब्ध होनी है। इस खोज शैली को मिथ्यारोप का अपवाद प्रमाणपूर्वक वास्तविकता का समर्थन और साधार अनुमान द्वारा आरोपणविधि कह सकते हैं। अमुक रचना के लेखक अमुक हैं' या 'हो सकते हैं'। अथवा नहीं हैं या नहीं हो सकते—इस तथ्य को अनुसंधाता युक्तियुक्त शैली में सिद्ध करने में समर्थ होना चाहिए। लेखक की प्रामाणिकता की खोज के कई कारण हैं—(१) एक लेखक की पूर्व की रचना की तुलना में बाद की रचना का स्तर नीचे दर्जे का हो तो लेखक के बारे में संदेह हो जाता है (२) जानबूझ कर प्रसिद्ध कवि के नाम पर सामान्य कवि की रचना का प्रचलन, (३) एक नाम के दो लेखक, लेखक विषयक संदेह या भ्रम, और (४) अनजान में बड़े कवि के नाम पर छोटे कवि की रचना।

(१) रचना के स्तर के आधार पर लेखक की प्रामाणिकता—बरवै रामायण के बाद की रचनाओं में, जो और रचनाओं से स्पष्ट अलग की जा सकती हैं, प्रधान 'हनुमान बाहुक' है जिसमें उन्होंने बाहुपीडा से पीडित होकर हनुमान जी की स्तुति की है। बहुत से लोगों को इसके गोसाईं जी द्वारा रचित होने में भी संदेह है। कदाचित इसी कारण कि वह इतना अच्छा नहीं बन पड़ा है, जितनी उनकी और रचनाएँ।"[1]

(२) प्रसिद्ध कवि के नाम पर सामान्य कवि की रचना का जानबूझ कर प्रचलन—रचना के प्रामाणिक लेखक के मन में प्रसिद्धि का विशेष मोह होता है और अपनी रचना के यशस्वी होने में वह विश्वास नहीं रखता, तब अपनी नाम-प्रसिद्धि का मोह छोड़ कर वह अपने अनुकरणीय प्रसिद्ध या लोकप्रिय कवि का नाम अपनी रचना में जोड़ देता है। ऐसी स्थिति में बड़ी सावधानी से वर्गीकरण करके इसके पक्ष विपक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करने पड़ते हैं। कबीर जी के नाम पर १४० रचनाएँ प्रचलित हैं। अनुसंधाता ने इनकी पूरी

1 गोस्वामी तुलसीदास, श्यामसुंदरदास और पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, पृ ७

सूची देकर लिखा है— इनमें से अधिकांश रचनाएं हमें अन्यत्र भी मिल चुकी हैं। अनेक परवर्ती रचनाएं जो निश्चित रूप से अन्य संतों की कृतियां हैं, कबीर के नाम से सम्मिलित कर लेने के अतिरिक्त हमें कुछ नाम स्वतन्त्र ग्रन्थों के रूप में ऐसे भी मिलते हैं जिनकी वास्तव में कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होनी चाहिए[1]। आगे अनुसंधाता ने इन संदिग्ध रचनाओं का तीन विभागों में विभाजन किया—[2]

(१) कुछ ग्रन्थ न कबीर के हैं, न कबीरपंथ के, किन्तु कबीर के नाम पर चल रहे हैं।

(२) कबीर के पश्चात् उनके पंथ के संत महात्माओं द्वारा कुछ रचनाएँ हुई ज्ञात होती हैं। उनमें भाषा तथा भाव स्पष्ट रूप से न कबीर के हैं और न उनके जीवन काल के ही, केवल कहीं कहीं कथन की पुष्टि के लिए प्रमाण-वाक्य की तरह कबीर की साखियों अथवा पदों का दृष्टान्त दिया गया है।

(३) इनके अतिरिक्त जो रचनाएं मिलती हैं, उन्हीं में कबीर की कृतियां हैं, यद्यपि संपूर्ण रूप से किसी भी एक ग्रन्थ को कबीर का नहीं कहा जा सकता क्या कि कोई भी ग्रन्थ ऐसा नहीं है जिसमें स्पष्ट रूप से अशुद्ध अथवा प्रक्षिप्त पाठ न मिलते हों।'

कबीर के नाम पर प्रचलित अन्य सम्प्रदायों के ग्रन्थ—

(१) विचारमाला—अन्त में कबीर का एक दोहरा लिखा हुआ था।

(२) काफिर बोध—किसी कबीर पंथी द्वारा बाद में जोड़ा हुआ जान पड़ता है
कहै कबीर पीर को जानी, काफिर बोध संपूरन बानी।

इसमें रचयिता का स्पष्ट नाम है रतननाथ'—

बैठी रहु माया होवा। कुफ बसे अपनी रोवा॥

इतना सवाल रतन हाजी ने कह्यो।

(३) जनमम बोध—कहीं भी कबीर या कबीर पंथ का नामोल्लेख नहीं। केवल प्रारंभ में चार पुरुष और बयालीस वंश की दया मनाई गई है। ज्ञात होता है कि ब्राह्मण विरोधी तथा अहिंसापरक ग्रन्थ होने के कारण ही इसे कबीरपंथी ग्रन्थों में समाविष्ट कर लिया गया।

(६) एक नाम के दो लेखक—एक नाम के दो व्यक्ति हों तो विशिष्ट लेखक के विषय में निर्णय का एक खास तरीका है। अनुसंधाता के सामने एक साथ

1 कबीर ग्रन्थावली, सं० डॉ पारसनाथ तिवारी, पृ ३३ ३५

2 वही, पृ ३५

दो नंददास अलग अलग परिचय ले के साहित्य के इतिहास में प्रस्तुत हुए तो उन्होंने दोनों के जीवनवृत्त का विवरण प्राप्त करके, दोनों का स्थान साहित्य में निर्धारित करते हुए विशिष्ट नंददास' को, रचना तथा अन्य स्रोतों के सहारे संस्थापित किया।"—[1]

प्रथम तथा प्राचीनतम जिस ग्रंथ में नंददास जी का उल्लेख हुआ है वह श्री नारायणदास प्रसिद्ध नाम नाभादास जी का भक्तमाल है, जो भक्त संप्रदाय में अत्यंत आदर के साथ देखा जाता है और साहित्य के इतिहास के लिए एक प्रामाणिक ग्रंथ है। नाभादास जी जयपुर के अंतर्गत गलता निवासी अग्रदास जी के शिष्य थे और इनका रचना काल सं १६४० और सं १६८० के बीच में रहा है। भक्तमाल में दो नंददास का उल्लेख है, जिनमें एक के विषय में केवल एक पंक्ति इस प्रकार दी गई है—

नाभा ज्यों नंददास मुई एक बच्छ जिवाई।

प्रियादास जी ने इस पर एक कवित्त में टीका की है, जिससे ज्ञात होता है कि यह बरेली निवासी एक भक्त थे और खेती करते हुए साधु सेवा में लगे रहते थे। इनके द्वार पर बछड़ा मार कर किसी दुष्ट ने सुला दिया था, जिसे इन्होंने जिला दिया। यह अष्टछाप के सुकवि नंददास जी नहीं हो सकते क्योंकि इसमें इनका स्थान दूसरा दिया है, यह व्यवसायी कहे गये हैं, और इनके कवि होने का संकेत तक नहीं है। दूसरे नंददास जी के विषय में निम्नलिखित छप्पय दिया गया है—

(१) लीला पद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर।
सरस उक्ति रस जुक्ति भक्ति रस गान उजागर॥
प्रचुर पयधि लौं सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संवलित भक्त पद रेनु उपासी॥
श्री चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पद में पगे।
श्री नंददास आनंदनिधि रसिक सु प्रभु हित रंग मगे॥

उक्त छप्पय की प्रथम दो पंक्तियों से यह ज्ञात होता है कि नंददास जी ने कृष्ण लीला के पद तथा रसरीति पर ग्रन्थ लिखे हैं। इन की रचनाओं को देखने से यह बहुत ठीक ज्ञात होता है कि रचनाएँ रसमंजरी तथा विरहमंजरी और रीतिग्रंथों के अंतर्गत ही आ सकती हैं और अनेकार्थ तथा नाममाला कोष से संबंधित हैं। रूपमंजरी आख्यानक रूप में होते हुए भी कृष्ण

1 नंददास ग्रंथावली ब्रजरत्नदास, पृ० ७८

भक्ति से पूर्ण है तथा अन्य सभी रचनाएँ कृष्ण लीला संबंधी हैं। इनकी कविता में उक्तियों का माधुर्य तथा भक्ति रस की पूर्णता का होना प्रसिद्ध ही है।

'इसके बाद की पंक्तियों से पता लगता है कि यह रामपुर के निवासी थे, शुक्ल या सुकुल वंश में उत्पन्न हुए थे भक्तों की सेवा करते थे चन्द्रहास सुहृद थे तथा परम प्रेमपथ के पथिक थे।'

(२) ध्रुवदास के 'भक्त नामावली' में नन्ददास का उल्लेख।

(६) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता अनुसंधाता को इस ग्रंथ में से एक तथ्य का समर्थन प्राप्त हुआ और अन्य तथ्य की उपलब्धि भी हुई।[1] नन्ददास तुलसीदास जी के भाई थे। —इसके समर्थन में प्राप्त तथ्य—

(१) सूकर क्षेत्र माहात्म्य—नन्ददास जी के पुत्र कृष्णदास

(२) वर्षफल (ज्योतिषग्रन्थ)—नन्ददास

रामचरितमानस के बालकांड अयोध्याकांड तथा अरण्यकांडों की हस्तलिखित खंडित प्रतियाँ—कृष्णदास की।

(४) रत्नावली चरित्र एटा जिला सोरों ग्राम के निवासी मुरलीधर चतुर्वेदी कृत रचना काल सं० १८८६।

(५) वृन्दावन निवासी प्राणेश कवि अष्टसखा कृत।

(६) सुन्दरदास के पद।

इनसे प्राप्त तथ्यों के आधार पर अनुसंधाता ने प्रामाणिक रूप से निष्कर्ष निकाला कि— एक पितामह के तुलसीदास नन्ददास तथा चन्द्रहास पौत्र थे और अंतिम सबसे छोटे थे।'[2]

अनुसंधाता ने अपने विशिष्ट लेखक का निर्णय कर लेने पर उसका जीवन वृत्त प्रस्तुत किया—[3]

जन्म सं० १६०० के आसपास।

माता पिता—चम्पा आत्माराम।

जाति—ब्राह्मण, सनाढ्य शुक्ल।

भाई—तुलसीदास चचेरे बड़े भाई व चन्द्रहास छोटे सहोदर।

संतान—कृष्णदास, पुत्र।

---

1 वही, पृ० ८२२

2 वही पृ० १६

3 वही पृ० २०

गुरु—शिक्षागुरु स्मार्त वैष्णव वेदज्ञ ब्राह्मण नृसिंह जी।

दीक्षागुरु—गोस्वामी विट्ठलनाथ जी।

जन्मस्थान—एटा जिले के अन्तर्गत सोरा के पास रामपुर ग्राम, जो अब श्यामपुर कहलाता है।

निवास स्थान—व्रजमण्डल।

मित्र—रूपमंजरी, वैष्णवी, श्रीकृष्ण की उपासिका।

स्वभाव—दीक्षा पूर्व विषयासक्त। बाद में कृष्ण के अनन्य भक्त, सहृदय भावुक कवि।

मृत्यु—सं० १६६२ से पूर्व।

(४) लेखक विषयक संदेह या भ्रम—

रचना के लेखक के बारे में संदेह या भ्रम होने के कई कारण हो सकते हैं।

(क) मतभेद कभी अनुसंधाता की विशिष्ट विचार शैली और दृढ़ मान्यता या आग्रहवश सम्यक प्रमाण के उपलब्ध होते हुए भी प्रामाणिकता में अप्रामाणिकता या संदिग्धता का आरोपण हो जाता है। कवि देव रचित 'देवमाया प्रपंच नाटक' को लेकर आ० रामचन्द्र शुक्ल और डॉ० नगेन्द्र जैसे महान आचार्यों के बीच गंभीर मतभेद है।

डॉ० नगेन्द्र ने "देवमाया प्रपंच नाटक" के लेखक कवि देव हैं—सप्रमाण इस प्रकार का समर्थन करते हुए लिखा है[1]—

(१) 'पं० रामचन्द्र शुक्ल को इस ग्रंथ की प्रामाणिकता में संदेह है, परन्तु वास्तव में उसके लिए कोई स्थान नहीं है। ग्रन्थ के अंत में कवि ने स्पष्ट ही अपने नाम का उल्लेख किया है—

हृदै बसो कवि देव के संत संगति को धाम।

(२) शैली पर देव की छाप असंदिग्ध है।

(३) सबसे पुष्ट प्रमाण—देव के सर्वस्वीकृत ग्रन्थों में जो छन्द हैं इसमें भी हैं। उदा० देवशतक के जगदर्शन पच्चीसी खण्ड में शान्तरसायन में आदि।[2]

(४) प्रभाव—प्रबोध चन्द्रोदय कृष्ण मिश्र का। यह सैद्धान्तिक रूपकों का आदर्श नाटक है। दोनों की शैली एक सी है प्रतिपाद्य में मोटी बहुत

1 देव और उनकी कविता डा०नगेन्द्र पृ ६७
2 वही, पृ ७०

समानता है । दोनों ने शाकराद्वैत सिद्धान्त को माना है । दम्भ मोह श्रद्धा आदि पात्र भी समान हैं। बस इसके आगे कोई समानता नहीं है । कथावस्तु दोनों की सर्वथा भिन्न है और भाषा से भी किसी प्रकार का साम्य नहीं है ।

(ख) अनजान में बड़े कवि के नाम पर छोटे कवि की रचना का जुड़ जाना—

इस प्रकार की भूलें खोज में असावधानी के कारण हो जाती हैं। भिखारी दास का छन्दार्णव' हिन्दी के पुराने पिंगल ग्रंथों में बहुप्रचलित है। ऐसा व्यवस्थित और विस्तृत पिंगल दूसरा नहीं मिलता । काशीराज के यहाँ जब सं०१८३१ में भिखारीदास जी के साहित्यिक ग्रंथों की प्रतिलिपि हो रही थी तब इस पिंगल के प्रस्तार आदि को संक्षेप में समझाने के लिए काशीराज के किसी दरबारी कवि ने छन्दप्रकाश' नाम से इसमें परिशिष्ट जोड़ दिया खोज (१० ३२) में यह भिखारीदास जी का स्वतंत्र ग्रंथ मान लिया गया है पर इसमें स्पष्ट उल्लेख है—

२ दोहा सोरठा, १ दोहा—इस क्रम से महाराजा का परिचय (प्रथम कवित्त में वंदना) फिर महिमा गान तथा पाँचवे छंद सोरठे में—

'सुकवि भिखारीदास कियो ग्रंथ छन्दार्णो ।

तिन छन्दनि का प्रकाश भो महाराज पसन्न हित ॥५॥'[1]

लोकापवाद—

लेखक के नाम के स्थानापन्न होने से कभी लोकापवाद कारण होता है। लिखता सब अजमेरी है और छपता सब मथिलीशरण के नाम से है"—इस लोकापवाद का निवारण स्वयं मुंशी अजमेरी को अपने गुप्त जी का और मेरा संबंध' लेख द्वारा बाध्य होकर करना पड़ा। [2]

(ग) रचना का प्रामाणिकता

लेखक की प्रामाणिकता और रचना की प्रामाणिकता बहुत हद तक सापेक्ष महत्त्व रखते हैं। फिर भी दोनों की प्रमाणसिद्धि की शैली में अन्तर है। लेखक की प्रमाणसिद्धि में एक रचना के नाम पर दो लेखक के नाम लिये जाते हों तो खोज आवश्यक है। *जैसे एक लेखक के नाम पर अतिरिक्त रचनाओं के नाम गिनाना, एक* ही रचना को भिन्न भिन्न शीर्षकों के कारण अलग अलग मानना या एक ग्रंथ दो लेखकों के नाम पर प्रचलित होना आदि भूलों के होने की संभावना रहती है।

---

1 भिखारीदास प्रथम खण्ड प विश्वनाथप्रसाद मिश्र पृ १६ १८

2 मथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य डा० कमलाकान्त पाठक पृ ३३

चोरी और अपहरण की समस्या का समाधान इस खोज के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार स्रोत के अध्ययन मे यह खोज बहुत सहायक है।

(1) रचना में सदिग्ध अ श—अपहरण की समस्या

तुलसीदास की 'रामगीतावली' और 'कृष्णगीतावली' —इन दोनो रचनाओं मे कई पद अनुसधाता को सदिग्ध जान पडे। अनुसधान करने पर प्रमाण के अभाव मे अनुमान के आधार पर रचना की प्रामाणिकता का निर्णय करने के लिए वे बताते हैं।[1]

(१) सूरदास चाहे तुलसीदास से मिलने आए हो या नही, परन्तु इसमे सदेह नही कि गोसाई जी को 'रामगीतावली' और 'कृष्णगीतावली' को लिखने की प्रेरणा 'सूरसागर' ही को देख कर हुई होगी।"

(२) "ये दोनो ग्रन्थ सूरसागर की शैली पर लिखे गये हैं और दोनो मे कई पद अक्षरश सूरदास के हैं।"

अनुसधाता ने अपनी इस स्थापना को उदाहरण देकर प्रमाणित किया है। फिर अनुमान का सहारा लेकर वे लिखते हैं[2]—

"सभवत तुलसीदास जी की रचनाओ मे मिलने वाले सूरदास के इन पदों को तुलसीदास जी ने गाने के लिए पसन्द किया होगा और तुलसीदास जी को प्रिय होने के कारण आगे चल कर उनके शिष्यों ने उचित परिवर्तन के साथ उन्हें उनकी रचनाओं मे मिला दिया होगा।"

इस प्रसग मे अपहरण की कल्पना की गई है।

(2) एक ग्रन्थ के दो नाम

भिखारीदास के ग्रन्थो की प्रामाणिकता की खोज की प्रक्रिया के अन्तर्गत अनुसधाता ने अपने पूर्ववर्ती और समकालीन अनुसधाताओ द्वारा लेखक की प्रमाणित रचनाओ का विवरण एकत्रित करना प्रकाशित अप्रकाशित पुस्तको की सूची देना, उनकी वस्तु का सक्षेप मे परिचय देना और विवेचन के अन्त में प्रामाणिक ग्रन्थ का निर्णय करना तथा सदिग्ध ग्रन्थो की सूची अलग देना आवश्यक माना है।[3] आगे प्रामाणिक ग्रन्थो का सक्षिप्त परिचय दिया है[4] और एक ग्रन्थ के दो नाम होने से उन्हे सख्या मे दो मान लेने की जो भूल हुई है, उसका निवारण किया है[5]—

1 गोस्वामी तुलसीदास, श्यामसुन्दरदास, पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, पृ० ६७
2 वही पृ० ६६
3 आचार्य भिखारीदास, डॉ० नारायणदास खन्ना, पृ० ७२
4 वही पृ० १००
5 वही, पृ १०२

"ऐसा भी अनुमान है कि अनेक इतिहासकारों ने दास के प्रसिद्ध ग्रंथ—काव्य निर्णय' 'शृंगार निर्णय', और 'छन्दार्णव पिंगल' को छोड़ कर उनके अन्य ग्रन्थों को देखा भी नहीं था अन्यथा ये लोग 'नामप्रकाश', 'अमरकोश' अथवा 'अमर प्रकाश' को दो ग्रन्थ न बताते।"[1]

इसी प्रकार कृष्ण भक्त कवि नन्ददास के नाम पर प्रचलित 'रासमंजरी (विरह मंजरी)' और 'रसमंजरी' तथा 'पंचाध्यायी' और 'मानमंजरी' में मात्र नाम भेद है, रचना असल में एक ही है।[2] ऐसी स्थिति कैसे उत्पन्न हो जाती है उसका व्यावहारिक उदाहरण हमें जैनेन्द्र के एक संकेत में मिलता है—

"तकाजे पर प्रेमचन्द को कहानी लिख भेजी 'साप', लेकिन एक दो हफ्ते बाद तार से फिर ताकीद आई। असल में कहानी उन्हें मिली नहीं थी। फिर बाद में उसी मौजूं पर कुछ लिखकर दूसरी जगह भेज दिया। वहां अभी वह चीज छपी न थी कि अपने कागजों में प्रेमचन्द को 'सांप' कहानी मिल गई और फौरन उन्होंने 'हंस' में छाप दी। इस तरह आज भी इस कहानी के दो रूप मौजूद हैं। वे दोनों चीजें एक हैं लेकिन रंग दो हैं।[3]

(३) एक ग्रन्थ का दो लेखकों के नाम पर प्रचलन

अनुसंधाता ने भिखारीदास के नाम पर प्रचलित बागबहार की प्रामाणिकता पर विचार करके लिखा है—

'इस ग्रन्थ का नाम श्री शिवसिंह सेंगर ने अपने सरोज में दिया है। अन्यत्र इसका किसी ने उल्लेख नहीं किया। किसी अन्य 'दास' कवि का यह ग्रन्थ भिखारी दास के नाम पर भी रख गया होगा। शिवसिंह सरोज' में दीनदयाल गिरि के नाम पर एक 'बागबहार' लिया गया है। कहीं दीन दास का मालमेल हो जाने से एक ग्रन्थ दो स्थानों पर तो नहीं चढ़ गया।

ऐसी भूल प्रसिद्ध रचना की लेकर नहीं हो सकती। अप्राप्य या अप्रसिद्ध रचना जिनकी मात्र गणना होती है उसके लेखन के बारे में इस प्रकार का भ्रम या भूल हो जाना स्वाभाविक है। एक नीरस में अनेक रचनाओं के निर्माण की प्रथा साहित्य-जगत में प्रचलित है। ऐसी स्थिति में एक नाम की उपलब्ध सब रचनाओं को एकत्र कर उनका परीक्षण करना चाहिए और समय हो तो प्रसिद्ध मीन कर लेना चाहिए जिससे इस प्रकार की भूल की परम्परा का अन्त हो जाए।

1　नन्ददास ग्रन्थावली, ब्रजरत्नदास ना० प्र० स० काशी पृ० २३
2　भिखारीदास, प्रथम खण्ड विश्वनाथप्रसाद मिश्र पृ० ७
3　जैनेन्द्र व्यक्ति कथाकार और चिन्तक स० बाँकेबिहारी भटनागर प ११० ११२

इस स्थिति में लेखक की प्रत्येक रचना की प्रामाणिकता की जाँच के लिए उसके विविध पहलुओं का परिचय प्राप्त कर एक विशेष शैली को अपनाना पडता है। अनुसधाता ने भिखारीदास की नामप्रकाश और शतरजशतिका के बारे मे सप्रमाण चर्चा की है[1] —

'नामप्रकाश सस्कृत 'अमरकोश का भाषानुवाद है। इसकी पुष्पिका यो है—

इति श्री भिखारीदास कृते सोमवशावतस श्री १०८ महाराज छत्रधारी सिंहात्मज श्री बाबू हिंदुपति ममने अमरतिलके नामप्रकाशे तृतीय काडे अनेकार्थ वर्ग सपूर्णम्।

इससे स्पष्ट है कि इसका नाम 'नामप्रकाश ही है।

अमरतिलक

(१) विशेषण=अमरकोश का तिलक है।

(२) भाषातर। उदा० बिहारी सतसैया के भाषा तर को भी 'तिलक' कहा गया है।

रचना-काल— 'दास' लिखित दोहा उद्धत किया है—

'सत्रह सै पचानवे अगहन को सित पक्ष।
तेरसि मगल को भयो नामप्रकाश प्रत्यक्ष॥
स० १७९५ मे नामप्रकाश पूर्ण हुआ।

(४) लेखक की अन्य रचनाएँ लम्बी हो तो एक छोटी रचना के सदिग्ध होने की आशका

'शतरजशतिका (दासकृत) —अनुसधाता ने इस प्रति की खोज का उल्लेख कर उसकी पुष्पिका दी है, उसमे १३० श्लोक हैं और पाँच पृष्ठो मे उसका विस्तार है। यह बताकर 'शतिका का अर्थ ढूढने का प्रयत्न किया गया है। अनुमान से 'सौ छन्द' उसका अर्थ लगाने पर दखा तो ५६ छन्द निकले। शतिका के छन्द होने सौ चाहिए तो चालीस कम निकले। फिर श्री उदयशकर शास्त्री द्वारा प्राप्त खडित प्रति का विवरण देते हुए लिखा कि उसमें १ से ९वें अध्याय के छन्द ६ तक प्रति है।[2]

अनुमान की दिशा मे वे आगे बढते हैं— पाँच, छ, सात अध्यायों की पुष्पिका खडित है। छन्द नही हैं। तब छन्द १३५ हुए। इसलिए स्पष्ट है कि

1 वही, पृ० ८१०
2 वही पृ० ११

'शतिका' का अर्थ 'सौ दृश्य' अभिप्रेत नहीं है। चार सौ या सौ दृश्य से कम का कोई ग्रन्थ नहीं है। अनुमान से यह ग्रन्थ भी बड़ा होगा। मेरी धारणा है कि शतरंज पर इतना बड़ा ग्रन्थ भी होंगे बड़े अक्षरों में रहा होगा। 'शतिका' माने सौ छन्दों की पुस्तक।[1]

इस विषय में प्रतापगढ़ के राजाओं की प्रशस्ति में लिखी गई प्रशस्तिमय वंशावली से छन्द उद्धृत करके बताया कि उनके नाम के नाम पर आठ ग्रन्थ बनाये गये हैं[2]—

> प्रथम 'काव्यविलास' को जानो। पुनि 'शृंगारविलास' तहँ मानो॥
> रसदर्पण मत पिंगलसुदरसना। रसतारंग ग्रन्थ जग जाना॥
> अमरकोश अरु शतरंजशतिका। रच्यो नाहर हित सोउ गुनसिका॥
> नृपति अजितसिंह कूं जुगवाई। गणित कियो अमित गुन पाई॥

इसके साथ काशी ना० प्र० स० द्वारा प्रकाशित खोज का इस प्रकार विवरण दिया है:—

खोज ने भिखारीदास के नाम पर ११ ग्रन्थों की सूची दी है और अमरकोश (नामप्रकाश) और शतरंजशतिका को भी बताया है जो एक हैं। इनमें आये 'भाषा शिरोमणि निबन्धद्वय' को भी वस्तुतः अमरकोश और शतरंजशतिका के विशेषण मात्र हैं, एक साहित्यान्वेषक ने दो स्वतन्त्र ग्रन्थ समझ लिया। निबन्ध शब्द का व्यवहार किसी भी कृति के लिए परम्परा से रूढ़ है। तुलसीदास का मानस भी निबन्ध ही है। भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति। इसलिये ये कोई नये ग्रन्थ नहीं हैं।

अनुसंधाता ने इस खोजप्रक्रिया में जो क्रम अपनाया है वह इस प्रकार है—

(१) अमरकोश और शतरंजशतिका को एक बताना।

(२) 'शतरंजिका' को खण्डित प्रति बताना।

(३) 'अमरकोश' और नामप्रकाश को एक बताना।

इस अनुसंधान में एक प्रति की प्रामाणिकता की खोज के लिए तीन प्रकार से अलग अलग श्रम करके इस निर्णय पर पहुँचा गया है कि ये तीनों विवरण एक ही प्रति के बारे दिया गया है।

1 वही पृ० ५
2 वही पृ० ६

(५) लेखक का निर्णय, भाषा के आधार पर

'नासिकेतपुराण' नामक गद्यग्रंथ को खोज की रिपोर्ट में नन्ददास कृत न मानते हुए भी उन्ही के नाम से वह लिखा गया है। इसका उल्लेख करके अनुसंधाता विवरण देकर लेखक विषयक भ्रम का निवारण करने के लिये लिखते हैं—

'प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'नन्ददास' के परिशिष्ट १ (ड०) में इस ग्रंथ की तीन प्रतियां से उद्धरण दिए गये हैं जिनमे से का लिपिकाल सं० १७६५ तथा सं० १८५५ है। ना० प्र० स० काशी को इधर एक हस्तलिखित प्रति इस ग्रंथ की प्राप्त हुई है जो सं०१८८८ वि० की लिखी हुई है। प्रारम्भ तथा अंत में नन्ददास जी का कहीं रचयिता के नाम से उल्लेख नहीं है। ग्रंथ के भीतर पाठ में उनका कई बार उल्लेख हुआ है जो इस प्रकार है—

आरम्भ में—(१) नन्ददास जी आपणा मित्राने कहतु है।

(२) सु अबैं स्वामी नन्ददास जी आपणा मित्राने भाषा करि कहतु है। मित्रु पूछत है गुसाइ जु मेरे अभिलाषा नासकेतु पुराण सुणिबे की यच्छ्या वहोतु है।

(३) अब नन्ददास जी कहतु हैं॥

अंत में— (४) स्वामी नन्ददास आपणा मित्रानै भाषा करि सुणाइ छैं सु या कथा महा अमृतु है।

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि किसी गोस्वामी नन्ददास जी ने 'नासिकेतपुराण' भाषा मे अपने शिष्य वा मित्र को सुनाया था जिसे किसी तीसरे व्यक्ति ने पुस्तक का रूप दिया है। इसकी भाषा अत्यन्त शिथिल है और प्रसिद्ध नन्ददास जी जस भाषा पर अधिकार रखने वाले के योग्य कभी नहीं है। यह कृति इन की नहीं हो सकती।'[1]

(६) लोकप्रिय कवि के नाम पर अज्ञात कवि की रचनाएँ

सन्त कवियों की अनेक रचनाएँ लोक कंठ में अमर स्थान पा चुकी हैं। इस लोकप्रियता का लाभ उठाकर बाद के सामान्य और अज्ञात कवि अपनी रचना उनके नाम पर प्रचलित कर देते हैं। ऐसी स्थिति मे लेखक अपने नाम और यश की चिंता छोड़ कर अपनी रचना का प्रचार देखना चाहता है जो लोकप्रिय कवि के नाम पर आसानी से हो जाता है।

मीरांबाई को काव्यकला सहजसिद्ध थी। उन्हें संगीत का अभ्यास था। उनका ससुराल भी साहित्य तथा संगीत का प्रेमी था। वैधव्य मे यही उनका सहारा

1 मीरांबाई की पदावली, सं० प० परशुराम चतुर्वेदी पृ० ३०

था। उन्होंने कई रचनाएँ लिखी। उनके नाम पर अन्य कवि की पूरी की पूरी छ रचनाएँ प्रचलित की गई हैं तथा अनेक पुस्तक पद भी संदिग्ध हैं। इस विषय में अनुसंधाता ने श्री पुरोहित हरिनारायण जी के अनुभव का वर्णन किया है— मीराँ जी के पद मेरे पास ४०० के करीब इकट्ठे हो गये हैं। ये हस्तलिखित मुद्रित और मौखिक रूप में प्राप्त हुए हैं जिनका इतिहास बहुत है। पद बहुत से प्रामाणिक ही प्रतीत होते हैं। शेष संदिग्ध और मिलावट के या अशुद्ध दिखाई देते हैं। वास्तव में मीराँबाई के अनेक पदों की भी कबीर साहब आदि के पदों की भाँति ही बहुत कुछ दुर्दशा हो गई है। जिस किसी ने गाया है उसने उन्हें अपने रंग में रँगने की चेष्टा की है और अपने अपने विचारानुसार मीराँ के ढर्रे पर कितने ही ऐसे स्वरचित पद प्रचलित कर दिये हैं जो बिना ध्यानपूर्वक देखे भाले किये मीराँ रचित ही जान पड़ते हैं।[1]

प्रायः मध्यकालीन सभी प्रसिद्ध कवियों की रचनाओं की यह स्थिति है। कुछ रचनाएं लुप्त हो गई हैं मात्र नाम प्राप्त हैं तो कुछ रचनाओं के नाम का भी पता नहीं, और रचनाएं उपलब्ध हैं तो लेखक संदिग्ध है। लेखक का नाम है तो रचना संदिग्ध है। आचार्य कवि केशवदास के नाम पर १७ रचनाएँ मिलती हैं परन्तु अनुसंधाता ने खोज करके बताया कि उनमें ६ रचनाएँ प्रामाणिक हैं ७ अप्रामाणिक हैं तथा १ संदिग्ध है।

(घ) रचना कालका निर्धारण

साहित्य के इतिहास की दृष्टि से किसी भी रचना का निर्माण-काल महत्व रखता है। इसके साथ लेखक के जीवन का गाढ़ा संबंध है और उस की पृष्ठभूमि में युगजीवन प्रतिबिंबित होता है। रचना काल के निर्णय के साथ लेखक का और लेखक के निर्णय के साथ रचना काल का परस्पर सापेक्ष संबंध है। लेखक निश्चित है तो रचना काल लेखक के जीवन वृत्त के आधार पर अनुमान के सहारे निश्चित हो सकता है। परंतु लेखक के बारे में यदि अंतःसाक्ष्य या बहिर्साक्ष्य का अभाव रहा तो अनुमान पूर्ण सही नहीं हो सकता।

हिंदी के अनेक प्राचीन कवियों की यह शैली थी कि वे अपनी रचना के अंतर्गत निर्माण काल का संकेत स्पष्ट रूप से देते थे और रचना के अंत में अपना नाम भी छंदोबद्ध कर देते थे। फिर भी ऐसी अनेक रचनाएं मिलती हैं जिनमें इन दोनों प्रमाणों का अभाव रहता है। प्रति खंडित हो जाने से उसका प्रमुख हिस्सा लुप्त हो जाने से भी लेखक तथा रचना काल का संकेत अप्राप्त रहता है। ऐसी परिस्थिति में अनुसंधाता अनुमान की प्रक्रिया के बल पर निर्णय करने का

1 मीराँ बाई की पदावली, सं० परशुराम चतुर्वेदी पृ० ३०

प्रयत्न करता है। लेखक के जीवन के प्रसंगों की जानकारी इसमें सहायक हो सकती है।

(१) लेखक द्वारा दिया गया रचना काल—

प्राचीन कवि अपनी रचना में कभी सीधी और स्पष्ट शब्दावली में रचना काल लिखते थे, तो कभी सांकेतिक शब्दावली में। सांकेतिक शब्दावली पाठानुसंधान का एक अंग है।

(१) सांकेतिक शब्दावली—वे कवि सीधे अंकों में रचना काल का निर्देश न करके सांकेतिक भाषा में उसे छंदबद्ध करके रचना के प्रारम्भ में ही अपने उद्देश्य का प्रचार करते हुए कभी अपना तथा रचना का नाम भी देते हुए लिखते थे। जैसे कृपाराम ने 'हिततरंगिणी' का रचना काल इस प्रकार दिया है[1]—

'सिधि निधि सिवमुख चंद्र लखि माघ शुद्ध तृतियासु।
हिततरंगिणी हौं रची कविहित परम प्रकासु॥

अंक लगाने की शैली—सिधि ८, निधि ९ सिवमुख ५ चंद्र १

इस उदाहरण में चार तथ्य और उनकी व्याख्या इस प्रकार है—

(१) काल—ये कवि सांकेतिक भाषा में भी सीधे क्रम से न लिख कर उल्टे क्रम से लिखते थे। यहाँ दिया हुआ समय इस प्रकार पढ़ा जायगा—सं०१५९८ वि०, माघ सुदी ३।

(२) शीर्षक—हिततरंगिणी

(३) कवि—हौं—कृपाराम

(४) उद्देश्य—कविहित

पाठानुसंधान के अंतर्गत होते हुए भी महत्वपूर्ण होने के कारण यह अन्तःसाक्ष्य के प्रमाण के उदाहरण के रूप में अनुसंधित्सुओं की जानकारी के लिए दिया गया है।

(२) सीधी स्पष्ट शब्दावली 'रामचरितमानस' के निर्माण-काल में विवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। पहली की शैली न अपनाकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने स्वयं अपने ग्रंथ में रचना काल का निर्देश किया है—

संवत सोरह सै इकतीसा। करहुँ कथा हरिपद धरि सीसा।
नौमी भौम वार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

---

1 हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास, भा ६, पृ १६६

अनुसंधाता ने स्वयं ऐतिहासिक तिथि से इस की सगति लगा कर इस कथन को अन्त साक्ष्य रूप में स्वीकार किया है और उसके लिए तुलसीदास के जीवन प्रसंगों पर भी आव यक विचार किया है। वे लिखते हैं—

सीतामढ़ी से चल कर गोसाईं जी अयोध्यापुरी पहुँचे। वहाँ उन्होंने संवत १६३१ में, जबकि लग्न, ग्रह तथा राशि का वही योग था जो रामचन्द्र के जन्म के समय पड़ा था 'रामचरित मानस' की रचना आरम्भ की।[1]

(२) प्रत्यक्ष स्रोत की सहायता से काल निर्धारण में अनुमान —

(क) एक कवि द्वारा एक ही विषय पर दो रचनाएँ

कभी कभी कवि एक ही विषय पर दो रचनाएँ करता है तब प्रथम प्रयोग रूप होती है। उसका संशोधन कर वह नाम बदल कर दूसरी बार लिखता है। उस रचना में संतुष्ट होने पर उस में रचना काल का निर्देश करता है, परन्तु प्रयोगात्मक रूप में लिखी रचना का विशेष महत्व न मानने के कारण उस में रचना काल नहीं देता है। कवि देव के नाम पर इस प्रकार की दो रचनाएँ हैं—'जातिविलास और रसविलास। अनुसंधाता ने दोनों का विवरण इस प्रकार दिया है—

रसविलास—देव ने रचना-काल लिखा है—सं० १७८३ वि० विजयादशमी को। इसकी प्रामाणिकता स्वतः सिद्ध है। ग्रंथ के आरम्भ में तथा प्रत्येक विलास के अन्त में देवदत्त कवि का नामोल्लेख है। देव के अनेक प्रचलित छन्दों की पुनरावृत्ति रसरीति का क्रम आदि सभी उनके साक्षी हैं।[2]

'जातिविलास'—लेखक की एक रचना दूसरी रचना के समय का संकेत देती है— रसविलास जातिविलास' का संशोधित परिवर्द्धित संस्करण है। कारण नवीन छंद कम हैं थोड़े समय में पूरी की गई है। इसका रचना काल रसविलास' से कुछ पूर्व, अनुमानतः सं० १७८० वि० के आसपास माना जा सकता है। इसका वर्ण्य विषय है नारी सौंदर्य।[3]

(ख) एक कवि की पूर्ववर्ती एक या अनेक रचनाओं से आंशिक रूप में कृति का ग्रहण तथा नवीन नामकरण उसमें कुछ नवीन कृति का योग रचना काल के प्रमाण के अभाव में एक लेखक की दो रचनाओं की तुलना की जाय और प्रत्यक्ष स्रोत के रूप में एक में से दूसरे में उद्धृत अंश का पता चले तो अनुमान से रचना-काल का निर्णय किया जा सकता है। इसमें यह प्रश्न

1 गोस्वामी तुलसीदास श्यामसुन्दरदास पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, पृ०७३

2 देव और उनकी कविता डा० नगेन्द्र, पृ० ५३

3 वही, पृ० ५२

अवश्य रहता है कि किस रचना को प्रथम और किसको द्वितीय माना जाय? अवसर इसके लिए भी हमे उन रचनाओं से ही संकेत मिलते है। उदाहरण के रूप मे तुलसीदास की 'वैराग्य संदीपनी' और 'दोहावली' पर एक साथ विचार करने पर अनुसंधाता ने यह निष्कर्ष निकाला—

इसमे तो संदेह नही कि 'वैराग्य-संदीपनी' 'दोहावली' के संगृहीत होने से पहले बनी क्योंकि 'वैराग्य संदीपनी' के कई दोहे दोहावली मे संगृहीत है। इस बात की आशंका नही की जा सकती है कि 'दोहावली' ही से 'वैराग्य संदीपनी' मे दोहे लिए गए हो, क्योंकि 'वैराग्य संदीपनी' एक स्वतंत्र ग्रंथ है और 'दोहावली' स्पष्ट ही संग्रह ग्रंथ। दोहावली का संग्रह सं० १६४० वि० मे हुआ था। इससे यह ग्रंथ सं० १६४० से पहले ही बन चुका होगा।'[1]

देवकृत 'प्रेमचंद्रिका' का रचना-काल भी इस सिद्धान्तानुसार निर्णीत किया गया है। लेखक की एक रचना का निर्माण-काल निश्चित हो तो वह दूसरी रचना के काल निर्धारण मे आनुमानिक रूप से सहायक होती है।

(३) रचना शैथिल्य के आधार पर काल निर्धारण

सम्यक् प्रमाण मिल जाने पर कभी-कभी स्थापित मत के विरोध मे, युक्तियों के आधार पर मत स्थापन किया जा सकता है। उदा० भिखारीदास कृत विष्णुपुराण। यह संस्कृत विष्णुपुराण का भाषानुवाद है। इसमे निर्माण काल का उल्लेख नही है। मिश्रबंधुओं का अनुमान है कि शिथिल रचना के कारण यह दास की पहली कृति जान पडती है। अमर कोश का अनुवाद १७६५ मे किया गया है। इसके पूर्व १७६१ मे वे रसमारांश लिख चुके थे। इसलिए यह कल्पना सत्य नही जान पडती। 'नाम प्रकाश' के भाषानुवाद का कार्य भी छेड़ा गया हो यह संभावना की जा सकती है।'[2]

(४) एक ही रचना के काल निर्धारण मे दो शैलियों का प्रयोग

(१) *लिपिकार द्वारा दिया गया समय संकेत और पूर्ववर्ती रचना के निर्माण-काल के आधार पर रचना काल का निर्णय।* यथा

डा० नगेन्द्र देवकृत 'सुजान विनोद' (रसानन्द लहरी) के समय का निश्चय करते हुए लिखते हैं—'यह 'प्रेमचंद्रिका' पूर्व की रचना है। उसका रचना-काल सं० १७६० के आसपास हो तो 'सुजानविनोद' सं० १७६५ के आसपास मान लेना अनुचित न होगा।

1 गोस्वामी तुलसीदास, श्यामसुन्दरदास पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, पृ० ७६

2 भिखारीदास, प्रथम खंड विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ७

'कुसमरा निवासी प० मातादीन दुबे की प्रति काफी पुरानी है। सम्भवत देव के ही हाथ की हो। यह प्रति अपूर्ण है उसमे १५ छन्द हैं और आश्रयदाता का वर्णन है। दीक्षित जी की प्रति पूर्ण है और उसमे भी आश्रयदाता का वर्णन है। प० गोकुलचन्द्र लिपिकार द्वारा दिया गया समय स० १८०७ है। उसमे लिखा है—"शुभमस्तु श्रीरस्तु सम्वत् १८०७ मिति आश्विन मास शुक्ले पक्षे सुदि चतुर्थी बेनीधर त्रिपाठी स्वहस्ताक्षर तथा स्वपठनार्थ शुभम।[1]

'यह प्रति मौलिक सुजान विनोद से लिपिबद्ध है। देव की शैली इसम स्पष्ट है।[2]

(२) रचना की प्रसिद्धि का समय निर्धारण मे महत्व देवकृत सुजान विनोद —देव रचित प्रेमचन्द्रिका के बाद की कृति है ऐसा विधान करके अनुसंधाता ने पातीराम का परिचय दिया है जिनके पुत्र सुजानमणि के लिए यह रचना देव ने की। २ फिर सुजानविनोद की प० मातादीन वाली प्रति मे से सग्रहीत कुछ उदाहरण देकर लिखा—[3]

उपर्युक्त छद मिश्रबधु सपादित सुजानविनोद मे नही मिलते। उस प्रति म प्रारम्भ मे वे ३० छद नही हैं जो कुसमरा म प० मातादीन जी और भरतपुर म श्री गोकुलचन्द्र दीक्षित के यहा सुरक्षित प्रतियो म स्पष्ट मिलते है। कुसमरा की प्रति स० १८०७ वि० म बनीधर त्रिपाठी नाम क किसी व्यक्ति द्वारा अपने उपयोग के लिये लिखी हुई है। इससे यह तो निश्चित हो ही जाता है कि सुजानविनोद की रचना स० १८०७ स पूर्व अवश्य हो चुकी थी। किसी दूसरे व्यक्ति ने अपने पढ़ने क लिए यह प्रति तैयार की थी इसका अभिप्राय यह हुआ कि उस समय तक यह ग्रन्थ पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। इधर इसकी प्रौढ़ शैली और अन्य अन्त साक्ष्यों के अनुसार यह निश्चित हो रसविलास (स० १७८३) तथा प्रेमचन्द्रिका के भी बाद की रचना सिद्ध होती है। ऐसी दशा मे हमारा अनुमान यही है कि सुजान विनोद' की रचना स १७६० १७६५ क आसपास हुई है।[4]

दो विभिन्न तरीको स तथ्यसकलन और तथ्याख्यान का परिणाम एक मान के कारण अनुसधाता द्वारा दी गई युक्तिया ग्राह्य सिद्ध हुई। मत के समर्थन म ऐसी लम्बी प्रक्रिया को अपनाना वांछनीय है।

---

1 देव और उनकी कविता पृ० ५७

2 वही पृ० २४ २५

3 वही पृ० २५

4 वही, पृ० २६

(५) विषय और शैली की गंभीरता और प्रौढ़ता के आधार पर रचना काल का निर्धारण

देवकृत शब्दरसायन' के विषय में अनुसंधाता अपनी खोज के निष्कर्ष स्वरूप बताते हैं— भावविलास" से 'सुजानविनोद तक सभी ग्रंथो से इसका विषय और प्रतिपादन शैली गभीर है। नायिका भेद को हल्का समझकर छोड दिया गया है। किसी को यह ग्रन्थ समर्पित नही है। अन्यत्र कही इसका उल्लेख नही है। केवल विषय शैली की गम्भीरता तथा प्रौढता अन्त साक्ष्य के रूप मे उपलब्ध है। एक सुखसागर तरग को छोड, अन्य सब ग्रथो के पश्चात इसकी रचना तथा नीति और विराग की कविता हुई होगी।[1]

'रसविलास का रचना-काल स० १७८३ है। अतएव इसका रचना काल स० १८०० के आसपास हो सकता है। 'यह साहित्य सम्मेलन' द्वारा आज मुद्रित भी है। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त है।'[2]

अन्त साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के सम्मिलित बल पर निर्णय —

देवकृत प्रेमचंद्रिका का रचना काल कवि द्वारा नही दिया गया है। अनुसंधाता ने अन्त साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के आधार पर इसका निर्णय किया है[3]—

(१) अन्त साक्ष्य महाराज मर्दनसिह के पुत्र उद्योतसिह का समय तथा शैलीगत प्रौढता।

(२) बहिर्साक्ष्य—प्रेमचंद्रिका के छदो का अन्य ग्रथो म समावेश।

(३) सहायक प्रमाण—उद्योतसिह डौडिया खेरा के राजा थे। उनका समय १८वी शताब्दी का चतुर्थ चरण है।

(४) तुलनात्मक आलोचना— विषय शैली मे रस विलास' की अपेक्षा प्रौढ कवि की मनोवृत्ति क्रमश शरीर से मन मे और मन से आत्मा मे एकाग्र हुई है। अलकरण में आतरिक रसात्मकता है व्यजना शक्ति का विकास हुआ है। छन्दों की आवृत्ति का भवानी विलास 'प्रेमपचीसी और 'सुजानविनोद' से साम्य है। अन्य ग्रथो मे भी इन्ही छदों के साथ समानता देखी गई है।

(५) निष्कर्ष— प्रेम और विषय का अन्तर यथावत सुजान विनोद' मे भी है। पाँच दोहे अतिरिक्त मिलते हैं। इस प्रसग को पढ कर यह कल्पना सहज ही की जा सकती है कि प्रेमचन्द्रिका से ही सुजान विनोद' मे ये दोहे ये उद्धत किये गए हैं।

1 वही० पृ० ६०
2 वही० पृ० ६० ६१
3 वही० पृ० ५५

अगर क्रम उल्टा होता तो 'सुजान विनोद' के सभी दोहे 'प्रेमचंद्रिका' में उद्धृत होते क्योंकि उसके शेष पांच दोहे भी काफी सुंदर और महत्त्वपूर्ण हैं। अतएव हमारी धारणा है कि प्रेमचंद्रिका की रचना रसविलास से पहले हुई है। उद्योतसिंह के समय को देखते हुए हम उसे सं० १७६० के आसपास मान सकते हैं।

इसकी प्रामाणिकता में तो कोई संदेह नहीं है। उसके लिए भी वे सभी साक्ष्य उपस्थित किये जा सकते हैं जो भवानी विलास तथा रसविलास के लिए दिए गए हैं।'

(६) एक रचना की अनेक प्रतिलिपियों में से प्रामाणिक प्रतिलिपि की खोज—एक रचना की अनेक प्रतिलिपियाँ मिलने पर प्रामाणिकता के निकटतम की प्रति का सांगोपांग विवरण अनुसंधाता को अपने ग्रंथ में देना चाहिए। इस विवरण के अन्तर्गत कागज की बनावट, साइज, स्थिति, स्याही, लिपि और हस्ताक्षर की जाँच की जाती है। महाकवि मतिराम की रचना 'रसराज' की प्राप्त ७ प्रतिलिपियों का विवरण अनुसंधाता ने इस प्रकार दिया है[1]—

प्रतिलिपि—१—सबसे प्राचीन है।

२—पाँच सही एक बटे चार इंच चौड़े और छः सही एक बटे दो इंच लम्बे देशी मोटे कागज पर। देखने में यह प्रतिलिपि नई प्रतीत होती है जो देवनागरी लिपि में है (लिपिकाल—सं० १८४८ वि०)।

प्रतिलिपि—३—देवनागरी में लिखी यह पूर्ण एवं अशुद्ध प्रतिलिपि है। स्वदेशी कागज पर लिखी हुई ११५ पृष्ठों की प्रतिलिपि ६ इंच लम्बी और साढ़े तीन इंच चौड़ी है।

प्रतिलिपि ४—ना० प्र० स० काशी से ४ प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई—

(i) १२ इंच लम्बी और १० इंच चौड़ी, स्वदेशी खुरदुरे कागज पर पुरानी लिपि में लिखी हुई अपूर्ण है।

(ii) लिपिकाल—सं० १८८३ वि०। आकार रजिस्टर का। देखने में नई जान पड़ती है क्योंकि रोशनाई की चमक अभी बाकी है।

(iii) रजिस्टर साइज कागज नया, नीली-लाल रोशनाई का प्रयोग।

(iv) अत्यंत जीर्ण। अनुमान लगाना कठिन।

(७) निश्चित समय के अभाव में रचना क्रम —पूर्ववर्ती और परवर्ती रचनाओं के साथ तुलना द्वारा रचना क्रम का निर्णय हो जाने पर अनुमान से काम

---

1 महाकवि मतिराम डा० त्रिभुवनसिंह पृ० १२७ १२६

निर्धारण हो सकता है। ऊपर उद्धत प्रसंग में प्राप्त विवरण के आधार पर अनुसंधाता ने बताया कि "रसराज" में कवि व्यक्तित्व की प्रौढ़ता का अभाव है। फिर भी यह प्रथम रचना नहीं है। फूलमंजरी के प्रथम होने का प्रमाण उपलब्ध है। दूसरे यह रचना किसी राज्याश्रय में नहीं लिखी गई।

"रसराज, के बाद ललाम' की रचना हुई। रसराज' के छन्द 'ललित ललाम' में है। 'ललित ललाम' के रसराज' में नहीं हैं।

उपसंहार —

इस विस्तृत चर्चा के सार स्वरूप जो सिद्धान्त निकलते हैं उन्हें शास्त्रीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है—

लेखक रचना और रचना काल की प्रामाणिकता में अन्तःसाक्ष्य, बहिर्साक्ष्य जनश्रुति और सहायक प्रमाणों के अतिरिक्त अनुमान का भी महत्त्व है।

(अ) लेखक

(१) हस्ताक्षर की परीक्षा अमुक रचना के लेखक के स्थान पर किए गये हस्ताक्षर की जांच का प्रश्न अक्सर हस्तप्रतियों के बारे में उठता है। इस जांच में आधुनिक युग की वैज्ञानिक सुविधा के अनुसार माइक्रोस्कोप, कैमरा, मापकयंत्र तथा अन्य वैज्ञानिक साधनों की सहायता ली जाती है तथा इन साधनों के प्रयोग की एक निश्चित विधि है।

(२) भाषाशैली अन्तःसाक्ष्य के अन्तर्गत आने वाले इस प्रमाण से अनुसंधाता को विचार की एक निश्चित दिशा मिलती है। विशिष्ट प्रतिभाशाली लेखक भाषा शैली के माध्यम से प्रकट हो ही जाता है। व्यक्तित्व के साथ उसकी रचना का यह अंग इतना घुला मिला रहता है कि बड़ी आसानी से लेखक की पहचान हो जाती है। इसमें अनुसंधाता की सूक्ष्म परीक्षण शक्ति प्रयुक्त होती है। इतना ही नहीं, वह अपनी धारणा का दूसरों के लिए विश्वसनीय तब बना सकता है जब अन्य प्रमाण भी उसके पास हों। लेखक की भाषा की विशेषताएँ अनुमान में उपयोगी हैं। संदिग्ध और प्रामाणिक रचना की भाषा शैली में कितनी समता या विषमता है, यह देखकर अनुमान हो सकेगा।

भाषा के अन्तर्गत हिज्जे की विशेषता को भी अनुमान में महत्त्व दिया जाता है। यह विशेषता लिपिकार से सम्बन्धित न होकर व्यक्तिगत रूप से लेखक के युगविशिष्ट भाषा प्रयोग तथा साहित्यिक परंपरा के साथ-साथ लाक्षणिक प्रयोगों से संबंधित होनी चाहिए तथा उसे अन्य प्रमाणों से पुष्टि मिलनी चाहिए। मात्र इसी विशेषता को अन्तिम प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिए।

अगर कम उल्टा होता तो सुजान विनोद' के सभी दोहे 'प्रेमचंद्रिका' मे उद्धत होते क्योकि उसके शेष पाच दोहे भी काफी सुन्दर और महत्त्वपूर्ण है। अतएव हमारा धारणा है कि प्रेमचंद्रिका की रचना रसविलास से पहले हुई है। उद्योतसिंह के समय का देखत हुए हम उस स० १७९० के आसपास मान सकते हैं।

इसकी प्रामाणिकता मे तो कोई सदेह नही है। उसके लिए भी व सभी साक्ष्य उपस्थित किये जा सकते है जो भवानी विलास तथा रसविलास के लिए दिए गये है।'

(६) एक रचना की अनेक प्रतिलिपियों मे से प्रामाणिक प्रतिलिपि की खोज— एक रचना की अनेक प्रतिलिपियाँ मिलने पर प्रामाणिकता के निकटतम की प्रति का सांगोपांग विवरण अनुसधाता को अपने प्रबध म देना चाहिए। इस विवरण के अन्तर्गत कागज की बनावट साइज, स्थिति स्याही लिपि और हस्ताक्षर की जाँच की जाती है। महाकवि मतिराम की रचना रसराज' की प्राप्त ७ प्रतिलिपियो का विवरण अनुसधाता ने इस प्रकार दिया है[1]—

प्रतिलिपि—१—सबसे प्राचीन है।

२—पाँच सही एक बटे चार इंच चौड़े और छ सही एक बटे दो इंच लम्बे देशी मोटे कागज पर। देखने म यह प्रतिलिपि नई प्रतीत होती है जो देवनागरी लिपि में है (लिपिकाल—स० १८४८ वि०)।

प्रतिलिपि—३—देवनागरी म लिखी यह पूर्ण एव अशुद्ध प्रतिलिपि है। स्वदेशी कागज पर लिखी हुई ११५ पृष्ठो की प्रतिलिपि ९ इंच लम्बी और साढे तीन इंच चौडी है।

प्रतिलिपि ४—ना० प्र० स० काशी से ४ प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई—

(i) १२ इंच लम्बी और १० इंच चौडी स्वदेशी खुरदुरे कागज पर, पुरानी लिपि म लिखी हुई अपूर्ण है।

(ii) लिपिकाल—स० १८६३ वि०। आकार रजिस्टर का। देखने म नई जान पड़ती है क्योकि रोशनाई की चमक अभी बाकी है।

(iii) रजिस्टर साइज कागज तथा नीली-लाल रोशनाई का प्रयोग।

(iv) अत्यन्त जीर्ण। अनुमान लगाना कठिन।

(७) निश्चित समय के अभाव म रचना-क्रम —पूर्ववर्ती और परवर्ती रचनाओ के साथ तुलना द्वारा रचना क्रम का निर्णय हो जाने पर अनुमान स काम

---

1 महाकवि मतिराम डा० त्रिभुवनसिंह पृ० १२० १२६

निर्धारण हो सकता है। ऊपर उद्धृत प्रसग म प्राप्त विवरण के आधार पर अनुसधाता ने बताया कि 'रसराज' म कवि व्यक्तित्व की प्रौढता का अभाव है। फिर भी यह प्रथम रचना नही है। फूलमजरी के प्रथम होने का प्रमाण उपलब्ध है। दूसरे, यह रचना किसी राज्याश्रय मे नही लिखी गई।

'रसराज, के बाद ललाम' की रचना हुई। 'रसराज' के छद ललित ललाम' म हैं। 'ललित ललाम' के 'रसराज' मे नहीं हैं।

उपसहार —

इस विस्तृत चर्चा के सार स्वरूप जो सिद्धान्त निकलते हैं उन्हे शास्त्रीय रूप मे प्रस्तुत किया जाता है —

लेखक, रचना और रचना काल की प्रामाणिकता म अन्त साक्ष्य, बहिर्साक्ष्य जनश्रुति और सहायक प्रमाणो के अतिरिक्त अनुमान का भी महत्त्व है।

(अ) लेखक

(१) हस्ताक्षर की परीक्षा अमुक रचना के लेखक के स्थान पर किए गए हस्ताक्षर की जाच का प्रश्न अक्सर हस्तप्रतियो के बारे मे उठता है। इस जाच मे आधुनिक युग की वैज्ञानिक सुविधा के अनुसार माइक्रोस्कोप, कैमरा, मापकयन्त्र तथा अन्य वैज्ञानिक साधनो की सहायता ली जाती है तथा इन साधनो के प्रयोग की एक निश्चित विधि है।

(२) भाषाशैली अन्त साम्य के अन्तगत आने वाले इस प्रमाण से अनुसधाता को विचार की एक निश्चित दिशा मिलती है। विशिष्ट प्रतिभाशाली लेखक भाषा शैली के माध्यम से प्रकट हो ही जाता है। व्यक्तित्व के साथ उसकी रचना का यह अग इतना घुला मिला रहता है कि बडी आसानी से लेखक की पहचान हो जाती है। इसमे अनुसधाता की सूक्ष्म परीक्षण शक्ति प्रयुक्त होती है। इतना ही नही, वह अपनी धारणा को दूसरो के लिए विश्वसनीय तब बना सकता है जब अन्य प्रमाण भी उसके पास हो। लेखक की भाषा की विशेषताए अनुमान मे उपयोगी हैं। सदिग्ध और प्रामाणिक रचना की भाषा शैली में कितनी समता या विषमता है, यह देखकर अनुमान हो सकेगा।

भाषा के अन्तगत हिज्जे की विशेषता को भी अनुमान में महत्त्व दिया जाता है। यह विशेषता लिपिकार से सम्बन्धित न होकर व्यक्तिगत रूप से लेखक के युगविशिष्ट भाषा प्रयोग तथा साहित्यिक परपरा के साथ-साथ लाक्षणिक प्रयोगो से सबधित होनी चाहिए तथा उसे अन्य प्रमाणो से पुष्टि मिलनी चाहिए। मात्र इसी विशेषता को अन्तिम प्रमाण के रूप म स्वीकार नहीं करना चाहिए।

यदि यह विशेषता हमारे लेखक में प्रधान रूप से है और संदिग्ध रचना में भी है, तथा वैसे प्रयोग उसके समकालीनों में विरल हैं या बिल्कुल नहीं हैं तब तो उसे आधारभूत प्रमाण मानना चाहिए। परन्तु लेखक को निश्चय करते ■ भाषा की सादृश्यता या एकरूपता पर अधिक जोर नहीं देना चाहिए क्योंकि यह भी सम्भव है कि एक लेखक अपनी कल्पना या भावना को स्पष्ट करने वाली पदावली को दूसरे से ग्रहण करने को ललचाता है।

(३) विषय वस्तु, भाव विचार, उद्देश्य, चरित्र चित्रण की विशिष्ट शैली कथा विन्यास, गीत में लय और छन्द, पंक्तियों की संख्या और विस्तार आदि शिल्प तत्त्व लेखक तथा रचना दोनों की प्रामाणिकता की कसौटी में अनुमान की दिशा में सहायक होते हैं। इस कसौटी में व्यक्तिगत विविधताओं की संभावना को नहीं भूलना चाहिए। फिर भी सर्वेक्षित रचनाकाल ■ सौ वर्ष पूर्व के लक्षण उस रचना में यदि दिखें तो लेखक और रचना काल दोनों को संदिग्ध समझना चाहिए।

(४) अन्तःसाक्ष्य के रूप में लेखक का कथन यदि रचना में हो तो परीक्षण में सरलता होती है और यदि अन्य कुछ शंकास्पद न हो तो उसे प्रमाणभूत मानना चाहिए। परन्तु लेखक का कथन प्रक्षिप्त भी हो सकता है।

(५) लेखक के व्यक्तित्व के बारे में प्रचलित सामान्य अभिप्राय को उचित महत्त्व देते हुए भी अनुसंधाता की स्वतन्त्र विचार शैली अन्तिम निर्णय में अधिक उपयोगी होती है।

(६) रचना की लंबाई और विस्तार की दृष्टि से यह खोजने का प्रयत्न करना चाहिए कि वैसे विस्तार वाली लेखक की अन्य कोई रचना है या नहीं। अंतिम निर्णय पर पहुंचने के पूर्व लेखक के समकालीनों पर भी यह कसौटी लागू होनी चाहिए और तब निष्कर्ष निकाला जाय कि अमुक रचना उसी की है या नहीं। इस खोज में मुख्यतः कल्पना, लय आरोह अवरोह भाव विचार आदि विषयीगत तत्त्वों की खोज अनिवार्य है।

(७) गीत की असाधारण शैली, आत्मपरक गर्वोक्ति या आत्मश्लाघा भी लेखक का निर्णय करने में प्रमाण है।

(८) यह रचना किसकी है? इस प्रश्न के उत्तर में अनुमान की समस्या हल हो जाती है परन्तु प्रामाणिकता की दृष्टि से तीन प्रश्नों का उत्तर पाना शेष रहता है—

(i) क्या यह रचना उसी ने लिखी है, जिसका अनुमान किया गया है?

(ii) जो रचनाकाल बताया जाता है क्या वह तभी लिखी गई थी?

(iii) क्या उद्देश्य और परिस्थितियां वही था जो बताई जाती हैं।

(६) उत्तम प्रमाण है हस्तप्रति प्राप्त करना। फिर भी जिसके हस्ताक्षर है उसी की यह रचना है कि नहीं, यह निश्चित नहीं हो सकता।

(आ) रचना

रचना की प्रामाणिकता की जाँच में लेखक और रचना काल की खोज का प्रगाढ सम्बन्ध होने से इनके अन्तर्गत इस पर स्वत विचार हो ही जाता है। कुछ बातें ऐसी हैं जो केवल रचना से संबंध रखती हैं

(१) सर्वप्रथम यह जान लें कि छपे या लिखे हुए सभी को प्रामाणिक मानना भ्रम है।

(२) अमुक पाण्डुलिपि आपके अधिकार में है यह दावा नहीं चल सकता। उससे तो पाठक उत्तेजित ही होता है। लोग उसे देखना भी चाहेंगे और न दिखा सकने पर हमारी बात पर विश्वास नहीं करेंगे। उदाहरणार्थ 'तुलसी चरित्र' और 'मूल गोसाईं चरित'।

(३) रचना काल

(१) समय बीतने पर सामान्य स्याही का रंग ब्राउन हो जाता है और चमक लुप्त हो जाती है।

(२) कागज की लम्बाई चौड़ाई बनावट प्रकार और उसमें छपे अदृश्य अक्षरों में दिया हुआ समय संकेत जिसे अंग्रेजी में Water Marks कहते हैं उन सबके आधार पर अनुमान द्वारा रचना-काल का निर्णय होता है। पर देखा गया है कि प्राय यह जाँच अंतिम निर्णय के रूप में हमेशा प्रयुक्त नहीं हो सकती। कभी कागज ठीक हो सकता है रचना ठीक नहीं होती है और कभी उसके विपरीत भी होता है। रचना में जो समय दिया हो, उसके बहुत बाद का कागज हो तब भी तिथि गलत मानी जाएगी।

(३) छपी हुई पुस्तक में प्राय मुद्रक का काल भी छपा रहता है। यदि काल न छपा हो तो पुस्तक छपने में प्रयुक्त टाइप के विशिष्ट आकार प्रकार प्रामाणिकता की खोज में सहायक होते हैं। तब उस विशेष प्रकार के टाइप के बनने का इतिहास देखना चाहिए। यदि रचना में उसके पूर्व का समय दिया गया हो तो उस अन्त साक्ष्य को प्रमाणित नहीं मानना चाहिए।

(४) लेखक की मृत्यु तिथि के आधार पर रचना-काल का निश्चय हो सके तो प्रमाण पाने में सरलता रहती है। उदाहरणार्थ सन् १२०० ई० पूर्व लिखी गई रचना के बारे में इस प्रकार विचार किया जायेगा—लेखक सन् ११९९ ई० में मर गया हो तो प्रमाण माना जाय। परन्तु मृत्युतिथि सही हो और रचना-काल

निहित तथ्य का अनुसंधान और उसकी व्याख्या

३

निहित तथ्यो की खोज और उनका सकलन मनमाने ढग से नही हो सकता। कसौटी रूप में साहित्य शास्त्र के मानदण्ड और उसकी व्यावहारिक पूर्तिस्वरूप लेखक की रचनाओ से गृहीत उद्धरण तथ्य की प्रामाणिकता मे आवश्यक होते हैं। अनुसधाता जिस जिस तथ्य का विधान करता है उसकी स्पष्टता व्याख्या द्वारा करना आवश्यक है। व्याख्या बुद्धिसगत सत्याश्रित, सरल और सरस होनी चाहिए।

व्याख्या का रूप निश्चित नहीं हो सकता। वह टीका टिप्पणी, आलोचना भावार्थ विवरण विचार विस्तार आदि किसी भी रूप में हो सकती है। भूमिका, प्रस्तावना सम्पादकीय टीका आदि के लेखक भी ग्रन्थ की मुख्य विशेषता को लेकर तत्सम्बन्धी प्रश्न की व्याख्या के लोभ का सवरण नहीं कर सकते। यदि व्याख्याता कसे भी, लेखक के दृष्टिकोण को स्पष्ट कर रहा है तो अनुसधान कार्य मे उसकी व्याख्या सहायक और मार्गदर्शक है।

ललित साहित्य की व्याख्या मे रस भग की आशका रहती है परन्तु व्याख्याकार यदि मर्मज्ञ और कलाकार है तो रस की वृद्धि ही होगी न कि रसभग। स्वतन्त्र रूप से देखा जाय तो व्याख्या स्वय एक नूतन रचना भी प्रतीत होगी। परन्तु अनुसधाता मात्र व्याख्याता नही है इस बात को वह ध्यान म रखे और न वह भावावेश म बहे। उसे अतिशयोक्ति किए बिना सावधानी से तथ्य और सत्य की एकता की रक्षा करनी चाहिए।

अनुसधान के क्षेत्र मे व्याख्या के लिए ऐसा बधन नहीं हो सकता कि वह अपने आलोच्य विषय की सीमा के बाहर बिल्कुल न जाय। रचना की गूढता और गभीरता अपनी स्पष्टता के लिए सम्बन्धित विषयो का उल्लेख और चर्चा की अपेक्षा रखती है। प्राय इसमे अन्य प्रमाणो की आवश्यकता नही रहती कभी कभी गौण

रूप में लेखक के जीवनवृत्त से सम्बन्धित प्रमाण उपयोगी होते हैं। दर्शन, इतिहास, ज्योतिष आदि जिस जिस विषय से रचना सम्बन्धित हो उसका ज्ञान, और आवश्यक हो तो उसका उल्लेख तथ्य के प्रमाण और व्याख्या में आये बिना नहीं रहता।

विषय के मर्म को छूने के लिए और लेखक के व्यक्तित्व के यथार्थ दर्शन के लिए व्याख्या में प्रसार, विराम और गहनता तीनों समान रूप से आवश्यक हैं। उसकी जड़ और शाखा प्रसार और दीपक जलने तक स्पष्ट होता हो वे सब इस व्याख्या में सहायक होते हैं। साथ साथ व्याख्याता का सावधान रहना भी आवश्यक है कि लक्ष्य न छूटे और विषयांतर न हो जाय पिष्टपेषण न हो प्रवाह हो भाषा प्रयोग में दम न हो चुस्ती हो शैली सहज और स्वाभाविक हो फिर भी अपना उच्च साहित्यिक स्तर की रक्षा करती हो। कई प्रसंगों में लेखक स्वयं अपनी रचना में व्यक्त अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए व्याख्या देता है। यह व्याख्या विस्तृत न हो कर सांकेतिक होती है। अनुसंधाता को ऐसी सांकेतिक व्याख्या के रहस्य को पूर्ण रूप से स्पष्ट करना चाहिए।

तथ्यानुसंधान और तथ्याख्यान का वैज्ञानिक रूप में स्वीकार करते हुए भी उसे पूर्णत किसी एक निश्चित साँचे में ढाल कर स्थूल नियमों में जकड़ कर नहीं रख सकते। लेखक और रचना का विषय दोनों अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखते हैं वैसे अनुसंधाता का भी अपना व्यक्तित्व है अपनी भाषा शैली और भाव विचार की विशेष प्रणाली रहती है इस कारण उसमें भी विविधता दृष्टिगोचर होती है। विषयानुरूप भी इसमें विभिन्नता की संभावना रहती है।

क्रमिक रूप से निहित तथ्याख्यान के मोटे तौर से तीन विभाग हैं—

(१) रचनागत (विषयगत) तथ्य में निहित सत्य का साक्षात्कार।

(२) कृतित्व के माध्यम से लेखक के व्यक्तित्व (विषयीगत सत्य) का साक्षात्कार।

(३) काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों का साक्षात्कार और मौलिक उद्भावना।

जब तक अनुसंधाता प्रथम विषयगत सत्य को हृदयंगम नहीं कर सकता, तब तक वह लेखक के दृष्टिकोण को समझ नहीं सकता। इस प्रकार प्रथम तथ्याख्यान दूसरे तथ्याख्यान में साधन है। अवसर लेखक के दृष्टिकोण की जानकारी सही व्याख्या में सहायक होती है। जब दोनों की सम्यक जानकारी हो जाती है तब काव्य शास्त्र की पेचीदी गुत्थियों को सुलझाने की योग्यता प्राप्त होती है। वह स्थापित सिद्धान्तों के यथार्थ स्वरूप को समझता है उसके गुण दोषों का विवेचन सामयिक परिस्थितियों की संगति में उसमें परिवर्तन परिवर्द्धन और सुधार करने की अन्तर्दृष्टि

उसे प्राप्त होती है। प्रथम दो के अभाव में तीसरे में उसकी बुद्धि का प्रवेश ही असंभव है। यह क्रम विश्वविद्यालय के अभ्यास क्रम में भी देखने में आता है

तीनों में कुशलता पा लेने पर यह पृथक्करण उसके लिए अनावश्यक हो जाता है। फिर त्रिपुटी नहीं रहती मात्र एकांत सत्य शेष रह जाता है। वह इस सत्य का साक्षात्कार करते ही उस तथ्य को अपनी व्याख्या का विषय बना सकता है। वह किसी भी एक तथ्य की व्याख्या करेगा अन्य दो हमेशा उसके मार्गदर्शक और सहायक बने रहेंगे।

अनुसंधान के स्तर पर साहित्य में व्याख्या आलोचनात्मक होती है और उसके विषय अनेक होते हैं —

(क) रचनागत (विषयगत) निहित तथ्य की व्याख्या वर्ण शब्द प्रतीक रूपक द्विअर्थी शब्द, पदावली पंक्ति या वाक्य, अनुच्छेद प्रकरण या सर्ग ग्रंथ अभिव्यक्ति कौशल, रचनागत विशिष्टता छन्द अलंकार चरित्र की व्याख्या, प्रसंग अथवा घटना भावपक्ष उद्दीपन विभाव प्रकृति-वर्णन आलंबन विभाव आश्रय, रसपरिपाक।

(ख) कृतित्व के माध्यम से लेखक के (विषयीगत) व्यक्तित्व व्याख्या एक लेखक के संपूर्ण कृतित्व की एक व्यक्तिगत विशेषता स्वयं लेखक द्वारा अपने संपूर्ण कृतित्व में घटित होने वाली एक विशेषता की व्याख्या साहित्य में एक लेखक-वर्ग की एक सामान्य विशेषता लेखक के जीवन की एक घटना लेखक का संपूर्ण जीवन और कृतित्व, लेखक का बहिर्मुख व्यक्तित्व लेखक का अन्तर्मुख व्यक्तित्व लेखक द्वारा अपने संपूर्ण कृतित्व की व्याख्या लेखक का व्यक्तित्व विश्लेषण विषय और विषयी की एकता।

(ग) काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का साक्षात्कार और मौलिक उद्भावना-साहित्य में विशेष युग की विशेष प्रवृत्ति में उपलब्ध लक्षण समसामयिक साहित्य साहित्य के एक लेखक वर्ग की एक सामान्य विशेषता स्थापित सिद्धान्त मौलिक उद्भावना।

(क) रचनागत (विषयगत) तथ्य में निहित सत्य का साक्षात्कार

१ वर्ण

तथ्य—तुलसीदास जी ने रामचरितमानस का प्रथम वर्ण और अन्तिम वर्ण व है अर्थात ग्रंथारम्भ व कार में किया तथा ग्रन्थ की समाप्ति भी 'व' से की है।

उद्धरण—प्रारम्भ—'वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।

अन्त—ते संसारपतङ्ग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवा ॥

व्याख्या— व जलतत्व है। भाव यह कि रामचरितमानस प्रेमाम्बु से पूर्ण है। "[1]

२ शब्द—

तथ्य—तुलसीदास जी गुरुचरणकमल की धूलि की व न्ना करते हैं।

उद्धरण—बदौं गुरु पद पदुम परागा।

व्याख्या—पराग (पुष्प की धूलि) म तीन गुण होते हैं सुरुचि, सुवास और सरसता। रुचि स्वाद को कहते हैं (यथा सुचि सुरसरि रुचि निन्दरि सुधाहू) और वास ग ध को कहते हैं। मकरन्द के कारण पराग मे स्वाद गन्ध और रस का प्रवेश होता है। चरण कमल का मकरन्द अनुराग है (यथा पन्कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना)। इसी के कारण गुरुपदरज म सुरुचि, सुवास और सरसता है। [2]

यहाँ शब्द पराग' की व्याख्या का सम्बन्ध तुलसीदास जी द्वारा की गई सपूर्ण गुरु व दना से है।

३ प्रतीक—

तथ्य—कभी कभी एक ही शब्द चरित्र का रूप होता है। वह प्रतीकात्मक होने के कारण जड होते हुए भी चतन्य पूर्ण और स्थूल होते हुए भी सूक्ष्म भाव को मूर्तिमान करने वाला होता है। सूरदास जी ने 'सूरसागर के दशम स्कध मे श्रीकृष्ण लीला वर्णन मे वेणु' को इसी अर्थ म चित्रित किया है। परम्परा से यह प्रतीकात्मक चरित्र प्राप्त होने पर भी कवि की भाव व्यजना के प्रभाव से उसम अतिरिक्त सौन्दय प्रकट हुआ है। अनुसधाता ने अपनी व्याख्या द्वारा इस अथ सौन्दय को प्रकाश मे लाने का प्रयत्न किया है।

वेणु' की व्याख्या—वेणु का अर्थ है व + इ + अणु = जिसके समक्ष सारा ससार अणुमात्र है—इस लिए वह नाद ब्रह्म का प्रतीक है जिसके आगे समग्र ससार अणुमात्र है। इसी कारण वेणु म विश्व मोहिनी शक्ति है जिसका विमोहन प्रभाव अदभुत है।

उदा० पृ० ८ पर ४६ और ५०वें पद।

---

१ श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री रामचरितमानस विजया टीका सहित, प्रथम भाग, बाल काण्ड टीकाकार मानस राजहस विजयानन्द त्रिपाठी पृ० १

२ वही, पृ० ७

तथ्य—स्पष्ट शब्दों में कवि ने मुरली को अघटित घटना चतुर और योगमाया कहा है—

यथा०—तब लीनी कर कमल जोगमाया सी मुरली।
अघटित घटना चतुर बहुरि अधरासव जुरली॥

× × × ×

तथ्य—वस्तुतः उस रहस्य का उद्घाटन कवि ने स्पष्ट शब्दों में किया है—

उदा०—जाकी धुनि ते निगम अगम प्रगटित बड़ नागर।
नाद ब्रह्म की जननि मोहिनी सब सुख-सागर॥

और इसलिए शुद्ध प्रेमरूपिणी पंचभूत से अतीत गोपियाँ ही इसे सुन सकती है।[1]

इस प्रसंग में प्रत्येक व्याख्या आगे आने वाले प्रसंग के लिए तथ्य रूप है। अनुसंधाता ने प्रथम व्याख्या देकर मोहकरण तथ्य निरूपण द्वारा अपनी व्याख्या की पुष्टि की है। मात्र वर्ण्य ग्रन्थ से यह व्याख्या नहीं निकल सकती। श्रीकृष्ण लीला के रहस्य को जानने वाला भक्त हृदय कवि ही इस अर्थ को उसमें भर कर तदनुरूप चरितार्थ कर दिखाता है। अनुसंधाता के लिए तद्विषयक शास्त्रज्ञान अपेक्षित है। प्रतीकों का ऐसा प्रयोग वैदिक काल से भारतीय साहित्य में होता आया है। उदा०

'वेदों की भाषा सांकेतिक है। प्रतीकों को ऋषिगण बड़ी सावधानी से चुनते थे। ये प्रतीक ऐसे होते थे जिनसे उनके विचार कुसुम सुरभित रहें और समय के अनुसार उनका बाह्य अर्थ भी अनुकूल हो।

× × ×

प्रतीकों को समझने का सूत्र हाथ लगते ही वेद का रहस्य खुलने लगता है और तब ज्ञात होता है कि सारा ऋग्वेद आत्मा के संग्राम और उसकी विजय की सूक्ति है।

× × ×

बल्कि अश्व शक्ति का, आध्यात्मिक सामर्थ्य, तपस्या के बल का प्रतीक है। श्री अरविन्द कहते हैं जब ऋषि अश्वरूप वाले और गो जिसके आगे है ऐसा दान (ऋग् ८।२।३१) अग्नि से माँगते हैं तो वह वस्तुतः सौ-पचास घोड़ों के समुदाय जिनके आगे कुछ गौएँ चल रही हैं दानरूप में नहीं माँगते, वरन एक ऐसी शक्ति माँगते हैं जो प्रकाशयुक्त हो।'"[2]

---

1 नन्ददास रासपंचाध्यायी और भ्रमरगीत, सं० डा० सुधीन्द्र पृ० ११ २२

2 श्री अरविन्द साहित्य—एक झाँकी, विद्दु पृ० १६ २०

४ रूपक—

प्रतीक में एक शब्द में गूढ़ अर्थ रहता है रूपक अनेक प्रतीकों के समुच्चय से बनता है। ये दोनों गूढ़ अर्थ की व्यंजना करने वाले होते हैं। गोस्वामी तुलसी दास जी ने स्वयं अपने रूपक का निरूपण 'रामचरितमानस' में विस्तार से किया है।

तथ्य—रामचरित सर है। उसमें छन्द विषयक वर्णन इस प्रकार है।

उदा०—छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥

पुरइन सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई॥

व्याख्या—छन्द सोरठा और दोहा को उस सर का कमल तथा चौपाइयों को पुरइन (कमल की लता) माना है। इस ग्रन्थ के लगाने का रहस्य इसी कमल और पुरइन की जानकारी में भरा पड़ा है। कौन सा कमल किस पुरइन से निकला है इस बात के बिना जाने किस छन्द सोरठा और दोहे का किस चौपाई से सम्बन्ध है इस बात का पता नहीं चलता और सम्बन्ध बिना जाने यथार्थ अर्थ हो नहीं सकता। तालाब में पुरइन कहीं तो वहीं पर फूल दे देती है और कहीं भीतर दूर जाकर फूल देती है कहीं दूसरी पुरइनों से उलझती चली जाती है। अर्थ करने वालों को इसकी जानकारी की बड़ी आवश्यकता है।

अनुसंधाता ने बालकाण्ड के प्रारम्भ में सुवन्दना के प्रथम चार सोरठों को चार कमलों का गुच्छ और उनकी पुरइन को अयोध्याकाण्ड से आई बताया है। इसकी स्पष्टता के लिए व्याख्या की है—

'इसी बात को दिखलाने के लिए कवि ने इन सोरठाओं में 'बन्दौं' नहीं दिया, किसी में वन्द्य का नाम भी नहीं है। इन त्रुटियों की पूर्ति टीकाकारों को अन्दाज से करनी पड़ती है। इसमें मतभेद भी होता है और अर्थ में संशय रह ही जाता है। अवधवासियों की उपासना का नियम है कि पञ्चदेव की उपासना करके उनसे रामभक्ति मांगते हैं। तदनुसार चित्रकूट प्रकरण में पुरवासी पञ्चदेव का पूजन करते हैं (यथा करि मज्जन पूजहिं नरनारी। गनप गौरि त्रिपुरारि तमारी॥ रमारमन पद बन्दि बहोरी। बिनवहिं अंजलि अंचल जोरी॥) श्री गोस्वामी जी की भी अवधवासियों वाली उपासना है अतः ये भी पंचदेव की अंजलि जोड़कर वंदना करते हैं। वंदना यहाँ पुरइन से ली जायगी तथा जहाँ वन्द्य का नाम नहीं है उनकी पहिचान भी इसी पुरइन (चौपाई) से होगी। यह पुरइन अयोध्याकाण्ड से भीतर ही भीतर चली आई है, और इसने चार फूल बालकाण्ड के आदि में दिये।'[2]

---

1 विजय टीका पृ० ५

2 वही।

आगे इन चारों सोरठा रूपी कमलों की व्याख्या की गई है। कबीर के दार्शनिक रूपक और उल्टबासियों में रहस्यवाद का बहुत गूढ अर्थ भरा हुआ है। आत्मा परमात्मा की एकता को अपने आत्मानुभव बल पर उन्होंने अनेक रूपकों में प्रदर्शित किया है।

मनोवैज्ञानिक रूपक—उद्वेग रस।

"चिंता स्थायी भाव है और आवेग, दैन्य, मोह, औत्सुक्य, शंका, व्याधि, त्रास, असूया, विषाद, चपलता, ग्लानि और तर्क संचारी भाव हैं।

रूपक—इनका बीज है कामना जिसमें से रागद्वेष की जड़ें निकलकर कामना का प्रसार और विलास करती हुई अन्तस्तल की गहराई में दृढ़ होती हैं और अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के दो कूलों के बीच बहती हुई जीवन धारा से सिंचित होती हैं। इसका तना है चिन्ता, शाखायें हैं ये संचारी भाव जिन पर अभिव्यक्ति रूप फल फूल और पत्ते निकलते हैं। और इस अभिव्यक्ति रूप फल का रस है उद्वेग। इसकी रंगीनी मुग्ध करने वाली है किन्तु रसास्वादन बेचैनी करने वाला है जो कवि और पाठक दोनों के लिए अपरिहार्य है। इसी लिए बेचैनी से उनका प्रेम हो गया है और वे उसी में रम गये हैं।[1]

इस रूपक की यथार्थत व्याख्या समझने के लिये पूरा प्रकरण 'उद्वेग रस' पढ़ना आवश्यक है।

५ द्विमर्थी शब्द—

उच्च कलात्मक साहित्य में अनेक प्रसंगों में द्विमर्थी शब्दों का प्रयोग रहता है। रामचरितमानस में—

> मनि मानिक मुकुता छवि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
> नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥
> तैसहिं सुकवि कवित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं॥
> भगति हेतु विधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥

व्याख्या संस्कृत के महाकवियों की मणियाँ मेरे भाषा बंध में आकर अधिक शोभित होंगी। अहि के सिर में मणि, गिरि में माणिक और गज के सिर में मुक्ता होती है। ये सब रुचिर, अमोल और सुन्दर हैं, पर जैसी इनकी शोभा है वैसी उत्पत्ति स्थल में नहीं होती। सर्प के सिर पर मणि की क्या शोभा है? पर्वत में माणिक और हाथी के सिर में मुक्ता की क्या शोभा है? राजा के धारण करने पर

1 आधुनिक हिंदी कविता में मनोविज्ञान—डा उर्वशी ज सूरती, पृ १३० १३१

मणि, जो मुकुट में जटित होने पर माणिक की और सुंदरी के शृंगार में मुक्ता की स्वाभाविक शोभा से भी अधिक शोभा हो जाती है।

यहाँ तीन सुकवि हैं—(१) शम्भु (२) याज्ञवल्क्य और (३) भुशुण्डी। ये ही क्रमशः (१) अहि (२) गिरि और (३) गज से उपमित हैं। गरलकण्ठ होने से शम्भू को अहि से उपमित किया, वेद के सब तत्वों के धारण करने से याज्ञवल्क्य को गिरि से उपमित किया (यथा भारगत वेद तत्व सब तोर। पावन पर्वत वेद पुराना।) और खाने के दांत और तथा दिखाने के दांत और होने से, भुशुण्डी जी को गज से उपमित किया। भुशुण्डी जी दर्शन में कटुभाषी (काग) हैं, पर हैं बड़े मधुरभाषी (यथा मधुर वचन बोले तब कागा)। ये तीन सुकवि हैं (यथा-प्रमुख प्रभुणाइत सुकविना श्री शम्भुना)। इनकी कही हुई कथाएं यथाक्रम मणि, माणिक और मुक्ता हैं।

'जहाँ ये कथाएं हुई वहाँ इनकी जैसी चाहिए वैसी शोभा नहीं हुई। कैलास पर्वत पर एकान्त में शम्भु ने गिरजा से स्ववाणी में कथा कही। समाज में केवल भुशुण्डी की कथा हुई सो भी पक्षीभाषा में और पक्षियों के मध्य में। इसलिये कहते हैं कि 'अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी। छवि प्राप्ति के स्थान भी तीन हैं (१) नृप (२) किरीट और (३) युवती सो ज्ञान नृप है (यथा सचिव विराग विवेक नरेसू) कर्म मुकुट है (यथा मुकुट न होहिं भूप गुन चारी। यहाँ अपह्नुति अलंकार द्वारा भूप के चारों गुण—साम दाम, दण्ड, भेद को मुकुट कहा)। उपासना तरुणी है (यथा भगति सुतिय कल करन विभूषन)।

'अतः उमा शम्भु संवाद की शोभा मानस के ज्ञानघाट पर हुई, भारद्वाज याज्ञवल्क्य संवाद की शोभा मानस के कर्म घाट पर हुई, और गरुड़ भुशुण्डि संवाद की शोभा मानस के उपासना घाट पर हुई। यथा

सुठि सुंदर संवाद वर विरचेउ बुद्धि विचारि॥
ते येहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥

सबके स्वाधिष्ठान चक्र में ब्रह्मदेव का वास है वही ब्रह्मभवन है। परावाणी मूलाधार में रहती है। वहाँ से जब यह नाभि देश को प्राप्त होती है तब इसका नाम पश्यन्ती होता है और जब यह हृदय देश में अवस्थान करती है तब इसका नाम मध्यमा पड़ता है और जब कण्ठ-तात्वादि स्थान में आकर वर्णरूप अभिव्यक्त होती है तब इसका नाम वैखरी पड़ता है। वैखरी वाक् को ही अर्थबोध का सामर्थ्य है। इसी के द्वारा अपना मनोगत भाव दूसरे को बतलाया जाता है। परा पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी यथाक्रम वाणी को सूक्ष्मतम सूक्ष्मतर सूक्ष्म और

स्थूल अवस्थाएं है। सूक्ष्मतम अवस्था से स्थूल अवस्था में आना ही वाणी का ब्रह्मभवन से यहां पधारना है।[1]

इस व्याख्या में व्याख्याता अपनी पनी अनुसंधानप्रधान दृष्टि की विशेषता के कारण संपूर्ण ग्रंथ के प्रसंगो में प्रस्तुत चौपाइयों को अन्वित करके द्विअर्थी शब्दों के युक्तसंगत अर्थों पर विवेकपूर्वक विचार करके व्याख्या कर पाया है। परिणाम स्वरूप तुलसीदास की दृष्टि और व्याख्याता की दृष्टि में अभेद स्थापित हुआ।

६ पदावली—

कभी कभी संपूर्ण रचना में प्रयुक्त अमुक विशिष्ट पदावली पाठक और आलोचक के लिए भ्रम उत्पन्न करने वाली होती है और जिसकी युक्ति जिस पक्ष को अधिक प्रामाणिक मानती हैं उस पक्ष में व्याख्या सहित अर्थ का निर्णय देती है। एसे प्रसंगों में अवसर कवि के जीवन-वृत्त का भी उसी दृष्टि से अनुसंधान करके अनुकूल तथ्यों का संकलन और व्याख्या करने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रयत्न में प्रमाण से अधिक अनुमान का उपयोग होता है।

कवि श्री जयशंकर प्रसाद की रचना 'आँसू' की निम्नलिखित पंक्तियों ने आलोचकों और अनुसंधाताओं को दुविधा में डाल दिया है—

"शशि मुख पर घूंघट डाले
आंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूली में
कौतूहल से तुम आये।[2]

इन पंक्तियों में प्रयुक्त पदावली (१) शशि मुख पर घूंघट डाले, (२) अंचल में दीप छिपाये और आये शब्द का प्रयोग विचारणीय है। इस पर परस्पर विभिन्न दो मत है—

(१) कवि ने किसी लौकिक प्रेमिका के प्रति अपने ये भाव प्रकट किये है, परन्तु अपनी इस प्रणय कथा को गुप्त रखने के लिये आये शब्द का जान बूझकर प्रयोग किया है। 'शशि मुख पर घूंघट डाले' और 'अंचल में दीप छिपाये' स्पष्ट ही नारी सौन्दर्य और वेष भूषा का वर्णन है। अतः निष्कर्ष स्वरूप 'आँसू' को कवि-जीवन की विरह-कथा माना गया है।

(२) प्रसाद जी को कोई लौकिक प्रेमिका नहीं थी। वे उच्चकोटि के दार्शनिक थे और यह प्रेमाभिव्यक्ति उनका रहस्यवाद है। उन्होंने सूफी प्रेमसाधना

1 विजय टीका, पृ ३२ ३३
2 पृ १६ स पकरण १

नुसार परमात्मा का प्रेमिका रूप में वर्णन कर दिया है परन्तु सम्पूर्ण रचना में प्रियतम परमात्मा के लिये पुल्लिंग का प्रयोग हुआ है, उसी का यहाँ भी निर्वाह किया गया है।

सार रूप में ऊपर निर्दिष्ट विवेचन का आधार विभिन्न आलोचनाएँ हैं। कुछ आलोचनाओं की मोटी रूपरेखा यहाँ दी जाती है—

(१) 'प्रथम संस्करण में लगता है कि प्रेम भौतिक शरीरी तथा पार्थिव सौन्दर्य के प्रति रहा। द्वितीय संस्करण में उसे रहस्यवादी आवरण में रख कर आध्यात्मिक रूप देने की चेष्टा की गई है।

आँसू को पढ़ते हुए पहला प्रश्न यह होता है कि इसका आलम्बन कौन है?'

प्रसाद ने उसके लिए पुल्लिंग शब्दों का प्रयोग किया है कहा जाता है कि यह उर्दू के प्रभाव से है कुछ लोग यह मानते हैं कि आँसू रहस्यवादी कृति है और यह प्रिय वही अज्ञात रहस्यमय परम पुरुष है।'

यदि आँसू का आलम्बन वही अज्ञात माना जाय तो स्थूल शरीर का नखशिख वर्णन करने में कोई संगति नहीं है अतः यह निश्चित है कि आँसू का आलम्बन पारलौकिक नहीं है। वह कोई पार्थिव है जो शशि मुख पर घूंघट डाले है। परन्तु वह पुरुष नहीं था नारी ही थी॥ [1]

(२) उर्दू काव्य के प्रभाव ने काव्य को रहस्यात्मक रूप देने में बड़ा भाग लिया है। कवि पुल्लिंग में प्रेमिका को सम्बोधित करता है। परन्तु इस विदेशी पद्धति के प्रभाव से गड़बड़ी भी हो सकती है जैसे—

'शशि मुख पर आँचल में '

जिसे दूसरे संस्करण में प्रसाद को अन्तर में करना पड़ा।

आँसू के आलोचकों ने प्रसाद के मनस्तत्व को न समझते हुए उसकी कई प्रकार की व्याख्याएँ की हैं—

(१) आँसू ऐश्वर्यमय अतीत का क्रन्दन है।

(२) आँसू प्रेमविरह मूलक सांकेतिक काव्य है।

(३) आँसू जीवात्मा परमात्मा के सम्बन्ध का व्यंजक आध्यात्म-काव्य है।

(४) आँसू विशेष वाग्भंगिमा प्रधान काव्य है।

× × ×

1 प्रसादकाव्य विवेचन डॉ हरदेव बाहरी पृ ९६ १०३

"इसमें तो सदेह नही कि आँसू की प्रेरणा लौकिक प्रेम और विरह है। अध्यात्म से उसका सबध पहले सस्करण में नही जुड पाया था। कवि ने किसी से प्रेम किया था और उस सौन्दय पुत्तलिका के नख शिख के वणन भी मिलते हैं। ऐसी अवस्था मे उसे किसी भी प्रकार आध्यात्मिक या रहस्यवादी काव्य नही कहा जा सकता।"[1]

(३) 'आँसू' मे व्यक्ति के प्रति ही आकाक्षा प्रकट की गई है। इसमे अप्रमत्त नायिका-स्थूल सौन्दय का आकषण प्रबल है।"[2]

(४) आँसू' विरह काव्य है। आँसू के साथ ही एक प्रश्न यह उठा दिया जाता है कि इस विरह का आलम्बन क्या है? कवि का प्रेम किसी स्त्री के प्रति है या किसी पुरुष के प्रति, यह शका इसलिए उठाई जाती है कि प्रसाद जी ने कुछ स्थलो पर अपने प्रेमी को पुरुष के रूप मे सबोधित किया है।

बहुत से लोग आँसू के सम्बन्ध मे यह भ्रम भी उत्पन्न करते हैं कि यह रचना रहस्यवाद के अन्तगत आयेगी तथा वे इसमे आत्मा और परमात्मा के विरह निवेदन का रूपक भी ढूढ लेते हैं। किन्तु जो लोग ध्यान से आँसू तथा उसके पूव का प्रसाद काव्य पढेंगे वे आसू को निश्चित रूप स मानवीय बतलायेंगे।[3]

(५) पुस्तक पढने से अनुमान लगता है कि कवि ने किसी से प्रेम किया था। प्रेम व्यापार कुछ दिनो तक चलता रहा। पर फिर कवि के प्रिय ने सम्भवत उसे अपनाना छोड दिया और इस प्रकार अचानक प्रेम समाप्त हो गया।

कवि अपने प्रिय को सबोधित करके अपनी व्यथा कहता है। उसे प्रिय के प्रथम आगमन का स्मरण हो आता है और उस भी शब्दबद्ध करता है 'शशि मुख पर

आँसू के आलम्बन को लेकर भी विद्वानो म विवाद रहा है। कुछ लोग उसे अलौकिक सत्ता मानने के पक्ष म रहे हैं।

"दूसरी ओर कुछ लोगो का कहना है कि आँसू का आलम्बन कोई लौकिक ही है अलौकिक नही। दूसरी ही बात ठीक मालूम पडती है। इसके लिए कई तक दिये जा सकते हैं। सबसे बडी बात तो यह है कि आँसू अपने मूल रूप म प्रथम सस्करण मे अलौकिकता या रहस्यवादिता से दूर था। दूसरे सस्करण म कवि ने सशोधनो द्वारा उसे नया रूप दिया। अतएव स्पष्ट है कि अलौकिकता या रहस्य

1 कवि प्रसाद, रामरतन भटनागर, पृ ६४ ७२
2 जयशकर प्रसाद, इन्द्रनाथ मदान पृ २८
3 प्रसाद की कविताए सुधाकर पाण्डेय, पृ १७५ १७७

वादिता लादी हुई हु, प्रकृत नहीं है। दूसरे इसमें जो रूप वर्णन ह वह इतना सजीव और मामल ह कि स्पष्टत किसी हाड मांस के पुतले की ओर सकेत करता ह। तीसरे विराट सौन्दय-वणन का प्रभाव है। चौथे मानवीय विरह-वर्णन कारण अनभूत बोधकता और मार्मिकता।

'श्री रामनाथ 'सुमन' ने अपनी प्रसाद की काव्य साधना में लिखा है—'जिन दिनो आँसू लिखा जा रहा था तभी मैंने इसके छन्द सुने थे। सुनकर कहा—इसमे तो आप छिप न सके बहुत स्पष्ट हो गये।" कवि हँसकर चुप रह गया। यह भी उसी का समथक है। प्रसाद जी के घनिष्ठ मित्र श्री विनोदशकर व्यास ने भी कुछ इस प्रकार के सकेत दिये हैं। उनकी रचनाओ मे भी इस बात के सकेत हैं कि उनके जीवन म इस प्रकार की कोई घटना घटी थी।'

झरना म कवि कहता है—

(क) घर गई प्लावित तन मन सारा।
एक दिन तव अपाग की धारा।

(ख) निदय होकर अपने प्रति अपने को तुमको सौंप दिया। अपनी आत्म कथा मे भी कवि ने कहा है—

"मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देख कर जाग गया।
आलिंगन मे आते आते मुसक्याकर जो भाग गया॥
जिसके अरुण कपोलो की मतवाली सुन्दर छाया मे।
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया म॥
उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पथा की।

'मुझे लगता है कि 'आत्मकथा और झरना के सकेतो से ही आसू भी आबद्ध है। इस प्रकार आलम्बन लौकिक है अलौकिक नही।

आँसू' म आलम्बन को सवत्र पुलिंग रूप म रखा गया है—

(क) घर एक बार आये थे निःसीम गगन मे मेरे।

(ख) वे सुमन नोचते सुनते करते जानी मनमानी॥

यहाँ तक कि जहाँ अचल का वणन है वहाँ भी कवि ने पुलिंग का ही प्रयोग किया है—'शशि मुख पर ।' कहना न होगा कि स्त्री के लिए यह पुलिंग का प्रयोग उर्दू का प्रभाव है।

अलौकिकता का सकेत करने वाले स्थल बहुत अधिक नही हैं। [1]

---

1 कवि प्रसाद डा भोलानाथ तिवारी पृ ८१ ८८

वास्तविक आस्वादन करने वाले व्यक्ति को इस सत्य एवं यथार्थ की ओर देखना तो दूर रहा, मुड़ना भी नहीं चाहिए। यदि वह कविता का आनन्द ही लेना चाहता है तो उसे उतने समय के लिए एक बालक बन कर अपने सभी ज्ञान को भूल जाना चाहिए। उसमें कहे हुए को ईश्वर वाक्य मानकर कुछ समय के लिए तो अंध विश्वास ही कर लेना चाहिए। तभी उसका वास्तविक रस लिया जा सकता है।'[1]

(६) प्रकरण या सर्ग—

व्याख्या के नियम के लिए जो नियम पैरेग्राफ के लिए हैं वे सब प्रकरण या सर्ग के लिए भी हैं। दिनकर का खंडकाव्य 'रश्मिरथी' विशेष हेतु से लिखा गया है। कवि ने मानो उपेक्षित निम्न पात्रों के उत्थान का सहानुभूतिपूर्वक प्रयत्न किया है। महाभारत के उपेक्षित पात्र कर्ण को अपने खंडकाव्य का नायक बनाया और 'रश्मिरथी' से उसे गौरवान्वित किया। उसके प्रति होने वाले अन्याय से कवि हृदय पीड़ित हुआ और उसे न्याय देने को प्रेरित हुआ। न्याय से धर्म की रक्षा होती है। इस धर्म और अधर्म की समस्या पर कवि ने षष्ठम सर्ग में बड़ी गम्भीरता से विचार किया है। इस पर व्याख्याता ने अपने विचार प्रदर्शित किये हैं और आधार स्वरूप अन्त साक्ष्य को ही आगे रखा है—

क्या कहें धर्म पर कौन रहा या उसके कौन विरुद्ध चला ?

× ×

है क्या धर्म का किसी समय करना विग्रह के साथ शयन,

× +

है धर्म पहुँचना नहीं धर्म तो जीवन भर चलने में है

× ×

इस लिए ध्येय में नहीं धर्म तो सदा निहित साधन में है

× ×

फिर क्या विस्मय कौरव-पाण्डव भी नहीं धर्म के साथ रहे ?

व्याख्या इसी प्रसंग में इस बात की चिकित्सा की गई है कि महाभारत का युद्ध धर्मयुद्ध था या नहीं। उपसंहार यह निकलता है कि कोई भी युद्ध धर्मयुद्ध नहीं हो सकता। युद्ध के आदि मध्य और अन्त सब पापयुक्त होते हैं। जब हिंसा प्रारम्भ हो गई तब धर्म कहाँ रहा ? मनुष्य युद्ध इसलिए करता है कि वह जल्दी से अपना लक्ष्य प्राप्त कर ले। किन्तु लक्ष्य की प्राप्ति को धर्म नहीं कहते। धर्म तो लक्ष्य की ओर सन्मार्ग से चलने का नाम है। धर्म साध्य नहीं साधन को देखता है।

1 प्रवचन एक परिचय पृ ५३ ५४

किन्तु युद्ध में प्रवृत्त होने पर मनुष्य का ध्यान साधन पर नहीं रहता, वह किसी भी प्रकार विजय चाहने लगता है। और यही आतुरता उसे पाप के पंक में ले जाती है। फिर क्या आश्चर्य कि युद्ध में प्रवृत्त होने पर कौरव और पाण्डव, दोनों ने पाप किये दोनों ने विजय बिन्दु तक पहले पहुँच जाने में सन्मार्ग का त्याग किया ?"[1]

खण्डकाव्य में सर्ग रचना का अभिन्न अंग है परन्तु काव्य संग्रह में संकलित प्रत्येक गीत या कविता अपने आपमें पूर्ण और स्वतन्त्र होती है। उस एक गीत की व्याख्या के द्वारा हम कवि की अमुक समय की मन स्थिति का परिचय मिलता है। एक अन्तर्धारा रूप में सम्पूर्ण संग्रह में एक भावधारा या दृष्टिकोण प्राप्त होना सम्भव है, परन्तु यह नियम नहीं है। हिन्दी में इस प्रकार की व्याख्याएँ प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होती है। यथा, आधुनिक कवि (पंत) की समालोचनात्मक टीका।[2]

(१०) ग्रन्थ

सुमित्रानन्दन पंत' में डा० नगेन्द्र ने कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन करते हुए कवि की आरम्भिक रचना 'वीणा' से लेकर पंत के नव-जीवन दर्शन तक सब पर आलोचनात्मक व्याख्या की है। इस श्रेणी में ऐसे अनेक ग्रंथ और कवियों के नाम गिनाये जा सकते हैं। एक एक ग्रंथ व लेखक की एक रचना पर लिखा जाय ऐसी रचनाओं में रामचरितमानस सूरसागर, पद्मावत, प्रिय प्रवास, साकेत, कामायनी आदि गिनाये जा सकते हैं।

कई बार देखने मे आया है कि लेखक स्वय अपनी रचना के मर्मस्थल की ओर संकेत करते हैं और मानो वह संकेत हमें बता रहा है कि उसी की व्याख्या में सारे ग्रन्थ की रचना हुई है। यथा, मैथिलीशरण गुप्त की यशोधरा'। कवि ने मानो काव्य का दोहन करके काव्य के शीर्ष स्थान पर दो पंक्तियाँ लिख दी हैं जो उनकी रचना का मूल प्रेरणा-स्रोत कहा जा सकता है—

अबला जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखो में पानी।

इसके समर्थन में कवि ने शुल्क में शुद्धोधन के माध्यम से लिखा है—

गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको।

कोई भी व्याख्याता यशोधरा की चाहे जो व्याख्या कर उपयुक्त दृष्टि को छोड़ कर नहीं कर सकता।

---

[1] रश्मिरथी संक्षिप्त संस्करण, रामधारीसिंह दिनकर, पृ ८

[2] डॉ० लक्ष्मीनारायण टंडन, प्रेमी

किसी महान रचना या महान् लेखक की किसी एक विशेषता को भी अनुसार आलोचना या व्याख्या का महत्त्व दिया जाता है, क्योंकि यह एक ऐसा तत्त्व होता है जो लेखक की आत्मा का साक्षात्कार कराता है। यथा[1]—

तथ्य— प्रेमचन्द के सुभाषित और सूक्तियों में ही वास्तविक प्रेमचन्द बोलता है।

व्याख्या— 'जीवन की विविध झाँकियों में बचपन से लेकर बुढ़ापे तक, मनोवृत्तियों में दया और क्षमा से लेकर भय और सन्तोष तक, धर्म विश्वास के विचारों में सत्य और मिथ्या से लेकर प्रेम और वासना तक, नारी के विभिन्न रूपों में विधवा और परित्यक्ता से लेकर वेश्या तक, समाज के भिन्न भिन्न चित्रों में भाई बन्धु से लेकर दुनिया तक, पृथक-पृथक व्यवसायियों में किसान और वकील से लेकर विवाह प्रथा तक, शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रीशिक्षा से लेकर सहशिक्षा तक, आवश्यक मानवीय वस्तुओं में भोजन से लेकर आभूषण तक, विभिन्न वाद एवं संघर्षों में साम्यवाद से लेकर आदर्शवाद तक और ऐसे ही असंख्य फुटकर विचार क्षेत्रों में प्रेमचन्द ने पदार्पण किया है जिसका मूलरूप उनके यह सुभाषित और सूक्तियाँ हैं।

(११) शैली

इसी प्रकार 'हिन्दी की गद्य शैली का विकास'[2] में राजा शिवप्रसाद सिंह से लेकर जैनेन्द्र तक प्रत्येक महत्वपूर्ण लेखक की भाषा शैली की सम्यक व्याख्या की गई है। कभी कभी शैली की व्याख्या सूत्रात्मक होती है। उपन्यासकार भगवती प्रसाद वाजपेयी की संवाद की विभिन्न शैलियों के अनुसंधान ने प्रथम उदाहरण प्रस्तुत किए, उनके साथ अपनी टिप्पणी दी और निष्कर्ष रूप में तथ्य दे कर उनकी व्याख्या की। हास्य की व्याख्या सोदाहरण की गई है।

अनुसंधाता— 'संवाद की जितनी शैलियाँ वाजपेयी जी की हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है—

(१) इस शैली में सरल और सुस्पष्ट भाषा का प्रयोग हुआ है।
(२) कहीं-कहीं हास्य का भी पुट मिलता है।
(३) प्रश्नोत्तर की शैली में व्यंजना की प्रधानता है।
(४) सर्वत्र नाटकीयता पाई जाती है।
(५) प्रत्येक कथन के साथ मनोभावों का भी चित्रण किया गया है।'

[1] प्रेमचन्द सुभाषित एवं सूक्तियाँ सं० शरण, दो शब्द

[2] जगन्नाथप्रसाद शर्मा

(६) गृहस्थ जीवन और प्रेमालाप के प्रसंगों में रोचकता अधिक पायी जाती है।

(७) संवादों में प्राय जीवन दर्शन का स्पष्टीकरण होता है।[1]

(१२) अभिव्यक्ति-कौशल

भाषा शैली स्वरूप से स्वतन्त्र होते हुए भी लेखक के व्यक्तित्व को प्रतिबिंबित करने वाली होने के कारण एक ओर वह रचना के विषय से सम्बंधित है तो दूसरी ओर लेखक के अभिव्यक्ति-कौशल की परिचायक है। आ० रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों में प्राप्त अभिव्यक्ति कौशल की व्याख्या इस प्रकार तथ्य देकर की गई है—[2]

तथ्य १ शुक्ल जी के निबन्ध केवल मस्तिष्क के लिए व्यायाम नहीं जुटाते हृदय में अनुभूति की धड़कनें भी जगाते हैं। वे केवल हमारे चिन्तन को ही जाग्रत नहीं करते, हृदय को भी भाव विभोर करते हैं। इनमें हृदय और मस्तिष्क का अत्यन्त उपयुक्त सानुपातिक सामंजस्य है।

तथ्य २ यह भावात्मकता कई रूपों में मिलती है। मनोविकार, भावना या वृत्ति का विचारात्मक विवेचन करते समय उसकी परिभाषा स्वरूप, पृथकता, समानता आदि अत्यन्त गूढ़ गुम्फित गम्भीर शैली में उपस्थित करते हैं। तब श्रम परिहार के रूप में भावचित्रण रहता है।'

तथ्य ३ श्रमपरिहार के रूप में जो भावात्मकता आती है, वह अधिकतर व्यंग्य प्रधान होती है।

अन्तःसाक्ष्य के रूप में रचना में से उद्धरण

(१) 'लोभियों का दमन योगियों के दमन से किसी प्रकार कम नहीं होता। लोभ के बल से वे काम और क्रोध को जीतते हैं, सुख की वासना का त्याग करते हैं, मान अपमान में समान भाव रखते हैं।[3]

(२) वे शरीर सुखाते हैं। अच्छे अच्छे भोजन, वस्त्र आदि की आकांक्षा नहीं करते, लोभ के अंकुश से अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में रखते हैं। लोभियो! तुम्हारा अक्रोध, तुम्हारा इन्द्रिय निग्रह तुम्हारी मानापमान समता तुम्हारा तप अनुकरणीय है तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारी निर्लज्जता तुम्हारा अविवेक तुम्हारा अन्याय विगर्हणीय है। तुम धन्य हो। तुम्हें धिक्कार है!!"[4]

---

[1] शिल्प और चिन्तन, डॉ० ललित शुक्ल, पृ० ८१

[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जयनाथ नलिन पृ० ४१ ४२

[3] चिन्तामणि आ० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ८५

[4] वही-पृ० ८५

तथ्य—'यह व्यग्य प्रयोग भ्रम परिहार या रिलीफ के रूप में ही हमेशा नही होता, लेखक के हृदय की भावनाओ और तीव्र अनुभूतियो की अभिव्यक्ति के रूप मे भी आता है।

उद्धरण— रसखान तो किसी की नकुटी अरु कामरिया पर तीनो पुरो का राज सिंहासन तक त्यागने को तयार थे पर देश प्रेम की दुहाई देने वालो मे से कितने अपने थके मांदे भाई के फटे पुराने और धूल भरे परो पर रीझकर या कम से कम न रीझ कर बिना मन मला किये कमरे का फर्श भी मला होने देगे ? मोटे आदमियो ! तुम जरा सा दुबले हो जाते, अपने मदेने से ही सही, तो न जाने कितनी ठठरियो पर मास चढ जाता।'[1]

व्याख्या—अवतरण मे आचार्य ने बनावटी किताबी या फशनेबल देशभक्तो पर ही करारा व्यग्य वार नही किया प्रभावग्रसित भोले भाले देशभाइयो के लिए आत्मीयता और ममता भी प्रकट की है। देश की मार्मिक विषमता की ओर भी सकेत किया है। और व्यग्य तो कितना शानदार है कहने की बात ही क्या ? मोटे आदमियो ! चढ जाता ! अपने मदेवे से इस लिए कि बहुत अधिक मोटा होने से आदमी रोगो का शिकार बनता है किसी कामका नही रहता जीवन का आनन्द नही उठा पाता। इसलिये पतला होने धन का बँटवारा करने से तुम्हारा अपना ही लाभ है कोई उपकार नही। उपकार और मानव हित की आशा तो ऐसे पूँजीवादियो से की ही नही जा सकती। थोडा सा त्याग करने पर ही सकडो आदमियो को लाभ हो सकता है इस एक छोटे से वाक्य खड मे कितना कुछ भर दिया है शुक्ल जी ने।"

(१६) रचनागत विशिष्टता—

इसके अतर्गत लेखक की सपूर्ण प्रतिभा का आकलन हो जाता है। व्याख्याता सिद्धात का आधार लेकर निहित तथ्यो का उल्लेख कर उद्धरण देकर उसकी विस्तार से व्याख्या करता है। यथा

निबन्धकार की कला का उत्कर्ष इसी मे है कि वह सामान्य विषय को भी रोचक तथा सरस रूप मे प्रस्तुत कर उद्धरण उदाहरण आदि के द्वारा उसका कलेवर मण्डित कर पाठको के लिए उपयोगी तथा आकर्षक बनाये। इस दृष्टिकोण से ये तीनो निबन्ध परिचायक हैं। इन निबधो मे (कम्पोजीटर स्तोत्र' प्रभुजी मेरे औगुन चित न धरो' चोरी कला के रूप मे) रचनागत विशिष्टता (आदि मध्य और अवसान की उत्कृष्टता) प्रभाव-व्यजकता, मधु-मोरम, व्यवहार-कौशल्य, बुद्धि

---

[1] वही-पृ०७७

तथा मनका अगामी भाव अर्थात बौद्धिक तथा रागात्मक अथवा सौंदर्यात्मक निरूपण हुआ है। मुहावरा, लोकोक्तियां, उद्धरण उदाहरणों से ये निबंध पूर्णरूपेण प्लावित हैं। बाबू जी के निम्नांकित उद्धरण में वह विशिष्टता द्रष्टव्य है।'[1] आगे व्याख्याता ने उद्धरण दे कर विस्तार से व्याख्या की है।

(१४) छंद—कविता में छन्द कोई खिलवाड़ की वस्तु नहीं है 'संपूर्ण कवितासे उसकी प्रेरणा, प्रभाव, उद्देश्य, कवि का भाव, भाषा, और विषय सबमें छंद अभिन्न रूपसे अपना स्थान बनाये हुए हैं। छंद शास्त्री ने तथ्य निरूपण किया है कि— 'छंदों को भी सौन्दर्य शास्त्र के नियमों का मानना आवश्यक है।"[2] फिर उसकी व्याख्या की है— हम इस बात पर अधिक ध्यान देना चाहिए कि भाव तथा रस के अनुकूल ही वृत्ति हो। जो कवि इस ओर ध्यान नहीं देता वह सारे पिंगल का अध्ययन व्यर्थ ही करता है क्योंकि पिंगल का अंतिम ध्येय भावों रसों तथा भावनाओं को सरस और सुन्दर बनाना है। गणों का विचार इसी सुन्दरता की दृष्टि से किया गया है, परन्तु जो कवि गण संबंधी नियमों को रट लेता है और यह नहीं समझता कि क्यों ये नियम बनाये गये हैं और न उनकी भीतरी सुन्दरता का अनुभव करता है उसके लिए गणों के नियमों का स्मरण करना व्यर्थ है। इतना ही नहीं कवि स्वयं इन गुणों का अपने अनुभव तथा सौंदर्य शास्त्र के अनुसार दूसरा दूसरा नियम भी बना सकता है। और इन नियमों के पालन करने में उसे अपेक्षाकृत अधिक सफलता हो सकती है। कवि को स्वयं उसकी भीतरी सुन्दरता का भी अच्छी तरह से अनुभव कर लेना चाहिए। संभव है कि कवि भी स्वतंत्र रीति से उन्हीं सिद्धान्तों तथा नियमों पर पहुँच जाय जिस पर पहले के आचार्य पहुँचे थे।"[3]

उपर्युक्त उद्धरण में छंद विषयक तथ्य और उसकी सद्धांतिक व्याख्या बताई गयी अब उसका व्यवहार पक्ष देखें। श्री महावीर प्रासाद द्विवेदी कालिदास कृत मेघदूत में प्रयुक्त छंद की व्याख्या करने के पूर्व सिद्धांत और तथ्य देते हैं—

सिद्धांत—'कवियों की यह सम्मति है कि विषय के अनुकूल छंदायोजना करने से वर्ण्य विषय में सजीवता सी आ जाती है। वह विशेष खुलता है। उस की सरलता और सहृदयों को आनंदित करने की शक्ति बढ़ जाती है।"

तथ्य—'इस काव्य में शृंगार और करुण रस के मिश्रण की अधिकता है।'

व्याख्या—यक्ष का संदेश कारुणिक उक्तियों से भरा हुआ है जो मनुष्य कारुणिक आलाप करता है, या जो प्रेमोद्रेक के कारण अपने प्रेमपात्र से मीठी

---

[1] निबंधकार गुलाबराय, देवेन्द्रकुमार जैन पृ० १११

[2] नवीन पिङ्गल, अवध उपाध्याय, पृ० १४

[3] वही, पृ १४ १५

बातें करता है वह न तो साँप के सदृश टेढ़ी मेढ़ी चाल चलता है न रथ के सदृश दौड़ता ही है। अतएव उसकी बातें भुजङ्गप्रयात या रथोद्धता, या और ऐसे ही वृत्त में अच्छी नहीं लगतीं। वह तो ठहर ठहर कर कभी धीमे और कभी कुछ ऊँचे स्वर में अपने मन के भाव प्रकट करता है। यही जानकर कालिदास ने मन्दाक्रान्ता वृत्त का उपयोग इस काव्य में किया है। और यही जान कर उन की देखा देखी औरों ने भी दूत काव्यों में इसी वृत्त से काम लिया है"[1]

यहाँ सिद्धान्त पक्ष और व्यवहार पक्ष में जो एकता लक्षित होती है वह कोरा तथ्य नहीं, तथ्य के अन्तराल में छिपे सत्य का दर्शन है।

(१५) अलंकार —

मात्र कलापक्ष के निर्वाह के लिए बाह्य सुन्दरता के आग्रही, चित्र काव्य के प्रेमी कवियों की चर्चा करना यहाँ अभिप्रेत नहीं है। तुलसीदास जी जैसे सिद्ध कवि, जिनकी लेखनी के स्पर्श मात्र से, भाव तरंग से उच्छ्वसित भाषा अनायास अलंकार का धारण कर लेती है उनकी चर्चा है। रामचरितमानस का एक भी वर्ण तो क्या, एक मात्रा भी अतिशयोक्ति के लिए नहीं है, सब सप्रयोजन और सार्थक है। उसमें अलंकार की योजना अर्थ गाम्भीर्य और भाव सौन्दर्य की द्योतक हो तो क्या आश्चर्य ?

तथ्य—सीता स्वयम्वर के अवसर पर महारानी सुनयना राम की सुकुमारता और धनुष की कठोरता देख कर अत्यन्त व्याकुल हैं और उनकी सखि उन्हें एक के बाद एक तर्क देकर आश्वासन दे रही हैं—

उदाहरण—

दोहा—रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाइ॥ २५५॥

चौ०—सखि सब कौतुकु देख निहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहइ गुर पाहीं। ए बालक असि हठ भलि नाहीं॥
रावन बान छुआ नहीं चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥
सो धनु राजकुअर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं॥
भूप सयानप सकल सिरानी। सखि बिधि गति कछु जाति न जानी॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवंत लघु गनिअ न रानी॥
कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा। सोषेउ सुजसु सकल संसारा॥
रबि मंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा॥

[1] सचयन, स०प्रभात शास्त्री पृ १५६

दोहा—मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्ब।
महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब ॥ २५६ ॥

कवि ने राम के लिए चार उपमाओं का प्रयोग किया—कुंभज, रविमण्डल, मन्त्र और अंकुश। परन्तु राम के चरित्र से साम्यता नहीं दिखी—कुंभज महात्मा, सूर्य जलाने वाला, मन्त्र शक्तियुक्त, अंकुश पीड़ा देने वाला। सुनयना के कोमल हृदय का कवि को मानो खयाल हुआ और पाँचवीं उपमा देकर उसे सुख पहुँचाया—

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे॥
देबि तजिअ संसउ अस जानी। भंजब धनुषु राम सुनु रानी॥
सखी बचन सुनि भै परतीती। मिटा बिषादु बढ़ी अति प्रीती॥

इस प्रसंग में जिस प्रकार रानी सुनयना व तुलसी के हृदय की एकता है, वह व्याख्याता के हृदय की एकता दो में किसी एक के साथ हो जाने पर अलंकार का असली सौन्दर्य प्रकट हो सकता है इसमें चरित्र की व्याख्या का साधन अलंकार है।[1]

तथ्य—तुलसीदास सीता निरूपण में भी इसी प्रकार उपमाओं का प्रयोग करते करते अन्त में सही उपमा खोज निकालते हैं—

उद्धरण—

चौ०—उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं॥
सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमा सम किमि बैदेही॥
जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥

दो०—एहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल ॥ २४७ ॥

व्याख्या—इन उपमाओं के अन्वेषण में कवि सीता के विशुद्ध सौन्दर्य को मूर्तिमान देखना चाहते हैं। किसी लौकिक नारी से सरस्वती से पार्वती से रति से

[1] रामायण व्याख्यानमाला जनवरी फरवरी ७०, श्री सीतारामशरण भारतीय विद्याभवन बम्बई

बातें करता है, वह न तो साँप के सदृश टेढी मेढी चाल चलता है न रथ के सदृश दौडता ही है। अतएव उसकी बातें भुजङ्गप्रयात या रथोद्धता या और ऐसे ही वृत्त मे अच्छी नही लगती। वह तो ठहर ठहर कर कभी धीमे और कभी कुछ ऊचे स्वर मे अपने मन के भाव प्रकट करता है। यही जानकर कालिदास ने मन्दाक्राता वृत्त का उपयोग इस काव्य मे किया है। और वही जान कर उन की देखा देखी औरो ने भी दूत काव्यो मे इसी वृत्त से काम लिया है"[1]

यहाँ सिद्धान्त पक्ष और व्यवहार पक्ष में जो एकता लक्षित होती है, वह कोरा तथ्य नही तथ्य के अतराल म छिपे सत्य का दर्शन है।

(१५) अलकार —

मात्र कलापक्ष के निर्वाह के लिए, बाह्य सुन्दरता के आग्रही, चित्र काव्य के प्रेमी कवियो की चर्चा करना यहा अभिप्रेत नही है। तुलसीदास जी जसे सिद्ध कवि, जिनकी लेखनी के स्पर्श मात्र से भाव तरग स उच्छ्वसित भाषा अनायास अलकार का धारण कर लेती है उसकी चर्चा है। रामचरितमानस का एक भी वर्ण तो क्या एक मात्रा भी अतिशयोक्ति के लिए नही हैं सब सप्रयोजन और सार्थक है। उसमे अलकार की योजना अर्थ गाम्भीर्य और भाव सौ दर्य की द्योतक हो तो क्या आश्चर्य ?

तथ्य—सीता स्वयम्बर के अवसर पर महारानी सुनयना राम की सुकुमारता और धनुष की कठोरता देख कर अत्य त व्याकुल है और उनकी सखि उन्हे एक के बाद एक तर्क देकर आश्वासन दे रही हैं—

उद्धरण—

दोहा—रामहिं प्रेम समेत लखि सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाइ॥ २५५॥

चौ०—सखि सब कौतुकु देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहइ गुर पाहीं। ए बालक असि हठ भलि नाहीं॥
रावन बान छुआ नही चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥
सो धनु राजकुअर कर देहीं। बाल मराल की मदर लेहीं॥
भूप सयानप सकल सिरानी। सखि विधि गति कछु जात न जानी॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवत लघु गनिअ न रानी॥
कह कुभज कह सिधु अपारा। सोपेउ सुजसु सकल ससारा॥
रवि मडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा॥

[1] सचयन, स०प्रभात शास्त्री पृ १५६

दोहा—मन परम लघु जासु बस विधि हरि हर सुर सब।
महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्व ॥ २५६ ॥

कवि ने राम के लिए चार उपमाओं का प्रयोग किया—कुंभज, रविमण्डल मन्त्र, और अंकुस। परन्तु राम के चरित्र से साम्यता नहीं दिखी—कुंभज महात्मा सूर्य जलाने वाला मन्त्र गतियुक्त, अंकुस पीड़ा देने वाला। सुनयना के कोमल हृदय का कवि को मानो ख्याल हुआ और पाँचवीं उपमा देकर उसे सुख पहुँचाया—

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे ॥
देवी तजिय संसउ अस जानी। भंजब धनुषु राम सुनु रानी ॥
सखी बचन सुनि भै परतीती। मिटा बिषादु बढ़ी अति प्रीती ॥

इस प्रसंग में जिस प्रकार रानी सुनयना से तुलसी के हृदय की एकता है वैसे व्याख्याता के हृदय की एकता दोनों में से किसी एक के साथ हो जाने पर अलंकार का असली सौंदर्य प्रकट हो सकता है इसमें चरित्र की व्याख्या का साधन अलंकार है।[1]

तथ्य—तुलसीदास सीता चित्रण में भी इसी प्रकार उपमाओं का प्रयोग करते करते अन्त में सही उपमा खोज निकालते हैं—

उदाहरण—

चौ०—उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं ॥
सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई ॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया ॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमा सम किमि बैदेही ॥
जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई ॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू ॥

दो०—एहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि, कहहिं सीय समतूल ॥ २४७ ॥

व्याख्या—इन उपमाओं के अन्वेषण में कवि सीता के विशुद्ध सौंदर्य को मूर्तिमान देखना चाहते हैं। किसी लौकिक नारी से सरस्वती से, पार्वती से रति से

[1] रामायण व्याख्यानमाला, जनवरी फरवरी ७० श्री सीतारामशरण भारतीय विद्याभवन बम्बई

और लक्ष्मी में भी सीता के सौन्दर्य की समता होना सम्भव नहीं है ऐसी अनुपम त्रिभुवन सुन्दरी सीता को यदि हम अपने हृदयप्रदेश में मूर्तिमान करना चाहते हैं तो विशुद्ध सौन्दर्य का भी जो सार है उसे हम अपने मानस चक्षु से देखें। ये सारे उपमान तो दोषयुक्त हैं इसलिए सौन्दर्य खण्डित है अशुद्ध है। सीता तो सौन्दर्य की अवधि है सौन्दर्यमूर्ति कामदेव प्रथम शोभामृत के सागर में परम रूपमय कच्छप की पीठ पर शृंगार से मन्दराचल को रंग कर शोभा के इन्दु से अपने कमल कोमल सुन्दर हाथों से उसका मथन करे और अन्त में जो सारतत्व उपलब्ध हो उसी से सीता के सौन्दर्य को उपमित कर सकते हैं परन्तु तब भी संकोच बना रहता है ऐसा अनिर्वचनीय सौन्दर्य सीता का है।

कवि के इस अलंकार प्रयोग में काव्य का कलापक्ष तो अवश्य निखर उठता है परन्तु उद्देश्य है सीता का चरित्र चित्रण। इसमें कवि को पूर्ण सफलता मिली है। इस चित्रण में कवि हृदय की भावुकता और स्निग्धता बरबस प्रकट हो जाती है। सीताजी के प्रति कवि हृदय में कितना आदर कितना पूज्यभाव कितनी अनन्यता और श्रद्धा है इसका परिचय भी मिल जाता है। हम इन अलंकारों को पढ़ कर व्याख्या द्वारा कवि हृदय की इस स्थिति को अपने में अनुभव करने की क्षमता प्राप्त करनी होगी अन्यथा तथ्यानुसंधान और व्याख्या मात्र आडम्बर और वाग्जाल बने रहेंगे।

(१६) चरित्र की व्याख्या

सम्पूर्ण रचना में मुख्य चरित्र के लक्षण बिखर रहते हैं और अनुसंधाता को उनका संकलन करना होता है। परन्तु इनमें एक लक्षण मुख्य होता है और उस लक्षण को न खोजा गया या उसकी सम्यक व्याख्या न हो पायी तो चरित्र का वास्तविक स्वरूप दर्शन नहीं होता। यदि लक्षण की गलत या विपरीत व्याख्या हुई तो हमारा दर्शन दूषित होगा, उपलब्धि होगी ही नहीं।

तथ्य—रामचरितमानस में सीता के चरित्र पर विचार किया गया तो एक तथ्य ऐसा मिला कि सीता का चित्रण 'माया' रूप में है तथा दूसरा तथ्य ऐसा मिला जो इस तथ्य को काटता है कि सीता 'माया' नहीं है। ऐसे परस्पर विरोधी तथ्यों की उपलब्धि होने पर उसका निष्कर्ष व्याख्याता की बुद्धि और भावना पर निर्भर करता है।

व्याख्या—(१) राम और सीता मिलके अखण्ड ब्रह्म है, अन्यथा मनु शतरूपा की तपस्या से प्रसन्न होकर वरदान देने को राम अकेले ही प्रकट होते "

(२) "सीता जी माया नही हैं। जैसे 'माया को हटाओ' 'माया मिथ्या है,' 'अजामर्जाहिं' कहते हैं वैसे सीता जी के बारे मे नही कहा जा सकता। वह तो जगत जननी है—

(१) सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदम्बिका रूप गुन खानी ॥

(२) मोह मवल तनु सुंदर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी ॥

तुलसी सीताजी के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन कैसे करें? मात्र इशारा करते हैं! माँ के सौन्दर्य का वर्णन बेटा नही कर सकता। वे संकोच मे हैं।

इस स्थापना को कोई विरोधी सोन्हरण काट भी सकता हैं क्योंकि सीता जी का माया रूप मे वर्णन तो है—

उभय बीच सिय सोहति कैसे। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे ॥

परन्तु 'सोहति' शब्द सहायक होने से विरोधी तर्क टिक नही सकता।

'सोहति' की व्याख्या—माया जीव को विकृत कुरूप कर देती है, परन्तु यह शोभा बढाने वाली है अर्थात योगमाया है। अन्यत्र अनेक वर्णनो मे सीताजी की शोभा की विशेषता है—

बहुरि करऊ छबि जमि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई ॥

उपमा बहुरि कहऊ जित जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहनि सोही ॥

चरित्र चित्रण विषयक तथ्यो की उपलब्धि पुस्तक में से होती है। उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी—शिल्प और चिन्तन में अनुसधाता ने प्रथम पुस्तक मे उदाहरण दे कर उनके आधार पर तथ्यो का अवतरण करके, उनकी व्याख्या की है। चरित्रो का आकलन करने के लिए उन्होंने चरित्रो की विशेषताओ का सैद्धान्तिक रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है—[1]

(१) मानवतावादी।

(२) नये पुराने विचारो की गगा जमुनी।

(३) स्थिर—निर्मित और विकसित रूप।

(४) पात्रों के चित्रण वर्णन या उदघाटन—मनोवैज्ञानिक आधार पर

(५) सशक्त और अशक्त दोनो प्रकार के चरित्र।

(६) समाज के प्राय सभी रूपों की झाँकी चरित्रो द्वारा मिल जाती है।

---

[1] डा० ललित शुक्ल, पृ० ५५ ५६

(७) प्राय चरित्र प्रधान उपन्यास।

(८) चरित्र चित्रण की शैली मनोहर। कथानक दुरूहता नहीं।

(९) चरित्र मात्र यथार्थ और स्वाभाविक चित्रित करने के लिए रचे गए हैं।

(१०) चरित्रों के ऊपर सामाजिक युग का प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है।

कभी-कभी एक चरित्र की व्याख्या अन्य चरित्र द्वारा होती है—
यथा 'राधा' (सूरसागर)—

अनुवादक ने सूरसागर में राधा विषयक जो तथ्य उपलब्ध किए उन्हें सूत्रात्मक रूप में व्याख्या के शीर्षस्थान पर रख दिया—

तथ्य— परमानन्द रूप की मूल आदि प्रकृति राधा।

व्याख्या—सूरदास रचित जिन पदों के आधार पर 'राधा' की व्याख्या की गई है उनका सन्दर्भ अनुवादक ने पाद टिप्पणी में दिया है। कृष्ण के इस परमानन्दमय रूप का प्रकाशन ब्रज के जिन मानवियों के साथ हुआ है उनमें राधा का स्थान अन्य गोपियों में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। कवि ने जिस प्रकार कृष्ण को सच्चिदानन्द रूप आदि पुरुष कहा है उसी प्रकार राधा को आदि प्रकृति। दोनों में तात्त्विक अभेद है माया के कारण वे भिन्न भिन्न प्रकट होते हैं तथा लीला सुख के लिए उनके पृथक व्यक्तित्व हो जाते हैं।

राधा और कृष्ण की प्रेमलीला अनादि और अनन्त है। प्रथम बाल मिलन से ही दोनों के मन में गुप्त प्रेम प्रकट हो जाता है (सूरसागर ना० प्र० सभा काशी० पद १२९१)। बालक कृष्ण राधा को बातों में भरमाकर ले जाते हैं तभी कहते हैं— मैं जब भी और जहाँ भी शरीर धारण करता हूँ वहाँ तुम्हारे ही कारण। तुम्हारे स्नेह से मैं शरीर का ताप मिटाता हूँ और कामद्वन्द्व दूर करता हूँ। श्याम और श्यामा की गुप्त लीला सूर से कही नहीं जाती (वही पद १३०१)।[1]

इस ग्रन्थ के पद क्रमश १३३२ १३३३ १३५० १३६६ १३०० १३०६ १३१७, १३७१ १२९२ १२९४ १३०१ तथा सू० सा० (वें० प्रे०) पृ० २८२ २९२ २७२, २८७ ३०२ २८० २८७ ३४५ ३४७ ३५१ ६५२ ३५३ ४१२ ४१६ ४३० ४५१, ३७४ ३८३ ४०८ ४०९ ४१० ५०६ ५९२ के आधार पर बड़े विस्तार से राधा चरित्र की व्याख्या की गई है।

(१७) प्रसंग अथवा घटना—

तथ्य—श्रीरामचन्द्र का सदेश लेकर सीताजी के पास जाने के पूर्व हनुमानजी को समुद्रोल्लंघन करना पड़ता है। कार्य बड़ा दुष्कर है और देवता लोग 'सुरसा' को

1 सूरदास डा० ब्रजेश्वर वर्मा पृ० १६७ १७१

भेज कर हनुमान जी की शक्ति को तोलना चाहते है। सुरसा' हनुमान जी को खा जाना चाहती है। दोनों अपने शरीर को स्पर्धापूर्वक बढाते चले जाते हैं। हनुमान जी ने देखा, सुरसा की विशालता का कही अन्त नही। तब वे छोटे बन गये और उसके मुख मे प्रविष्ट हो के बाहर निकल आये—

> सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघुरूप पवनसुत लीन्हा।।
> बदन पइठि पुनि बाहर आवा। मागी बिदा ताहि सिरु नावा।।
>
> (सुन्दरकाण्ड)

व्याख्या—इसका तात्पर्य है—शास्त्रों का अन्त नही। सब में पण्डित होने का नाश छोड दो। शास्त्रो का मर्म जान लो। अन्यथा अभिमानवश अपने को बड़ा समझोगे परन्तु शास्त्रों का सार हाथ न लगेगा और खोज का अन्त भी न आवेगा। अभिमान छोड कर लघु' माने हल्के फुल्के हो जाओ अर्थात उपाधियों का सारा बोझ फेंक कर परमानन्द रूप हो जाओ।'

आधुनिक हिन्दी साहित्य यथार्थवाद' के साथ घटनात्मक सत्यता पर अधिक जोर देने लगा। परिणामस्वरूप आँचलिक उपन्यास लिखे जाने लगे। जहाँ तक हम उस प्रदेश विशेष के लोक जीवन और इतिहास नहीं जानते इन उपन्यासो की सही व्याख्या नही हो पाती। व्याख्या से अपेक्षा की जाती है कि एक लेखक के व्यक्तित्व और कृतित्व का या एक सम्पूर्ण रचना का अध्ययन करने वाला उसमे आए हुए सब विषयों का जानकार हो और लेखक के सम्पूर्ण जीवन वृत्त से परिचित हो। यदि रचना मे इतिहास, भूगोल, खगोल, ज्योतिष, आयुर्वेद, सैनिक शिक्षा, व्यापार, राजनीति, धर्म, वेदान्त, भक्ति, योग, शिक्षा, विज्ञान या चाहे कोई भी विषय हो व्याख्याता को तद्विषयक उतनी जानकारी अवश्य होनी चाहिए जिससे उनकी व्याख्या अधूरी गलत या विपरीत न हो जाय।

कबीर के रहस्यवाद का अध्ययन न करने के सिलसिले में अनुसंधाता ने योग का महत्व देखा और उसकी व्याख्या करके कबीर के मन्तव्य को समझने की चेष्टा की। बिना योगदर्शन की प्राथमिक जानकारी के यह नही हो सकता। अनुसंधाता ने योग के प्राथमिक सिद्धान्तों की व्याख्या की और शाब्दिक व्याख्या जहाँ अपूर्ण मालूम हुई चित्रों द्वारा कुण्डलिनी प्राणायाम और षटचक्र की व्यवस्था को समझाने का प्रयत्न किया।[1] ऐसे चित्र भी व्याख्या का एक महत्वपूर्ण अंग समझना चाहिए। व्याख्या और चित्र तब एक दूसरे के पूरक हो जाते हैं।

---

[1] कबीर का रहस्यवाद, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ७९ ८७

(१८) भावपक्ष—

सूरदास की काव्यकला की अनेक विशेषताओं में एक है भाव शिष्टता, जिसका अनुसधाता ने तथ्यरूप में उल्लेख करके उसकी परिभाषा और व्याख्या इस प्रकार दी है—

तथ्य— 'सूर की काव्यकला की एक विशेषता है भावशिष्टता—अनेक भावो की एक साथ एक ही पद में व्यजना ।

व्याख्या—भावशिष्टता का जैसा उन्मेष सूर के भ्रमरगीत में प्राप्त होता है वैसा अन्य कवियो में नहीं है। इसकी यह विशेषता है कि इसमें भाव-पात्रो का मा रूप धारण कर पाठक या श्रोता के हृदय में सघर्ष उत्पन्न कर देते है। इससे मानव व्यावहारिक जीवन की जडता से सवेदनशील हो कर पूर्णत इन्ही भावो में लीन हो जाता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

निरखत अक श्यामसुन्दर के बार बार लावति छाती ।
लोचन जल कागद मसि मिलिकै ह्वै गई श्याम श्याम की पाती ।

मौन गोपियो की यह अनन्यता प्रेमदैन्य विरहाकुलता और प्रेम भावना अन्यत्र दुर्लभ है। नीरस से नीरस हृदय व्यक्ति भी इन पक्तियो को पढ कर विचलित हो उठता है।'[1]

(१९) उद्दीपन विभाव प्रकृति वर्णन

भारतेन्दुरचित चन्द्रावली नाटिका के प्रकृति वर्णन की व्याख्या सोदाहरण, सिद्धान्त कथनपूर्वक गुण दोष की सम्यक चर्चा के साथ की गई है। व्याख्याता नाटककार के ध्येय को समझने की चेष्टा करता है—

तथ्य—चन्द्रावली नाटिका का तीसरा अक वर्षा-वर्णन से प्रारम्भ होता है। यहाँ नाटककार ने प्रकृति को उद्दीपन के रूप में रखा है—

उदाहरण—'सखी देख बरसात ... पाल सकती है।'

व्याख्या—इस कथन में उत्प्रेक्षा और उसके द्वारा नाटककार ने प्रकृति के व्यापारो को उद्दीपन का रूप प्रदान किया है। यहाँ पर प्रकृति का स्वरूपाकन न होकर हृदय की विरह भावना की अभिव्यक्ति ही प्रधान रूप से प्रस्तुत की गई है। मानव प्रकृति के साथ सर्वांगपूर्ण वर्षा का स्वाभाविक चित्रण कामिनी के शब्दों में कहलाया गया है—

उदाहरण— 'देख भूमि चारों ओर ... प्राय बात ही आया है।'

---

[1] सक्षिप्त भ्रमरगीत रतनमाला वन्य 'सूरकृत भ्रमरगीत आलोचना एव मूल्यांकन, पृ० ४६ ५०

व्याख्या—बाह्य प्रकृति के स्वरूप का प्रत्यक्षीकरण ही नाट्यकार का ध्येय प्रतीत होता है। प्रकृति के वर्षाकालीन व्यापारों को चुने नेत्रों से तो अवश्य देखा है, परन्तु उसकी मूल प्रेरणा बाह्य सौन्दर्य तक ही सीमित रह गई है। प्रकृति केवल भावोन्मेष करती है पर रसवत्ता के लिए भाव में स्थायित्व का होना अनिवार्य है और वह मानव में प्रकृति के प्रति आंतरिक प्रेरणा हुए बिना नहीं हो सकती। अतः उद्दीपन के प्रयोजन से प्राकृतिक दृश्यों की अवतारणा करना दोष नहीं है किन्तु जब प्रकृति का काम केवल प्रेम का उत्ताप और उन्माद बढ़ाना ही रह जाय तो नैसर्गिक सजीवता एवं प्रभावमयता नष्ट हो जाती है। प्रकृति तथा मानव को निकटतम लाने के लिए भाव विभोरता तथा चलनशील भाव धारा के प्रवाह की नितान्त आवश्यकता है। प्रकृति और मानवीय व्यापारों के अन्तस का समन्वय ही प्रकृति का सजीव तथा रसमय चित्र खींचता है।'

' प्रकृति चित्रण नाटिका के आकार प्रकार के विचार से आवश्यकता से अधिक लम्बा हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाट्यकार अपनी भावुकता को संयत नहीं रख सका है।'

(२०) आलम्बन विभाव—

व्याख्याता तथ्य के माध्यम से व्याख्या में स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ता है—[1]

तथ्य—'मुरली पर कही हुई उक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं क्योंकि उनसे प्रेम की सजीवता टपकती है।

व्याख्या—यह वह सजीवता है जो भरे हुए हृदय से छलक कर निर्जीव वस्तुओं पर भी अपना रंग चढ़ाती है। गोपियों की छेड़छाड़ कृष्ण तक ही नहीं रहती, उनकी मुरली तक भी—जो जड़ और निर्जीव है, पहुँचती है। उन्हें यह मुरली कृष्ण के सम्बन्ध से कभी इठलाती, कभी चिढ़ाती और कभी प्रेमगर्व दिखाती जान पड़ती है। उसी सम्बन्ध भावना से वे उसे कभी फटकारती हैं कभी उसका भाग्य सराहती हैं और कभी उससे ईर्ष्या प्रकट करती हैं—

उद्धरण—(क) माई री ! मुरली अति गर्व काहू बदति नहिं आज।
हरि के मुख कमल देखु पायो सुखराज ॥

1 भ्रमरगीत सार—आ० रामचन्द्र शुक्ल-पृ० १८७ १८६

(१८) भावपक्ष—

सूरदास की काव्यकला की अनेक विशेषताओं में एक है भाव शिष्टता, जिसका अनुसंधाता ने तथ्यरूप में उल्लेख करके उसकी परिभाषा और व्याख्या इस प्रकार दी है—

तथ्य—'सूर की काव्यकला की एक विशेषता है भावश्लिष्टता—अनेक भावों को एक साथ एक ही पद में पिरोना।

व्याख्या—भावश्लिष्टता का जैसा उन्मेष सूर के भ्रमरगीत में प्राप्त होता है वैसा अन्य कवियों में नहीं है। इसकी यह विशेषता है कि इसमें भाव-धारा नाना रूप धारण कर पाठक या श्रोता के हृदय में संघर्ष उत्पन्न कर देते हैं। इससे मानव व्यावहारिक जीवन की जड़ता से संवेदनशील हो कर पूर्णतः इन्हीं भावों में लीन हो जाता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"निरखत अंक श्यामसुन्दर के बार बार लावति छाती।

लोचन जल कागद मसि मिलिकै ह्वै गई श्याम श्याम की पाती।

मौन गोपियों की यह अनन्यता प्रेमदर्शन विरहाकुलता और प्रेम भावना अत्यन्त दुर्लभ है। नीरस से नीरस हृदय व्यक्ति भी इन पंक्तियों को पढ़ कर विचलित हो उठता है।"[1]

(१९) उद्दीपन विभाव प्रकृति वर्णन

भारतेन्दुरचित 'चन्द्रावली' नाटिका के प्रकृति वर्णन की व्याख्या सोदाहरण, सिद्धान्त कथनपूर्वक गुण दोष की सम्यक चर्चा के साथ की गई है। व्याख्याता नाटककार के ध्येय को समझने की चेष्टा करता है—

तथ्य—चन्द्रावली नाटिका का तीसरा अंक वर्षा-वर्णन से प्रारम्भ होता है। यहाँ नाटककार ने प्रकृति को उद्दीपन के रूप में रखा है—

उद्धरण—' सखी देख बरसात पाल मचनी है।"

व्याख्या—इस कथन में उत्प्रेक्षा और उपमा द्वारा नाटककार ने प्रकृति के व्यापारों को उद्दीपन का रूप प्रदान किया है। यहाँ पर प्रकृति का स्वरूपांकन न होकर हृदय की विरह भावना की अभिव्यक्ति ही प्रधान रूप से प्रस्तुत की गई है। मानव प्रकृति के साथ सम्बन्धित वर्षा का स्वाभाविक चित्रण कामिनी के शब्दों में कहलाया गया है—

उद्धरण— देख भूमि चारों ओर प्रलय काल ही आया है।"

[1] संक्षिप्त भ्रमरगीत, रतनलाल शर्मा : सूरकृत भ्रमरगीत आलोचना एवं मूल्यांकन, पृ० ४९-५०

व्याख्या—बाह्य प्रकृति के स्वरूप का प्रत्यक्षीकरण ही नाट्यकार का ध्येय प्रतीत होता है। प्रकृति के वर्षाकालीन व्यापारों को खुले नेत्रों से तो अवश्य देखा है, परन्तु उसकी मूल प्रेरणा बाह्य सौन्दर्य तक ही सीमित रह गई है। प्रकृति केवल भावोदय करती है पर रसवत्ता के लिए भाव में स्थायित्व का होना अनिवार्य है और वह मानव में प्रकृति के प्रति आंतरिक प्रेरणा हुए बिना नहीं हो सकती। अत उद्दीपन के प्रयोजन से प्राकृतिक दृश्यों की अवतारणा करना दोष नहीं है किन्तु जब प्रकृति का कार्य केवल प्रेम का उत्ताप और उन्माद बढ़ाना ही रह जाय तो नैसर्गिक सजीवता एवं प्रभावमयता नष्ट हो जाती है। प्रकृति तथा मानव को निकटतम लाने के लिए भाव विभोरता तथा चेतनशील भाव धारा के प्रवाह की नितान्त आवश्यकता है। प्रकृति और मानवीय व्यापारों के अन्तस का समन्वय ही प्रकृति का सजीव तथा रसमय चित्र खींचता है।

प्रकृति चित्रण नाटिका के आकार प्रकार के विचार से आवश्यकता से अधिक लम्बा हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाट्यकार अपनी भावुकता को संयत नहीं रख सका है।

(२०) आलंबन विभाव—

व्याख्याता तथ्य के माध्यम से व्याख्या में स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ता है—[1]

तथ्य— मुरली पर कही हुई उक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं क्योंकि उनसे प्रेम की सजीवता टपकती है।

व्याख्या—यह वह सजीवता है जो भरे हुए हृदय से छलक कर निर्जीव वस्तुओं पर भी अपना रंग चढ़ाती है। गोपियों की छेड़छाड़ कृष्ण तक ही नहीं रहती, उनकी मुरली तक भी—जो जड़ और निर्जीव है पहुँचती है। उन्हें यह मुरली कृष्ण के सम्बन्ध से कभी इठलाती, कभी चिढ़ाती और कभी प्रेमगर्व दिखाती जान पड़ती है। उसी सम्बन्ध भावना से ये उसे कभी फटकारती हैं कभी उसका भाग्य सराहती हैं और कभी उससे ईर्ष्या प्रकट करती हैं—

उदाहरण—(क) माई री! मुरली अति गर्व काहू बदति नहिं आज।
हरि के मुख कमल देखु पायो सुखराज॥

---

1 सूरदास - आ० रामचन्द्र शुक्ल पृ० १८४ १८६

(ख) मुरली तऊ गोपालहि भावति ।
सुन, री सखी ! जदपि नदनदहि नाना भाँति नचावति ।
राखति एक पायँ ठाढे करि प्रति अधिकार जनावति ।।
आपुन पौढि अधर सज्जा पर कर पल्लव सो पद पलुटावति ।
भकुटि कुटिल कोप नासापुट हम पर कोपि कपावति ।।

हृदय के पारखी सूर ने सम्बन्ध भावना की नवित का अच्छा प्रसार दिखाया है । कृष्ण के प्रेम ने गोपियो मे इतनी सजीवता भर दी है कि कृष्ण क्या कृष्ण की मुरली तक से छेड़छाड करने को उनका जी चाहता है । हवा से लड़ने वाली स्त्रियाँ देखी नहीं तो कम से कम सुनी बहुत ने होगी चाहे उनकी जिंदादिली की कद्र न की हो । मुरली के सम्बन्ध से कहे हुए गोपियों के वचन से दो मानसिक तथ्य उपलब्ध होते हैं—आलबन के साथ किसी वस्तु की सम्बन्ध भावना का प्रभाव तथा अत्यन्त अधिक या फालतू उमग के स्वरूप । मुरली सम्बन्धी उक्तियो म प्रधानता पहली बात की है यद्यपि दूसरे तत्व का भी मिश्रण है । फालतू उमग के बहुत अच्छे उदाहरण उस समय देखने मे आते हैं जब कोई स्त्री अपने प्रिय को कुछ दूर पर देख कभी ठोकर खाने पर ककड पत्थर को दो चार मीठी गालियाँ सुनाती है कभी रास्ते मे पडती हुई पेड की टहनी पर भ्रूभग सहित झुझलाती है और कभी अपने किसी साथी को यो ही ढकेल देती है ।'

अक्सर देखने म आया है कि तथ्य और तथ्याख्यान का मिला जुला रूप ही व्याख्याता मात्र व्याख्या के रूप मे प्रस्तुत करता है, परन्तु अनजान म भी खोज की प्रक्रिया का सही रूप अपनाने के कारण प्रत्येक व्याख्या आगे तथ्य के रूप मे परिणत होती जाती है क्योकि सत्य तक पहुचने की एकमात्र यही पद्धति है ।

उपर्युक्त व्याख्या म तथ्य सकलन और तथ्याख्यान की एक परम्परा सी बनी हुई है । प्रत्येक पिछला तथ्याख्यान आगे की व्याख्या के आधार स्वरूप तथ्यरूप म आता है । यथा

तथ्य— (१) मुरली विषयक उक्तियो मे प्रेम की सजीवता ।'
व्याख्या — यह सजीवता ईर्ष्या प्रकट करती है ।'
तथ्य— (२) इस व्याख्या म निहित तथ्य है—कृष्ण मुरली सबध भावना ।
व्याख्या— उद्धरण क आधार पर—" हृदय क पारखी सूर ने कद्र न की हो ।'
तथ्य— (३) ' दो मानसिक तथ्य उमग क स्वरूप ।

व्याख्या— "मुरली सम्बन्धिनी-उक्तियों में ... ठकेस देती है।"

तथ्य और तथ्याख्यान का यह अभिन्न स्वरूप निहित तथ्यों के विषय में जैसा सत्य प्रमाणित हुआ है वैसा विहित तथ्यों के विषय में हमेशा सम्भव नहीं है। कभी कभी एक विहित तथ्य में से उत्पन्न अन्य विहित तथ्य का हम व्याख्या के रूप में देख सकते हैं, जैसे लेखक का लौकिक जीवन जो अनेक तथ्यों का संग्रह है, उनमें कोई कोई तथ्य उसकी सजीव प्रतिभा के निर्माण में निमित्त होता है और फलस्वरूप रचना की उपलब्धि होती है। तब हम कह सकते हैं कि "लेखक के जीवन के इस प्रसंग को समझने के लिए उसकी यह अमुक रचना पढ़ो" अथवा" लेखक की इस रचना की सही व्याख्या के लिए उसके जीवन के अमुक प्रसंग को भली भाँति जानो। इस प्रकार ये दोनों परस्पर सापेक्ष हैं।

दूसरे तथ्य की व्याख्यास्वरूप उत्पन्न रचना स्वयं में व्याख्या होने पर भी व्याख्याता उस रचना को लेखक के कृतित्व के एक तथ्यरूप में उसे ग्रहण करता है और वह अपने विवेक के प्रकाश में अनुसंधान के आधार पर व्याख्या करता है, क्योंकि रचना को अमुक तथ्य की व्याख्या बता देने से पाठक या अनुसंधाता को हार्दिक संतोष नहीं होता और व्याख्या के अभाव में ऐसी स्थापना पर विश्वास भी नहीं जमता। इस कारण विहित तथ्यों का अनुसंधान और उसकी व्याख्या न की जाय तब तक अनुसंधान कार्य पूर्णता की दिशा में आगे नहीं बढ़ पाता।

२१ आश्रय—

आ० रामचन्द्र शुक्ल ने सूर के पदों में पाया कि[1]

तथ्य—'आलम्बन की रूप प्रतिष्ठा के लिए कृष्ण के अंग प्रत्यंग का सूर ने जो सैकड़ों पदों में वर्णन किया है वह तो किया ही है, आश्रय पक्ष में नेत्र व्यापार और उसके अद्भुत प्रभाव पर एक दूसरी ही पद्धति पर बड़ी ही रम्य उक्तियाँ और बहुत अधिक हैं।

व्याख्या—'रूप को हृदय तक पहुँचाने वाले नेत्र ही हैं। इससे हृदय की सारी आकुलता, अभिलाषा और उत्कंठा का दोष इन्हीं रूपचारकों के सिर मढ़ कर सूर ने इनके प्रभाव प्रदर्शन के लिए बड़े अनूठे ढंग निकाले हैं। कहीं इनकी न बुझने वाली प्यास की परेशानी दिखाई है कहीं इनकी चपलता और निरंकुशता पर इन्हें कोसा है। इस प्रकार के नेत्र-व्यापार वर्णन आश्रय-पक्ष दोनों में होते हैं। सूर ने आश्रय-पक्ष में ही इस प्रकार के वर्णन किये हैं, जैसे—

---

[1] सूरदास, पृ १८३ १७४

मेरे मना विरह की बेलि बई।
सींचत नार नन के सजनी मूल पतारा गई॥
विगसति लता सुभाय आपने, छाया सघन भई।
अब कसे निरुवारौं, सजनी! सब तन पसरि गई॥

२२ रसपरिपाक—

व्याख्याता ने रस के अभाव में नायक पक्ष या लेख को काव्य सत्ता का अधिकारी नहीं माना है और रस परिपाक को काव्य की कसौटी में अनिवार्य बताते हुए भूषण की कविता में से तथ्यानुसंधान किया है कि[1]—

भूषण की कविता वीर रस की है।

सिद्धान्त— पात्र के उत्कर्ष उसकी ललकार, दानों की कथा धर्म की दुर्दशा आदि में किसी पात्र के हृदय में उनको मिटाने के लिए जो उत्साह उत्पन्न होता है और जिससे वह क्रियाशील हो जाता है उसी के वर्णन से वीर रस का स्रोत पाठक या श्रोता के मन में उमड़ता है। वीर चार प्रकार के माने जाते हैं— युद्धवीर दयावीर दानवीर और धर्मवीर।

व्याख्याता ने आगे विस्तार से रस निरूपण किया है और पुनः तथ्यनिरूपण करते हैं[2]—

भूषण की कविता के नायक शिवाजी और छत्रसाल उस वीर हैं जिनमें चारों प्रकार का वीरत्व पाया जाता है। अतः भूषण ने चारों प्रकारों के वीरों का वर्णन किया है। यथा,

दानवीर—

साहित ने सर जाकी कीरति सो चारो ओर,
चादनी वितान छिति छोर छाइयतु है।
भूषन भनत ऐसो भूप भोसिला है
जाके द्वार भिच्छुक सदा ई भाइयतु है॥
महादानि शिवाजी खुमान या जहान पर,
दान के प्रमान जाके यो गनाइयतु है।
रजत की हौंस किये हेम पाइयतु जासों
हयन की हौंस किये हाथी पाइयतु है॥

---

1 शिवराज भूषण, टीकाकार प० राजनारायण शर्मा, भूमिका

2 वही, पृ० ५६

व्याख्या—इस कविता मे शिवाजी के दान का वर्णन है। यहाँ भिक्षुक लोग आलंबन हैं। दान पात्र की सत्पात्रता, यश और नाम की इच्छा उद्दीपन हैं। याचक की इच्छा से भी अधिक दान देना अनुभाव है और याचक की संतुष्टि देखकर हर्ष आदि उत्पन्न होना संचारी भाव है। इस तरह यहाँ रस का बहुत अच्छा परिपाक है।

(ख) कृतित्व के माध्यम से लेखक के व्यक्तित्व (विषयीगत सत्य) की व्याख्या

१ एक लेखक के संपूर्ण कृतित्व की एक व्यक्तिगत विशेषता—[1]

[प्रचलित मत के विरुद्ध अभिप्राय]

तथ्य— प्रसाद जी के नाटकों की चौथी विशेषता उनकी गम्भीरता है जो नाटककार के उद्देश्य प्रकृति और विषय जनित है।'

व्याख्या—'इसी गम्भीरता के कारण प्रसाद जी के नाटकों में हास्य का अभाव है। स्कन्दगुप्त के मुद्गल और मातृगुप्त के वार्तालाप में वे अवश्य कुछ सफल हुए है। अन्य नाटकों में भी उन्होंने संस्कृत नाटक के समान विदूषक रखे हैं पर ब्राह्मणों का पेटूपन आधुनिक रुचि के अनुकूल नहीं। नाटकों की गम्भीरता करुण रस के प्राधान्य के कारण है। ये नाटक सुखान्त नहीं कहे जा सकते। ये वास्तव में 'ट्रेजडी-कमेडी'—करुण सुखान्त नाटक हैं और इस रूप में वे संस्कृत नाटकों के अधिक अनुरूप हैं।

देवसेना का वैराग्य उसकी असफलता के ही कारण है भौतिक सुखों के अभाव की वैराग्य की शांति पूरी करती है जिसके कारण नाटक की सारी कथा वस्तु मे गम्भीरता आ गयी है। पात्र दार्शनिक हो उठते हैं अन्तिम दृश्य तक उन्हें संसार के वैभव-भूषण भौतिक सुख साधन हास उपहास से कोई सरोकार नहीं रहता। परन्तु यह दार्शनिकता पात्रों के चरित्र विकास के कारण हैं। पात्र प्रारम्भ से ही दार्शनिक नहीं रहते और न नाटक ही दार्शनिक कहा जा सकता है।

अपनी व्याख्या के समर्थन मे अन्य मत का उद्धरण—

बहुधा प्रसाद जी के चरित्रों पर एक बाह्य दार्शनिकता का आरोप किया जाता है। अपने आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास मे प्रसाद जी की आलोचना करते हुए पंडित कृष्ण शंकर शुक्ल लिखते हैं 'उनके पात्रों मे दोहरा व्यक्तित्व रहता है। वास्तव में उन्हें कर्म की सामर्थ्य पर अचल विश्वास था।' इसमें एक और तथ्य निहित है—"प्रसाद जी का नियतिवादी होना फिर भी कर्म की सामर्थ्य पर अचल विश्वास होना।"

1 प्रसाद के तीन ऐतिहासिक नाटक, राजेश्वर प्रसाद मंगल, पृ० ३३ ३७

उपर्युक्त मत को लेखक के प्रति न्याय बुद्धि से प्रेरित समीक्षा—

व्याख्याता ने उद्धृत मत का सर्वांश म स्वीकार नहीं किया है। प्रसाद जी को अधिक से अधिक न्याय देने की चेष्टा की गई है। शुक्ल जी ने उनके पात्रों म 'कृत्रिम व्यक्तित्व' का आरोपण किया है। इसको काटते हुए समीक्षा की गई है— प्रसाद जी को भयानक जीवन संग्राम करना पडता था और इस कारण अपनी ही अनुभूति को लेकर यदि प्रसाद जी के चरित्र जीवन संघर्ष मे असफल हो अदृष्ट म विश्वास करें तो यह कृत्रिम व्यक्तित्व' नहीं। यह तो एक मनोवैज्ञानिक परिस्थिति ही समझी जावेगी। साधारण मनुष्य जब अपनी सांसारिक कठिनाइयों म असफल हो अदृष्ट और नियति की पुकार मचाने लगते हैं, तब हम उन पर दार्शनिकता का आरोप नहीं करते। प्रसाद जी के नाटकों को इस रूप में दार्शनिक समझना भ्रम है। यह अवश्य है कि उनके कुछ निज के विचार हैं, परन्तु प्रत्येक कलाकार का कुछ न कुछ उद्देश्य रहा करता है—उनके कुछ न कुछ जीवन के सिद्धान्त रहा करते हैं। परन्तु उनके नाटकों और पात्रों को दार्शनिक कहना भूल है।'

न्यायबुद्धि के कारण अन्य मतों से अप्रभावित और लेखक के प्रति सहानुभूति—

आगे व्याख्याता ने कृष्णशंकर जी से मेल खाने वाले विचारों का उद्धृत किया है परन्तु उससे अपनी असहमति और प्रसाद जी के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है और निष्कर्ष रूप मे बताया है कि बाह्य संघर्ष और प्रतिक्रिया स्वरूप अन्तर्द्वन्द्व के कारण ही नियतिवाद और कर्म मे विश्वास' उनके पात्रों की विशेषता है।

२ स्वयं लेखक द्वारा अपने सम्पूर्ण कृतित्व में घटित होने वाली एक विशेषता—

अनुसंधाता वैज्ञानिक अन्वेषण की वृत्ति से प्रेरित होकर अपने विवेक क प्रकाश में ही तथ्यसंकलन और उसकी व्याख्या करे। फलत हम इस व्याख्या की सहायता से रचनाओं मे लेखक के व्यक्तित्व दर्शन की दृष्टि पाते हैं। प्रत्येक अनुसंधाता के लिए इस प्रकार की व्याख्याओं का मात्र सचाई समझने के लिए विवश होना और लेखक का अभिप्राय तथा ईमानदारी का प्रसंग हमें खटके परन्तु इस विषयमें पूर्वाग्रह से प्रेरित न होना अच्छा है।

इस प्रकार के व्याख्या प्रसंगों में लेखक कभी स्वतन्त्र रूप से तथ्यनिरूपण करके उसकी व्याख्या करता है तो कभी-कभी अन्य आलोचकों के विचारों मे प्रतिफलित होने वाले अभिप्राय से तथ्य अवलंबन कर उनका प्रथम उल्लेख करके उसकी व्याख्या करता है। यह व्याख्या कभी अनुकूल प्रतिकूल सम्मिलित अभिप्राय से युक्त होती है। इस व्याख्या का स्वरूप आत्म ज्ञान और आत्म विश्लेषण प्रधान होने क कारण वह लेखक के अन्तर्मुख व्यक्तित्व की परिचायक होती है।

तथ्य—"यह कहा जाता है कि मेरी कविताओं में सुन्दरम और शिवम में भी बड़े लक्ष्य सत्यम का भी बोध नहीं होता है साथ ही उनमें वह अनुभूति की तीव्रता नहीं मिलती जो सत्य की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है।'[1]

व्याख्या—यह सच है कि व्यक्तिगत सुख दुःख की सत्य को अथवा अपने मानसिक संघर्ष को मैंने अपनी रचनाओं में वाणी नहीं दी है क्योंकि यह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। मैंने उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है। 'गुंजन' में 'तप रे मधुर मन' '*मैं सीख न पाया अब तक सुख से दुख को अपनाना*', आदि अनेक रचनाएँ मेरी इस रुचि की द्योतक हैं। मुझे लगता है कि सत्य शिव में स्वयं निहित है। जिस प्रकार फूल में रूप रस है फल में जीवनोपयोगी रस और पुष्प की परिणति फल में सत्य के नियमों द्वारा ही हो सकती है। यदि कोई वस्तु उपयोगी (शिव) है तो उसके आधार भूत कारण उस उपयोगिता से संबंध रखने वाली सत्य में अवश्य होनी चाहिए नहीं तो वह उपयोगी नहीं हो सकती। इसी प्रकार अनुभूति की तीव्रता भी सापेक्ष है और मेरी रचनाओं में उसका सम्बन्ध मेरे स्वभाव से है। सत्य के दोनों रूप हैं शराबी शराब पीता है यह सत्य है उसे शराब नहीं पीना चाहिए यह भी सत्य है। एक उसका वास्तविक (फैक्चुवल) रूप है दूसरा परिणाम से सम्बन्ध रखने वाला। मेरी रचनाओं में सत्य के दूसरे पक्ष के प्रति मोह मिलता है, वह मेरा संस्कार है, आत्मविकास (सबलिमेशन) की ओर जाना। अनुभूति की तीव्रता का बोध अन्तर्मुखी (इन्ट्रोवर्ट) स्वभाव। क्योंकि दूसरा कारण रूप अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्त न कर उसके फलस्वरूप कल्याणमयी अनुभूति को वाणी देना है। मेरे पल्लव काल की रचनाओं में, तुलनात्मक दृष्टि से मानसिक संघर्ष और हार्दिकता अधिक मिलती है और बाद की रचनाओं में आत्मोत्कर्ष और सामाजिक अभ्युदय की इच्छा।"

उपर्युक्त विस्तृत व्याख्या का अन्त पुनः एक नवीन तथ्य के उल्लेख में हुआ है। सजग लेखक को अपनी रचनाओं में निहित प्रत्येक सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथ्य का बोध रहता है और अन्तर्मुखता के कारण वह उसकी व्याख्या करने में भी समर्थ रहता है। लेखक ने इस तथ्य की फिर आगे व्याख्या की है। तथ्य और व्याख्या का यह क्रम इस लेख के अन्त तक फैला हुआ है। इसके अनुशीलन से यदि लेखक की दृष्टि हमें मिल जाय तो व्याख्या का मुख्य तात्पर्य लेखक के व्यक्तित्व का दर्शन सिद्ध हो जाय।

अपनी रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ गुणों का दावा तो हर कोई लेखक कर सकता है परन्तु उसकी असलियत की कसौटी है। यदि सचमुच वे गुण लेखक की कृतियों में हैं तो लिखते लिखते समय के साथ और भी उन्नत रूप में वे हमारे सम्मुख

---

1 आधुनिक कवि-२, सुमित्रानन्दन पंत, पर्यालोचन' पृ० ६७

आयेंगे, अन्यथा वे धीरे धीरे गायब हो जायगे उस पर कृत्रिमता का आवरण रहेगा या विकृत रूप म वे सम्मुख आवेंगे।

पंत जी ने अपनी रचनाओं मे निहित सत्य की जो बात जिस रूप में प्रस्तुत की उसका विकसित रूप हमे उनकी '४६ से ५६ की कविताओं मे भी मिलता है। स्वयं लेखक के शब्दों मे—

"यदि मैं संक्षेप मे कहूँ तो पिछले दशक की मेरी समस्त रचनाओं में परिस्थितियों के सत्य के ऊपर मानव चेतना के सत्य को प्रतिष्ठित करने का आग्रह है। जीवन चेतना प्राणतरीह पशुओं के धरातल पर परिस्थितियों के अनुरूप बनती है। किन्तु मनुष्य के मध्य रीढ स्तर पर उसने परिस्थितियों को बदल कर उनका अपनी आवश्यकता के अनुरूप निर्माण किया है और उन पर मानव चेतना की छाप लगाई है।"[1]

तुलसीदास जी के पूर्व की घटना की व्याख्या करते हुए अनुसंधाता ने उसमे निहित सत्य पर अधिक ध्यान रखा है।[2]

तथ्य— 'पत्नी के मायके चले जाने पर तुलसीदास जी का शव को नाव समझ कर उस पर बैठ कर नदी पार करना तथा ससुरगृह बंद देख कर लटकते हुए सर्प को रज्जु समझकर उसके सहारे मकान में प्रवेश करना।

व्याख्या—' शव और सर्प की कथा को अक्षरशः सत्य मानने के लिए बहुत ही विश्वासी प्रकृति चाहिए। पर यह कथा चाहे सत्य न हो उससे तुलसीदास के स्त्री प्रेम के वेगवान उद्रेक की जो सूचना मिलती है वह अवश्य सत्य है और वही हमारे काम की है।

व्याख्या की सहायता से बाह्यसाक्ष्य और अनुमान—

बाह्यसाक्ष्य— मूलचरित मे वेणीमाधवदास ने यह सब कथा न लिखकर केवल 'कौनिउ विधि सरि पार कर' कह कर उन्हे ससुराल के दरवाजे पर पहुचा दिया है।

अनुमान—संभवत उनके वृहत गोसाई चरित मे यह कथा दी हो।

४ लेखक का संपूर्ण जीवन और कृतित्व—

यहाँ पर इसका पूरा विस्तार नहीं किया जा सकता यह तो एक पूरे प्रबंध का विषय है। इस लिए मोटी रूपरेखा म संक्षिप्त विवरण ही दिया जाता है जो तथ्यसंकलन और तथ्याख्यान का सार है।

---

1 शिल्प और दर्शन, सुमित्रा नंदन पंत पृ० २६५

2 गोस्वामी तुलसीदास और पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, पृ० ४०

३ लेखक के जीवन की एक घटना—

प० प्रताप नारायण मिश्र के जीवन और साहित्य का अनुसंधान करने पर जो कुछ उपलब्ध हुआ वह इस प्रकार है[1]—

प्रथम खण्ड

जीवनी—जन्म नामकरण वंशवृक्ष, वंश गोत्र जन्मभूमि, निवास-स्थान बाल्यकाल, शिक्षा गार्हस्थ्य जीवन कार्यक्षेत्र साहित्यिक जीवन राजनीतिक जीवन, सामाजिक जीवन।

व्यक्तित्व—स्वाभिमानी स्पष्टवादी सहृदय सत्यव्रती अहिंसा प्रेमी निर्लोभी स्वावलम्बी प्रेमोपासक गुणग्राहक विनोदप्रिय कुशल-वक्ता।

लेखक का जीवनोद्देश्य, रुग्णावस्था, स्वर्गारोहण और परिवार मित्रमण्डली।

तत्कालीन परिस्थितियाँ—राजनीति, समाज धर्म साहित्य और उन सबका मिश्रजी पर प्रभाव।

कृतियों का विवरण—मौलिक, अनूदित, संदिग्ध।

द्वितीय खड

समीक्षा—मिश्र जी की कविता युगीन पृष्ठभूमि विचारों में स्वच्छन्दता (भाव, भाषा छन्द)।

मिश्र जी का दृष्टिकोण—

विषय विवेचन—वीर, भक्ति शृंगार। आधुनिक काव्य शैली देश प्रेम हास्य व्यंग, प्रकृति वर्णन।

रस निरूपण—शृंगार के संयोग वियोग दो पक्ष होते हैं। दोनों में मिश्र जी ने पर्याप्त रचनाएँ की हैं। संयोग का उदाहरण,

> पाय परौं कर छोड द व्रजराज दुलारे।
> आवत जात लखैंगो कोई मारग मे मति लाज लै व्रजराज दुलारे॥
> हौं तो लाल सदा तेरी हौं होन्हि को कछु नेग रे व्रजराज दुलारे।
> गारी बकत कहा रस निकसैं सखि न जात इकत पै व्रजराज दुलारे॥
> परब मनाय मनैं सब सो सब दुरिहु सों रग डारि के व्रजराज दुलारे।
> प्रेमधाम ऐसी क्यो कीज बुरी लगैं जो का हुव व्रजराज दुलारे॥[2]

1 प० प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य

2 डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल चन्द्र ब्राह्मण, खण्ड ७, संख्या ८, होरी

वियोग में एक प्रेमी के हृदयोद्गार यहाँ द्रष्टव्य हैं—

> कल पावै न प्रान तुम्हें बिन देखे इन्हें अधिकौ कलपाइये ना।
> प्रतापनारायणजू के निहारे पिरीति प्रथा बिसराइये ना॥
> अहो प्यारे बिचारे दुखादिन पै इतनी निठुराई जताइये ना॥
> मरि एक ही गाँव में बास हहा मुख देखिबे को तरसाइये ना॥[1]
> नाटक, निबन्ध, पत्रकारिता अन्य स्फुट साहित्य।

इस ग्रंथ में तथ्य संकलन बड़े परिश्रम के साथ हुआ है। तथ्याख्यान में निहित तथ्यों का अनुसंधान और व्याख्या विस्तार से और सूक्ष्मता से जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं हो पाया है। समीक्षा का पक्ष इतना विशाल है कि उसके लिये एक स्वतंत्र प्रबन्ध आवश्यक है और यहाँ अनुसंधान आवश्यक है और यहाँ अनुसंधाता ने विहित और निहित सब तथ्यों को अपने प्रबन्ध में स्थान दिया है।

५ लेखक द्वारा अपने सम्पूर्ण कृतित्व की व्याख्या—

श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने 'शिल्प और दर्शन' के द्वितीय खंड में अपने साहित्य के संदर्भ में, अपने व्यक्तित्व का आकलन करने की चेष्टा की है। ये लेख पाठकों के लिए उपयोगी हैं। इन लेखों के नाम हैं—

'मैं और मेरी कला' 'आज की कविता और मैं,' 'यदि मैं कामायनी लिखता, पुस्तकें जिनसे मैंने सीखा' 'जीवन के प्रति मेरा दृष्टिकोण' 'मेरी पहली कविता' 'मेरी सर्वप्रथम रचना' 'मेरी सबसे प्रिय रचना' 'मैं और मेरी रचना गुंजन' 'मैंने कविता लिखना कैसे प्रारम्भ किया' 'मेरी कविता का परिचय' 'मेरी दृष्टि में नयी कविता' 'मेरी साहित्यिक मान्यताएँ' 'मेरी सर्वप्रथम पुस्तक' 'मेरी मनोकामना का भारत' 'जीवन के अनुभव और उपलब्धियाँ' 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ'।

इन लेखों में लेखक का भाव जगत साहित्य विषयक मान्यताएँ और साहित्य का प्रेरणा स्रोत तथा कृतित्व विषयक अनेक तथ्य बिखरे पड़े हैं। इनका संकलन और व्याख्या किसी भी अनुसंधाता के लिए अत्यन्त सरल कार्य है क्योंकि ये सीधे लेखक को प्राप्त होते हैं। इनमें अनुमान के लिए कम अवकाश है और अन्तःसाक्ष्य का स्वरूप होने के कारण प्रामाणिकता में संदेह को शायद ही स्थान देना पड़े।

६ लेखक का दृष्टिकोण

जीवन प्रसंग को तथ्य रूप में ग्रहण कर उसके आधार पर लेखक के उपन्यास में व्यक्त दृष्टिकोण का अनुसंधाता ने परिचय दिया है— वाजपेयी जी के उपन्यास

1 सं० नारायण प्रसाद अरोड़ा 'प्रतापलहरी' १६४६ ई० पृ० १३८

ार को विशिष्ट मानव चरित्रो से प्रेरणा मिली है। इस प्रसग म गाधी जी का नाम लिया जा सकता है। जीवन का दृष्टिकोण आदर्शवादी होने के कारण आदर्शवादी व्यक्तियों का प्रभाव लेखनी पर पडना स्वाभाविक है। इस दिशा म अमामान्य मानते हुए प्रकृति के माध्यम से पात्रो की भी रचना की गयी है। जीवन सौख्य के समस्त साधना से परिपूर्ण व्यक्ति का जीवन वाजपेयी जी की दृष्टि से सार्थक है। जो व्यक्ति अपने गार्हस्थ्य जीवन के सचालन में कुशल सिद्धहस्त नही होता उस वे आदर्शहीन मानते हैं। इसी कारण उनके उपन्यासो मे आदर्शों का अनुसधान है।'[1]

७ लेखक का आकर्षक व्यक्तित्व

अनुसधाता ने प्रबन्ध म अपनी बात' लिखते हुए लेखक के व्यक्तित्व को समझने म उपयोगी सामान्य सिद्धान्त की ओर भी सकेत किया है— 'वस्तु, शिल्प, चरित्र आदि का विवेचन करने म कृतिकार के कथनो का सहारा लिया गया है। यथार्थ और आदर्श के साथ जीवन दर्शन देना भी मैंने उचित समझा हैं क्योंकि इससे लेखक के व्यक्तित्व का पता चलता है और जिस लेखक का जीवन समय की शिला पर सघर्षण द्वारा माँजा गया हो उसके व्यक्तित्व का आकर्षण आग्रहपूर्वक अपनी व्याख्या करवा लेता है। यही बात वाजपेयी जी के पात्रा क सम्बन्धो मे हुई है।"[2]

८ लेखक का बहिर्मुखी व्यक्तित्व—

साहित्य के इतिहास के एक प्रबन्ध में तथ्य द्वारा प्रतापनारायण मिश्र क बहिर्मुखी व्यक्तित्व का अनुसधाता ने परिचय देते हुए लिखा है[3]—'मिश्र जी के निबन्धो से हमे उनके सामाजिक धार्मिक राजनीतिक, विचारा का परिचय भी प्राप्त होता है। उनके विचारो मे भट्ट जी के विचारो की भाँति अवैज्ञानिकता और शिथिलता नही मिलती। वे सामाजिक बन्धनो की परवाह नही करते थे और विधि निषेध के कायल नही थे। सनातनधर्मी होते हुए भी वे धर्मान्ध नही थे। वे विरोधी धर्मों से घृणा नही करते थे यहाँ तक कि वे आर्यसमाज, ब्रह्म समाज धर्मसमाज देव समाज आदि सब समाजों म चले जाते थे। अँगरेजी शिक्षितों की उच्छृखलता देखकर उन्ह मार्मिक पीडा होती थी।"

1 उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी शिल्प और चिन्तन, डॉ॰ ललित शुक्ल पृ॰ ६

2 वही, पृ॰ ख

3 आधुनिक हिन्दी साहित्य (सन १८५० १९०० ई०) लक्ष्मी लाल वार्ष्णेय, पृ० १५६ १६०

९ अ तरग चरित्र प्रधान उपन्यास के आधार पर अज्ञेय के अ तमुखी व्यक्तित्व का परिचय—

यहाँ पर अन्तरग चरित्र प्रधान उपन्यास की व्याख्या प्रस्तुत की जाती है जो तथ्य रूप में आगे लेखक के व्यक्तित्व मे सहायक हो सकती है। नियम यह है कि लेखक का व्यक्तित्व उसकी रचना के चरित्रो म प्रतिबिम्बित होता है । अ तर्लौकिक सूक्ष्म रेखाओ का अकन बहिमु ख व्यक्तित्व वाला लेखक उतनी सफलता से नही कर पाता। जितनी सफलता से अ तमु ख व्यक्तित्ववाला करता है। यथा

'जिन उपन्यासो मे पात्रो के व्यक्त आचरण की कारण भूत मूल प्रेरणाओ की खोज बाह्य परिस्थिति म नही उनके अ तर्जीवन मे की जाती है उसे अन्तरग चरित्र प्रधान उपन्यास कहा जाता है। यहाँ पात्रा के बाह्य क्रिया प्रतिक्रिया के व्यक्त यथाथ के स्थान पर उनके अ तर्लौकिक के अव्यक्त यथाथ को महत्त्व दिया जाता है। उनके दृष्टिगोचर वास्तविक जीवन का नही उस जीवन की सचालक मानसिक शक्तियो का उदघाटन किया जाता है। यहाँ व्यक्ति और व्यक्ति के माध्यम या व्यक्ति और समाज के मध्य सघष की अपेक्षा व्यक्ति का अपने आप से अपने भीतर के बहुमुखी व्यक्तित्वो म सघष मिलता है —ये बाह्य सघष प्रधान नही अ त सघष प्रधान उपन्यास होते है। जस शेखर एक जीवनी।[1]

१० लेखक का व्यक्तित्व विश्लेषण—

इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण म लेखक की कृतियो के आधार पर गुण दोष का विवेचन ऐसी शली म किया जाता है कि उनके द्वारा लेखक के व्यक्तित्व का विश्लेषण हो जाता है। यथा

अनुसधाता ने अन्य आस्थाओ से तथ्य सकलन किया[2] और निष्कष रूप म लेखक गुलाबराय के व्यक्तित्व की व्याख्या की—व अपनी समीक्षा से युग को गति दे सके हैं युग विधान की शक्ति उनम नही तस्वा वश की योग्यता उनम भरपूर है किन्तु ममस्पर्शी समीक्षक की दिव्य दृष्टि का अभाव खटकता है। प्रतिपाद्य वस्तु का विशद विवेचन सटीक वणन और सोदाहरण अकलन वे कर सकते हैं किन्तु मौलिक चिन्तन का गाम्भीय उनमे नही मिलता। स्वच्छता सुबोधता और स्पष्टता उनकी

---

1 अज्ञेय उपन्यासो की शिल्पविधि डा० सत्यपाल चुघ पृ० २५

2 समीक्षात्मक निबन्ध गुलाबराय की समीक्षा पद्धति के विधायक तत्त्व डा० स्नातक १०६ और हिन्दी साहित्य का इतिहास आ० रामचन्द्र शुक्ल स० २००६ वि० पृ० ५०६

अभिव्यंजना के विधायक तत्त्व हैं, किन्तु दीप्ति, कांति प्रसन्नता प्रभावोत्पादकता उसमें नहीं आती।'[1]

११ सामंजस्यप्रेमी व्यक्तित्व —

स्वस्थ व्यक्तित्व इतना व्यापक और सम्बन्धप्रेमी होता है कि उसकी रचना मे बाहर भीतर का भेद नही रहता सभ्यता और संस्कृति चरित्र और व्यक्तित्व मे एकत्व का दर्शन होता है। जयशकर प्रसाद इस विषय म उल्लेखनीय हैं —

भावप्रवीण प्रसाद ने प्रकृति के विराट मच म जिस सौन्दय की अनुभूति की वह न तो बाह्य या वस्तुगत था और न केवल आतरिक या भावात्मक। प्रसाद की रागात्मक प्रवृति न बाह्याभ्यान्तर सौन्दय का सामंजस्य करके मानव और प्रकृति के मध्य उपस्थित व्यवधानो का निवारण कर दिया।'[2]

१२ विषय और विषयी की एकता —

साहित्य रसास्वादन की अन्तिम परिणति लेखक और पाठक-उभय पक्ष मे विषय और विषयी की एकता है। इस ऐक्यानुभव म निहित आनन्द को ब्रह्मानन्द महोत्सवाब्धानन्द कहा गया है। पाठक यह आनन्दानुभूति करता है कि नही करता है इस पर विवाद हो सकता है परन्तु लेखक के लिए प्रश्न नही हो सकता। बौद्धिक चमत्कृति और कल्पनाजन्य आनन्द की स्थिति म भी रसास्वादन पर प्रश्नचिह्न लग सकता है पर तु जहाँ रसनिष्पत्ति सागोपाग होती है वहाँ लेखक के साथ पाठक भी रसानुभूति करता है। उदाहरणस्वरूप मीरा की कविता मे विषय विषयी की एकता के पर्याय रूप म हम रसानुभूति की अत्यन्त उत्कट अवस्था मिलती है। अनुसधाता ने इस तथ्य को उपलब्ध किया और उद्धरण सहित व्याख्या की—[3]

तथ्य— मीरां के पदो म भगवान श्री कृष्ण की अनन्य भक्त व्रजगोपियां की भगवान के प्रति प्रणय लीलाओ का बहुत सुन्दर वर्णन मिलता है।"

व्याख्या मीरां की भांति व्रजगोपियाँ भी भगवान के जादू कर देने वाले सुन्दर रूप पर अतिशय मुग्ध हैं। इसीलिए तो दधि बेचने जाकर गोपियाँ दधि का नाम भी भूल जाती हैं और श्यामसुन्दर की ही रट लगाती जाती हैं

---

1 निबन्धकार गुलाबराय, देवेन्द्रकुमार जैन, पृ० ६६

2 प्रसाद का दार्शनिक चेतना, डा० चक्रवर्ती, पृ० ६२७

3 मीरांबाई, डा० श्री कृष्णलाल पृ० १४१ १४२

या ब्रज में कछु देख्यो री टोना (टेक)

ले मटुकी सिर चली गुजरिया, आगे मिले नन्द जी को छोना।

दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी, ले ले री कोई स्याम सलोना॥

विन्द्रावन की कुंज गलिन मे, आँख लगाई गयो मोहना॥

मीरां के प्रभु गिरधर नागर, सुन्दर स्याम सुघर रस लोना॥[1]

उन गोपियों के लिए पूरे ब्रजमडल म केवल एक ही पुरुष, मीरां का गिरधर नागर, था और वे सभी उसके अपूर्व मोहन रूप पर मुग्ध थी और वह मनमोहन भी इन गोपियों से सभी प्रकार की लीलाए किया करता था। य गोपियाँ कभी तो अपने सहज नारी प्रकृति के कारण उस मनमोहन स लज्जा करती है —

आवत मोरी गलियन मे गिरधारी, मैं तो छुप गई लाज की मारी।

और कभी धृष्ट मनमोहन से प्रार्थना करती हैं—

छाँडो लगर मोरी बहियाँ गहो ना।

मैं तो नार पराये घर की, मेरे भरोसे गुपाल रहो ना।

जो तुम मेरी बहियाँ गहत हो, नयन जोर मोरे प्राण हरो ना।

बृन्दावन की कुंज गलिन मे, रीत छोड अनरीत करो ना॥[2]

और कभी अपनी प्रणय लालसा के कारण अतिशय धृष्ट हो कर कह उठती हैं—

बन्सीवारे हो काहा मोरी रे गगरी उतार,

गगरी उतार मेरो तिलक सभार।

यमुना के तीरे तीरे बरसो लो मेह।

छोटे से कन्हैया जी सो लागो म्हारो नेह॥

बृन्दावन मे गउए चरावे तारे लियो गरवा को हार।

मीरां के प्रभु गिरधर नागर तोरे गई बलिहार॥[3]

अथवा होली के उच्छृखल और निर्लज्ज वातावरण म स्वाभाविक स्पर्धा से कहती हैं —

भारी चुनर भीजे, मैं रे भिजोऊंगी पाग।

नद महराज को कुँवर कन्हैया, जान न देऊँगी आज

---

1 मीरां पदावली पद सख्या १७८

2 वही, पद १७३

इस प्रकार ये गोपियाँ यमुना नदी के किनारे, पनघट पर गलियो में वन उपवन मे कुञ्ज और कछार पर भगवान से प्रेमलीलाएँ करती रहती हैं। मीरा भी अपनी कल्पना मे इन गोपियों म मिलकर अपने गिरधर नागर से सभी प्रकार की क्रीडाएँ करती है और भगवान को मथुरा गमन के पश्चात गोपियो के विरह निवेदन म जैसे मीरा का स्वर स्पष्ट सुनाई पडता है।

भगवान के अगणित भक्तो म मधुर भाव की भक्ति करने वाली व्रजगोपियाँ ही मीरा का आदर्श थी। लगभग सभी बातो म मीरा का उन गोपियो से साम्य था और बहुत सभव है कि व्रजगोपियो के नाम स वे अपनी ही सुषुप्त प्रणयवासना और प्रेमलीलाओं का कल्पित चित्र उपस्थित कर रही हो भक्ति सम्प्रदायकी शब्दावली मे कहा जायगा कि मीरा को श्री कृष्ण गोपी की दिव्य लीला मे प्रवेश का अधिकार प्राप्त हो चुका था और वह अपने दिव्य चक्षुओ से उनका साक्षात्कार कर चुकी थी। इन मधुर पदो म इतनी तन्मयता और हार्दिकता भरी है कि जान पडता है कि मीरा स्वय व्रजगोपी हो कर भी ये सब प्रेम लीलाएँ कर चुकी हैं। एक एक पद स मीरा की प्रेम भक्ति साकार हो उठती है।

१३ साहित्य क एक विशेष युग की एक सामान्य विशेषता—

तथ्य—[1] प्रेम की पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति के लिए ही रीति युक्त कवि अधिकतर प्रेम की विषमता के उद्गार सुनाते हैं"

इस तथ्यकी व्याख्या के लिए व्याख्याता न उसके मूलकी खोज के सिलसिले में सम प्रेम की भी सोदाहरण चर्चा की है।

व्याख्या— प्रेम की यह विषमता उनम कहा से आई? भारतीय काव्य-परम्परा म दृश्य और श्रव्य काव्य नो प्राचीन सस्कृत ग्रथो मे एक सा दिखाया गया है। बाल्मीकि न राम और सीता म कालिदास ने दुष्यत और शकुतला म, बाण ने चन्द्रापीड और कादम्बरी मे सम प्रेम की प्रतिष्ठा की है। हिन्दी मे विद्यापति ने भी राधा और कृष्ण का प्रेम बहुत कुछ सम ही रखा है पर सूरदास तक आते आते प्रेम म वैषम्य का आरम्भ हो गया। सूरदास आदि कृष्ण भक्ति शाखा के आदिम कवियो म इस विषमता की विवृत्ति अधिक नहा हुई। श्रीकृष्ण को भी गोपियों के प्रेम मे विकल दिखला कर समता की सुरक्षा बहुत कुछ कर ली गई। पर आगे के कवियो ने श्रीकृष्ण का मानस पक्ष उतना दिखलाया भी नही। फल यह हुआ कि आगे की रचना में नायक का पक्ष दबने लगा। इस प्रकार प्रेम के क्षेत्र मे, जहाँ तक हृदय का सम्बन्ध है शृंगार काल म यह विषमता व्यापक हो गई। फिर भी रीति-

1 रसखानि स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रस्तावना, पृ० १३

बद्ध रचना में विषमता का बड़ा चढ़ा रूप उतना नहीं है, पर स्वच्छन्द धारा के कवियों में यह पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है। निश्चय ही यह सूफी कवियों का प्रभाव है। फारसी साहित्य में प्रेम का वैषम्य स्वीकृत है और उर्दू में उस परम्परा का निर्वाह आज तक हो रहा है। पिछले काँटे के कृष्णभक्त कवि और स्वच्छन्द धारा के रीति मुक्त कवि सूफी संतों और फारसी साहित्य की प्रवृत्ति से प्रभावित हुए हैं, यह असंदिग्ध है।'

इस व्याख्या का परिगमन फिर एक तथ्य रूप में हुआ जिसकी व्याख्या आगे के पृष्ठों में की गई है। इस अनेक उदाहरणों से यह प्रमाणित हो चुका है कि प्रत्येक तथ्य और व्याख्या आगे बढ़ने के क्रमिक सोपान हैं और सत्योपलब्धि के बिंदु पर पहुँचने पर यह रूप स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो सकता है।

इसी प्रकार के सामान्य लक्षण को घटित करने वाली एक व्याख्या छायावाद और रहस्यवाद में द्रष्टव्य है—

तथ्य—[1] कबीर तथा अन्य भक्त कवियों ने राम की बहुरिया बन कर अपने प्रेम भाव की व्यंजना की है पर माधुर्यभाव की जैसी व्यंजना प्राचीन काल से आज तक स्त्री भक्तों के द्वारा हुई है वैसे पुरुषों द्वारा नहीं।

उपर्युक्त तथ्य का निरूपण एक अन्य तथ्य की व्याख्या है यह तथ्य है— हम स्पष्टतया कह सकते हैं कि वर्तमान कवियों में सम्पूर्णतः रहस्यवाद की भावना की व्यंजना श्रीमती महादेवी जी में मिलती है। इसका कारण भी है।

पुनः हम देखते हैं कि यह भी पूर्व तथ्य की व्याख्या है और पश्चात् व्याख्या के लिए तथ्य है— इन कवियों के अतिरिक्त आज हम ऐसे भी रहस्यवादी कवियों का पता मिलता है जो रहस्यवाद की सम्पूर्ण अभिव्यक्तियों को अपनी साधना के स्वरूप अपने में सजाए हैं।

१४ साहित्य में विशेष युग की विशेष प्रवृत्ति में उपलब्ध लक्षण—

तथ्य—[2] 'प्रगतिवादी रचनाओं में उपमान रूप में जो वस्तुएं पाई जाती हैं उनमें—भी बहुत कुछ नवीनता दिखाई देती है।'

सिद्धान्त— भाव की प्रेषणीयता की दृष्टि से काव्य में अप्रस्तुत विधान का बहुत महत्व है।'

व्याख्या— साधारण बातचीत में भी लोग अप्रस्तुत का प्रयोग करते हैं। बात यह है कि मनुष्य कल्पनाशील प्राणी है अतः भावों को तीव्र करने के

1 श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय पृ० ६३
2 हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद, विजयशंकर मल्ल पृ० १३८ १४२

लिए वह अपनी कल्पना शक्ति का सहारा प्राय लिया करता है। सच्चे कवि इन सब बातो का ध्यान रख कर ही उपमानो की योजना करते है।"

इसके बाद उदाहरण देकर पुन तथ्य दिया गया है—'प्रतिक्रिया के जोश म और प्रयोगशीलता की उमग म नई रचनाओ म अभी ऐसी अप्रस्तुत योजना कम हो पा रही है जिसम भाव भलीभाँति प्रकाशित हो सके।"

व्याख्या—इस विषय म पहली उल्लेखनीय बात यह है कि प्रगतिवाद छायावाद के विरोध म उठा था। अत छायावादी अमूर्तवायवी अप्रस्तुत विधान की जगह उसने स्थूल, मासल उपमान भी लाए और सुन्दर, विशेष और कोमल की जगह कुरूप सामान्य और परुष रूप विधान भी किए। यद्यपि प्रगतिवादी ढग की रचनाओ म भी यत्र-तत्र अमूर्त उपमान मिल जाते है जैसे इन पक्तियो म—

सिनेमा के गीत-सा यह
वर्गबद्ध समाज
गूजते हैं शब्द जिनका
अर्थ केवल शब्द।[1]

पर आधिक्य मूर्त उपमानो का ही है।

ज्यो ज्यो नवीन वस्तुओ से हमारा परिचय होता जाता है और सान्निध्य बढता है उनके लिए भी उपमान रूप म गृहीत होने की सम्भावना बढ जाती है। काव्य के भीतर अप्रस्तुत रूपयोजना का क्षेत्र क्रमश विस्तृत होना ही चाहिए। रेलगाडी, हवाई-जहाज बिजली के लम्प कारखाने की चिमनी अभी न जाने कितनी वस्तुएँ हमारे सामने आई हैं। पर अप्रस्तुत रूप म नई वस्तुओ को सामने लाने के पहले इस बात की पूरी परख कर लेनी चाहिए कि य वस्तुएँ हमारे भावो को कहा तक उदबुद्ध करने म सहायक हो सकती है। प्रगतिवादियो की प्रवत्ति मुख्यत वस्तुगत और यथार्थवादी होने के कारण अनेक नए उपमानो का काव्य क्षेत्र म आगमन हुआ है। नए उपमान लाने म कहीं तो वैचित्र्य नवीनता लाने म ही अधिक दत्तचित्त दिखाई देते है और कहीं यथार्थ भाव विन्यास पर भी दृष्टि रहती है।

१५ समसामयिक साहित्य—

अनुसधाता ने आधुनिक कहानी का स्वरूप तथ्य रूप म प्रस्तुत कर उनके आधार पर उसके लेखको के व्यक्तित्व की व्याख्या की है।[2]

तथ्य—सबस बेगी शिकायत यही है कि जाने क्या ओढी हुई मानसिक कुण्ठा अस्तना अकेलापन, सेक्स और मदिरा के प्रति अतिरिक्त मोह (१) और फलस्वरूप

---

१ 'वर्ग विश्वासा' स, रागेय राघव, पृ० ३२

उत्पन्न घुटन, विशृंखलता और अनास्था का स्वर ही उनकी कहानियों में मुखरित होता है और बहुधा उनकी कहानियाँ बहुत ही प्रतिक्रियावादी बन जाती हैं।

व्याख्या— कहानीकारों ने, ऐसा प्रतीत होता है कि कामुकपन और सात्र को ही अपना आदर्श मान लिया है और उसी अनास्था और कुण्ठा को भारतीय जीवन पद्धति के साथ असफल ढंग से सामंजस्य बिठा कर चित्रित करने की चेष्टा कर रहे हैं जिसे बहुत शुभ नहीं कहा जा सकता।

"इन लेखकों में जीवन के प्रति निष्ठा नहीं है और न मानव सम्बन्धों के प्रति कोई मर्यादा का भाव। यह स्मरण रहे कि पीढ़ियों का संघर्ष प्रत्येक युग में होता है पर उसे आक्रोश, अमर्यादित एवं असंतुलित ढंग तथा असंगत भाषा में अभिव्यक्त करने को साहित्य में कभी वांछनीय नहीं समझा जा सकता। यह समझना होगा और प्रौढ़ता की यह माँग भी है कि व्यक्ति और उसके सम्बन्धों का उद्घाटन पूर्ण सहानुभूति एवं मानवीय संवेदनशीलता के साथ ही किया जाना चाहिए और यह एक ऐसी चीज़ है जिसे किसी काल की आधुनिकता प्रभावित नहीं कर पाती।'

समसामयिक साहित्य में सैद्धान्तिक व्याख्या का आधार रचनागत तथ्य है और परिणामतः सिद्धान्त की स्थापना होती है जो भावी साहित्य के लिए मार्गदर्शन का काम करता है। साहित्य इसके द्वारा पुरातन जड़ता से छुटकारा और नवीन प्रकाश की उपलब्धि पाता है।

(ग) काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का साक्षात्कार और मौलिक उद्भावना

काव्यशास्त्र के सिद्धान्त साहित्यिक कृतियों में से उपलब्ध तथ्यों के आधार पर विशिष्ट प्रतिभा वाले आचार्यों द्वारा स्थापित होते हैं। पर्याप्त कसौटी के बाद तथ्य सिद्धान्त बनता है उस तथ्य की अपनी एक व्यवस्थित परंपरा होती है। फिर भी सब समय सर्वत्र सब के द्वारा वह ज्यों का त्यों गृहीत नहीं होता। उस पर मतभेद बने रहते हैं और मूल आचार्य द्वारा की गई स्थापना में परिवर्तन परिवर्द्धन भी होता रहता है। जैसे वामन का रीति सम्प्रदाय।

"व्याख्याता ने वामन के सिद्धान्त की व्याख्या में उसके दृष्टिकोण से अपनी दृष्टि मिलाने का जो प्रयत्न किया है, वह सराहनीय है। इस व्याख्या में पक्षपात या पूर्वाग्रह की छाया भी नहीं मिलती स्वस्थ तटस्थ न्याय का स्वरूप प्रकट होता है। सिद्धान्त में अन्तर्हित सत्य की खोज ही अनुसंधाता का उद्देश्य होने के कारण खण्डन मण्डन सहित अनुकूल प्रतिकूल मतों में संगृहीत तथ्य और व्याख्या का संकलन कर अपनी व्याख्या में उन्हें यथोचित स्थान देकर अंत में अपना निष्कर्ष दिया है। इस कारण सिद्धान्त की व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक विशद होती है।

तथ्य[1]—' वामन ने स्वतन्त्र रूप से काव्य का कोई लक्षण प्रस्तुत नहीं किया, फिर भी उनके रीति विवेचन में काव्य-लक्षण की ध्वनि सुनाई पड़ती है। इन्होंने दण्डी के पदचिह्नों पर चलते हुए रीति का विवेचन प्रस्तुत किया और कहा कि रीति ही काव्य की आत्मा है।'

व्याख्या—काव्य के स्वरूप पर विचार करते हुए उन्होंने बताया कि 'काव्य' अलंकार के ही कारण ग्रहण करने योग्य है और सौंदर्य ही अलंकार है। काव्य का यह सौन्दर्य दोषों के त्याग एवं गुणों के ग्रहण करने से आता है। गुण एवं अलंकार से युक्त शब्दार्थ को ही काव्य कहते हैं यद्यपि गौण वृत्ति के कारण मात्र शब्दार्थ को कोई भले ही काव्य की संज्ञा दे दे।

यथा—

रीतिरात्मा काव्यस्य'। काव्य ग्राह्यमलंकारात। सौन्दर्यमलंकार। काव्य शब्दोऽयं गुणालंकारसंस्कृतयो शब्दार्थयोर्वतते भक्त्या तु शब्दार्थमात्रवचनोऽत्र गृह्यते ॥

—काव्यालंकार सूत्रवृत्ति वामन (१।१।१, २ ३)

वामन ने इस प्रकार का विवेचन प्रस्तुत कर परवर्ती आचार्यों का मार्गप्रदर्शन किया है। इन्होंने मात्र शब्द एवं अर्थ को काव्य न मान कर दोष त्याग एवं गुण तथा अलंकार ग्रहण को ही काव्य स्वीकार किया है। इस प्रकार इनकी परिभाषा अग्नि पुराण, भोज एवं मम्मट प्रभृति आचार्यों के लिए उपजीव्य सिद्ध हुई। इस परिभाषा के अतिरिक्त वामन ने गुणों एवं अलंकारों में भिन्नता बताते हुए उनके महत्त्व को प्रतिष्ठापित किया है। उनका यह विवेचन भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास में एक प्रकाश स्तम्भ है। इनके अनुसार गुण काव्य शोभा के कर्ता धर्म हैं एवं अलंकार उस शोभा को अतिशयित करनेवाले हैं। वे गुणों को काव्य का अनिवार्य तत्त्व एवं अलंकारों को अनित्य धर्म मानते हैं। काव्य के लिए गुण की उपस्थिति आवश्यक है, वह काव्य का नित्य धर्म है और अलंकारों का रहना आवश्यक नहीं है।

यथा—

'काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः।
तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः ॥''

वही, सूत्रवृत्ति (३।१।१ २)

---

१ भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धान्त, प्रो० राजवंश सहाय 'हीरा', पृ० ७ १०

निष्कर्ष—इस प्रकार के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि वामन ने अन्य आचार्यों की अपेक्षा अपने मूल को अधिक पकड़ा है। वे सत्य के अधिक निकट हैं। अलंकारों की अपेक्षा गुण तत्त्व को काव्य में वास्तविक उपादेय ठहराकर उन्होंने काव्य चिंतन को भामह-दण्डी से बहुत आगे किया था (*रसगंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन*, पृ० २५)।

उद्धरण—

ये खलु काव्यशोभां कुर्वन्ति, ते गुणा वे ओज प्रसादादयः।
न यमकोपमादयः। कैवल्येन तेषामकाव्य शोभाकरत्वात्।
ओज प्रसादादीनां तु केवलानामस्ति काव्यशोभाकरत्वम्।
—काव्यालंकार सूत्रवृत्ति वामन (३।१।१)

भिन्न भिन्न मतों का तुलनात्मक अध्ययन—

आगे मनुस भाता ने हिन्दी के गण्यमान्य आचार्य के द्वारा संशोधन तथ्य, व्याख्या और मत दिये है—

(१) वामन के काव्यस्वरूप विवेचन पर अपना मत देते हुए डा० नगेन्द्र ने चार तथ्य उपस्थित किये हैं[1]—

तथ्य—(१) वामन शब्द और अर्थ दोनों को समान महत्त्व देते हैं। 'सहित' शब्द का प्रयोग न करते हुए भी वे दोनों के साहित्य को ही काव्य का मूल अंग मानते हैं।

तथ्य—(२) दोष को वे काव्य के लिए असह्य मानते हैं इसीलिए सौन्दर्य का समावेश करने के लिए दोष का बहिष्कार पहला प्रतिबन्ध है।

तथ्य—(३) गुण काव्य का नित्य धर्म है अर्थात् उसकी स्थिति काव्य के लिए अनिवार्य है।

तथ्य—(४) अलंकार काव्य का अनित्य धर्म है उसकी स्थिति वाञ्छनीय है अनिवार्य नहीं।

डा० नगेन्द्र द्वारा व्याख्या—वामन के काव्य लक्षण पर अपना विचार प्रकट करते हुए पुनः डा० नगेन्द्र ने कहा है—वामन का काव्य लक्षण उपर्युक्त लक्षणों की अपेक्षा स्थूल है। गुण और अलंकार से युक्त तथा दोष से रहित' शब्दावली तत्त्व

१ हिन्दी काव्यालंकार सूत्रवृत्ति की भूमिका, पृ० ७

को शब्दबद्ध नहीं करती, क्योंकि गुण और अलकार के अन्तर्गत वामन ने काव्यगत सौंदर्य के विभिन्न रूपों का अन्तर्भूत कर, उन्हें एक प्रकार से सौंदर्य के पर्याय रूप में ही प्रयुक्त किया है, सौन्दर्याबकार।

डा० नगेन्द्र का निष्कर्ष—अतएव वामन के लक्षण का संक्षिप्त रूप यह हुआ—'सुन्दर (सौन्दर्यमय) शब्दार्थ काव्य है।" और यह लक्षण बुरा नहीं है। परन्तु वामन ने अभिमत गुण और अलकार का जान-बूझकर प्रयोग इसलिये किया है कि उनका रीति सिद्धान्त मूलत गुण और सामान्यत अलकार पर ही आश्रित है। अतएव अपने वशिष्ट्य को व्यक्त करने के लिए उनका प्रयोग वामन के लिए अनिवार्य हो गया है। फिर भी, कारण चाहे कुछ भी रहा हो, यह लक्षण तात्त्विक न रह कर वर्णनात्मक हो गया है, अतएव लक्षण की दृष्टि से यह सर्वथा श्लाघ्य नहीं है।'

वामन ने रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है—
'रीतिरात्मा काव्यस्य'—रीति से उनका तात्पर्य है, विशिष्ट पद रचना। 'विशिष्ट पद रचना रीति —विशिष्ट का अर्थ होता है गुणयुक्त— विशेषो गुणात्मा'। अत रीति का अर्थ हुआ गुण से युक्त पद रचना।

फलत वामन के मतानुसार गुणयुक्त पद रचना ही काव्य की आत्मा है।

(२) साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने वामन के रीतिवाद का खण्डन किया है।

(३) इसके पूर्व ध्वनिकार आनन्दवर्धन भी रीत्यात्मवाद का खण्डन कर चुके थे। उनके अनुसार रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार करना काव्य के आत्म-तत्त्व के प्रति अपना अज्ञान प्रकट करना है।

विश्वनाथ ने बतलाया कि रीति तो संघटना विशेष का ही नाम है। वह काव्य की आत्मा कभी भी नहीं हो सकती। उसका महत्त्व केवल काव्य पुरुष के अवयव संस्थान के रूप में ही है। इससे अधिक कुछ नहीं। यथा—

'यत्तु वामननोक्तम्—रीतिरात्मा काव्यस्य इति, तन्न रीते संघटना विशेषत्वात्। संघटनायाश्चावयवसंस्थान रूपत्वात् आत्मनश्च तद्भिन्नत्वात्।'[1]

साहित्यदर्पणकार ने काव्य-पुरुष का वर्णन करते हुए रीति सिद्धान्त को गौण सिद्ध कर दिया या यों कहें कि उसकी जड़ ही काट दी। फलत वामन का रीतिवाद

---

१ साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद, चौखम्भा, पृ० २०

परवर्ती आचार्य के लिए आकर्षण का विषय नहीं रह गया। यथा—

> काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम् रसादिश्चात्मा गुणाः शौर्यादिवत् दोषा काणत्वादिवत् रीतयोऽवयवसंस्थानवत् अलंकारा कटकुण्डलादिवत्।[1]

(४) वामन की प्रशंसा करते हुए डॉ० दासगुप्त कहते हैं कि वामन के साथ न्याय नहीं किया गया है। वे कहते हैं— वामन का नाम लेते ही 'रीतिरात्मा काव्यस्य'—इस कथन का स्मरण हो आता है। वामन रसविरोधी हैं तथा बहुतर आधुनिक सम्प्रदायों ने जिस प्रकार भामह से अन्याय किया है उसी प्रकार वामन की 'रीति' लक्षणों की गलत व्याख्या करके उन्होंने वामन से भी अन्याय किया है। वास्तव में काव्य चर्चा के विकास में वामन का स्थान बहुत ऊँचा है। सौन्दर्य प्रतीति ही काव्य का रहस्य है ऐसा वामन ने कहा है। गुण तथा अलंकारों का स्पष्ट विवेचन करते हुए उन्होंने काव्य चर्चा को बहुत ही आगे बढ़ाया। वामन का विवेचन काव्यशास्त्र में अन्तिम नहीं कहा जा सकता है। किन्तु वे उसके बहुत ही समीपवर्ती हैं इसमें भी कोई सन्देह नहीं। काव्य का सवाल हल करने में वे केवल आखिरी कदम में कुण्ठित हुए हैं।[2]

इस प्रकार तथ्यानुसन्धान और तथ्याख्यान की सम्पूर्ण प्रक्रिया का सम्पन्न करने के बाद व्याख्याता का समर्थनयुक्त अभिप्राय है—'आचार्यों की परस्पर विरोधी धारणा के बीच भी वामन का स्थान काव्यचिंतन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।'

विरोधी मतों के रहते भी व्याख्याता वामन विषयक अपने मत में दृढ़ है क्योंकि विरोधी मतों की तरह समर्थक मत भी उपलब्ध है। मानो अपने समर्थन को पुष्ट करने के लिए ही व्याख्याता ने पहले विरोधी मतों का उद्धरण दिया है और अंत में मण्डनप्रधान अनुकूल मत लिया है। सिद्धान्त के खण्डन मण्डन की यह शैली है कि परस्पर विरोध की स्थिति में अनुसंधाता दोनों पक्षों के तथ्यों का संकलन कर, अनुसंधानपूर्वक उसमें निहित सत्य की कसौटी करके अपना मत स्थिर करे। यदि वह स्थापित सिद्धान्त के विरुद्ध अपना निर्णय घोषित करना चाहता है तो प्रथम अनुकूल समर्थक मतों की चर्चा करे। बाद में विरोधी मतों की चर्चा करके, उसके बल पर अपने मत की स्थापना करे जो अकाट्य प्रतीत होती हो। कभी परस्पर विरोधी मतों में समन्वय स्थापित करना भी उसका कर्तव्य हो जाता है। तब वह तथ्य रूप में गुण दोषों का विभाग करके उनको यथार्थ रूप में स्वीकार करे और रचनात्मक शैली में अपना अन्तिम निर्णय निरूपित करे।

---

१ साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद, चौखम्भा, पृ० २६

२ भारतीय साहित्यशास्त्र हिन्दी अनुवाद, पृ० १०६

शास्त्रीय सिद्धान्त की स्थापना—मौलिक उद्भावना साहित्यिक आलोचना के दीर्घकालीन अनुभव का परिणाम है। साहित्य के बदलते प्रवाहों में मूलभूत तत्त्व की उपलब्धि प्राचीन सिद्धान्तों का संशोधन कर नये रूप में सिद्धान्त की स्थापना में लक्षित होती है। 'उद्वेग रस' की स्थापना इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है। सामान्य रूप से उद्वेग एक संचारी भाव है, परन्तु किन कारणों से उसे शास्त्रीय मान्यतानुसार स्थायी भाव चिन्ता की परिपक्वता से 'रस' संज्ञा प्राप्त होती है इसकी सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक, उदाहरणों के साथ की गई मीमांसा से यह बात स्पष्ट हो जायगी।[1]

निहित तथ्यों के अनुसन्धान की कोई सीमा नहीं। इस प्रकरण में इस दिशा में मात्र निर्देश ही किया गया है। ये विषय सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते जाते हैं और मात्र कवि ही नहीं, आलोचक को भी अनुभव हो सकता है कि 'काव्यानन्द ब्रह्मानन्द सहोदर' है।

---

१ आधुनिक हिन्दी कविता में मनोविज्ञान, डॉ० उर्वशी जे० सूरती

साहित्य में स्रोत का अध्ययन | ४

स्रोत का स्वरूप

साहित्य जीवन के अनुभवों की सरस अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति का मूल स्रोत जीवन और जगत दोनों हैं। सदा व्यक्तिगत रूप से इन विविध प्रभाव और प्रेरणा के स्रोतों से मुक्त होना ही रहा। इन स्रोतों का व्यवस्थित रूप में किया हुआ गवेषणात्मक अध्ययन अपने आप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और रसप्रद विषय है। मुख्यतः लेखक की रचना का मूल आधार, प्रेरणा, सहायक सामग्री अनुभव के रूप में पड़नेवाला प्रभाव, उसकी प्रतिभा के निर्माण में क्रियाशील विभिन्न शक्तियों—इन सबकी खोज इस अध्ययन में नितान्त अनिवार्य है।

इन लेखकों की सामूहिक देन साहित्य के इतिहास को एक विशिष्ट रूप देती है। इस सामूहिक शक्ति के प्रभाव से समय की दृष्टि से उसमें प्राचीन परम्पराओं का ग्रहण और त्याग तथा नई परम्पराओं का उदय भी लक्षित होता है। जीवन चैतन्य से आप्लावित होने के कारण अमुक भाषा साहित्य तक यह स्थिति सीमित नहीं रह सकती, यह अन्य भाषा अन्य जाति अन्य प्रान्त तथा अन्य देशों को भी प्रभावित करती है और उससे प्रभावित होकर अपने स्वरूप का भी निर्माण करती है। कभी प्रभाव में युगान्तरकारी परिवर्तन लाने की तथा कवि या लेखक के व्यक्तित्व में नया मोड़ लाने की शक्ति भी देखी गई है।

अमुक साहित्य पर पूर्व से प्रचलित कुछ मान्यताएँ कहावत मुहावरे शब्द प्रयोग, विचार, नीति विषय, अभिव्यंजना शैली छन्द आदि का काफी प्रभाव रहता है। अत्यन्त प्रचलित होने के कारण विद्वान् तो मूल स्रोतों का पता लगा लेते हैं,

परन्तु शिक्षित या अर्धशिक्षित भी लोक साहित्य की कथा की रचनाओं के मूल स्रोतों का पता लगा सके हैं।

हिन्दी साहित्य में युग की प्रधान प्रवृत्तियों तथा व्यक्तिगत रूप से लेखकों की रचनाओं में स्रोत विषयक ऐसे अनेक लक्षणों को हम देख सकते हैं। प्रथम हिन्दी साहित्य का इतिहास और बाद में व्यक्ति को लेकर स्रोत की चर्चा की जायगी।

[१] हिन्दी साहित्य का इतिहास

भाषा तथा साहित्य का इतिहास बताता है कि हिन्दी भाषा तथा साहित्य का उद्भव अपभ्रंश भाषा तथा साहित्य से हुआ है।

(क) अपभ्रंश साहित्य—पाँच दृष्टियों से अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन करने पर स्रोत विषयक तथ्यों का अनुसंधान हिन्दी साहित्य के उद्भव पर प्रकाश डालता है—

१ विषय।
२ पद रचनात्मक संघटना और ध्वनियाँ।
३ काव्य धारा।
४ अभिव्यंजना शैली
५ छन्द।

१ विषय—

विषय की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य में तीन परम्पराएँ मिलती हैं[1]—

१ जैन पौराणिक विषय।
२ शृंगार तथा वीर रस के भावात्मक चित्र।
३ आध्यात्मिक या रहस्यवादी परम्परा।

परन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास में ये सारी परम्पराएं ज्यों-की-त्यों नहीं आ पाई हैं। इतिहास का अनुसंधानात्मक अध्ययन करने पर निम्नलिखित तथ्यों की उपलब्धि हुई—

---

१ हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, प्रथम भाग, हिन्दी साहित्य की पीठिका—
—काशी ना० प्र०, स०, सं० २०१३ वि०, पृ० ३८७

प्रथम परम्परा हिन्दी साहित्य में नहीं मिलती, अन्य दो बहुत पुष्ट रूप में उपलब्ध होती हैं। जैन पौराणिक विषय हिन्दी साहित्य में गृहीत न हो सकने के पक्ष में तीन तथ्यों का आविष्कार हुआ—

(१) बाद के जैन कवियों ने परिनिष्ठित अपभ्रंश में ही काव्य रचना करते रहना अपना आदर्श समझा, क्योंकि अपभ्रंश उनके लिए धार्मिक और पूज्य भाषा थी और हिन्दी में पौराणिक प्रबन्ध काव्यों की रचना करना उन्होंने ठीक नहीं समझा।

(२) हिन्दी का विकास भक्तिकालीन आन्दोलन से अधिक प्रभावित रहा है, जो ब्राह्मण धर्म का आन्दोलन था और जिसका जैन कवियों पर प्रभाव नहीं पड़ा।

(३) हिन्दी के राज कवियों, सूफी और सगुण भक्तों ने भी इस परम्परा को नहीं अपनाया।

२ पद रचनात्मक संघटना और ध्वनियाँ—

हिन्दी की पद रचनात्मक संघटना और ध्वनियाँ अपभ्रंश का साक्षात् विकास है।[1]

३ काव्य धारा—

अपभ्रंश की दो धाराएँ हिन्दी में आईं[2]—

(१) राजस्तुति ऐहिकतामूलक शृंगारी काव्य, नीतिविषयक फुटकर काव्य और लोक प्रचलित कथानक पश्चिमी अपभ्रंश से हिन्दी में आये।

(२) पूर्वी अपभ्रंश में निर्गुणिया संतों की शास्त्र निरपेक्ष उग्र विचारधारा, बाह्याडम्बर, अक्खड़पन, सहज शून्य की साधना, योग पद्धति और भक्तिमूलक रचनाएँ आईं।

४ अभिव्यंजना शैली—

हिन्दी में अपभ्रंश की अभिव्यंजना शैली आई।[3] मूल लोक-भाषा में

1. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास प्रथम भाग हिन्दी साहित्य की पीठिका—काशी ना० प्र० स० सं० २०१३ वि० पृ० ३६३
2. वही पृ० ४११
3. वही पृ० ३२८

'नेमिणाहचरिउ', 'करकण्डुचरिउ' तथा 'भविसयत्तकहा' म व्यवहृत कथानक रूढियाँ, यथा—चित्रदर्शन या गुणश्रवण से प्रणयोद्बोध तथा सुबधु की वासवदत्ता और बाण की कादम्बरी से सुग्गवाली कथानक रूढि उतर आई। पृथ्वीराज रासो और जायसी म इन रूढियो का प्रयोग मिलता है।

५ छद—

अपभ्रश का निजी छद दोहा है। उसम चौपाई का कडवक बनाकर दोहे का घत्ता दिया जाता था। हिदी के ढोला मारू रा दूहा, 'रामचरित मानस' तथा अय सूफी प्रब धो म इसका प्रयोग मिलता है। साहित्य म पदो का प्रयोग सवप्रथम बौद्ध सिद्धो द्वारा हुआ। जयदव के 'गीतगोविन्द' पर हिन्दी बगला के भक्तकवि विद्यापति, चडीदास और सूर पर इसका प्रभाव पडा। नाथ सिद्धो के माध्यम से कबीर पर यह प्रभाव पडा परन्तु अपभ्रश का पद्धरय आदिकाल म है भक्तिकाल म नहा है।[1]

(ख) रीति-काव्य—रीति काव्य के विषय और शलीविषयक प्रेरणा स्रोत का प्रकाश म लाते हुए बताया गया है कि "रीतिकालीन साहित्य अपनी सामयिक परिस्थितियो तथा जीवन मूल्यो से अनुप्राणित होता हुआ भी कई अय परम्पराओ से प्रभावित हुआ है। जहाँ तक इसके साहित्यिक स्रोत का सम्बन्ध है, वह काफी प्राचीन और विकासमान रहा है।[2] इसकी काव्यशास्त्रीय परम्पराओ म लेखक ने सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश काव्यशास्त्र तथा भक्ति के विविध सम्प्रदाय और काम शास्त्र की दीघ परम्परा को प्रमाणित कर दिखाया है।

(ग) आधुनिक युग विदेशी प्रभाव—हिन्दी भाषा और साहित्य पर अग्रेजी प्रभाव का अनुसधान करन पर जो महत्वपूण तथ्य प्रकाश आये, उनके आधार पर स्रोत की दृष्टि स तीन प्रकरण लिखे गये[3]—

१ अग्रेजी प्रभाव के पूव हिन्दी भाषा और साहित्य।
२ अग्रेजी प्रभाव का आगमन।

---

१ हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास प्रथम भाग, हिन्दी साहित्य की पीठिका—काशी ना० प्र० स० स० २०१७ वि०, पृ० २५६

२ रीतिकालीन कविता की प्रेमव्यजना, डा० बच्चनसिंह, पृ० १८

३ हिन्दी भाषा और साहित्य पर अग्रेजी प्रभाव, डा० विश्वनाथ मिश्र

समानान्तरता—

जब कोई प्रवृत्ति संपूर्ण युग या क्षेत्र को व्याप्त कर लेती है तब साहित्य के इतिहास में भी उसके समानान्तर अन्य प्रवृत्ति का विकास हो जाता है। भारतेन्दुयुगीन नाटक और उपन्यास में इस प्रकार की समानान्तरता देखने में आती है। 'हिन्दी के नाटक और उपन्यास इसी नवोत्थान काल की देन हैं। यद्यपि नाटक का जन्म उपन्यास से पहले हुआ, तो भी दोनों की विचार धाराओं का प्रवाह लगभग समानान्तर है। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक जीवन की सम और विषम परिस्थितियों द्वारा ही उनके स्वरूप का निर्माण हुआ।' [१]

हिन्दी खड़ीबोली और ब्रजभाषा का अनुसन्धान प्रमाणित करता है कि दोनों भाषाएं समान रूप से प्राचीन हैं— खड़ी ब्रज जितनी ही प्राचीन है। अमीर खुसरो के पद्य खड़ीबोली में प्रथम रचनाएं हैं। लेकिन गद्य का विकास बहुत बाद में हुआ। 'चन्द छन्द बरनन की महिमा कवि गंग की गद्य की पुस्तक खड़ीबोली की पहली पुस्तक है। रामप्रसाद निरंजनी जो लल्लूलाल से बासठ वर्ष पूर्व सं० १७९८ में हुए, उन्होंने खड़ीबोली गद्य में योगवाशिष्ठ लिखा था।'' [२]

इस प्रसंग में भाषा की प्राचीनता में समानान्तरता रहते हुए भी विकास की स्थितियों में भेद देखने में आता है। भाषा, विचार, प्रवृत्ति या अन्य किसी भी विषय में समानान्तरता के लक्षण कभी स्थायी नहीं हो सकते वे सामयिक प्रभावों से तात्कालिक स्वरूप के होते हैं।

स्रोत के अध्ययन से भविष्य में साहित्य का क्या रूप होगा तथा प्राचीन में से क्या छूटेगा और नवीन रूप किस प्रकार का होगा इसका अनुमान भी वर्तमान रूप से लगाया जाता है। अनुसंधाता की पैनी तत्त्वावगाहिनी दृष्टि उन महत्त्वपूर्ण सचाइयों तथा चीजों को प्रकाश में ले आती है। यथा—'प्राचीन काव्य के आदर्शों और भावों की शिथिलता का परिचय सबसे अधिक आख्यानक गीतियों में मिलता है। उनमें काव्य की पूर्वप्रचलित भक्ति या नैतिकता की आभास नहीं मिलता वरन् उनमें भावी काव्यादर्शों की पूर्वछाया-सी मिलती है। वे काव्य के नूतन युग की अग्रदूत हैं। जैसे लाला भगवानदीन का 'वीर प्रताप' रीतिकालीन काव्य परम्परा और आदर्श,

---

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य (१८५० १९००) लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० २०१
२ हिन्दी गद्य के निर्माता, प० बालकृष्ण भट्ट (जीवन और साहित्य), राजेन्द्रप्रसाद शर्मा, पृ० ३

भाषा और छन्द रूप और शैली से बिलकुल विपरीत है फिर भी उसका साहित्यिक गौरव कम नहीं है।"[1]

[२] व्यक्ति

व्यक्तिगत रूप से साहित्यकार की दुनिया के मूल स्रोतों का पता लगाने पर विदित होता है कि वे स्रोत अनन्त प्रकार के हैं। इस जानकारी के लिए उसके पूर्ववर्ती और समकालीन साहित्यकारों का परिचय अपेक्षित है। कभी कभी लेखक स्वयं अपने साहित्य स्रोतों का उल्लेख या व्याख्या द्वारा निर्देश कर देता है। ऐसी स्थिति में अनुसंधान का काम सरल हो जाता है अन्यथा अनुमान का अधिक उपयोग करना पड़ता है। फिर भी लेखक द्वारा निर्देशित स्रोत का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करके उस पर अंतिम निर्णय देने का उत्तरदायित्व अनुसंधाता पर है। लेखक की बात बिना सम्यक विचार और पर्याप्त प्रमाण के बिना ज्यों की त्यों मान लेना अनुसंधान के विपरीत है। कभी लेखक की भावना में स्रोत का महत्त्व होते हुए भी उसकी रचना में उसका प्रभाव लक्षित न होता हो तो उस रचना के साथ उस स्रोत का सम्बन्ध न जोड़ना चाहिए। सम्भव है, उसकी एक रचना का उस विशिष्ट स्रोत से सम्बन्ध हो अथवा न हो ऐसी सम्भावना भी रहती है। किसी किसी लेखक को प्रभाव ग्रहण करना पसन्द हो, परन्तु उसकी प्रशंसा में बाधा आने के डर से प्रभाव ग्रहण नहीं करता या प्रभाव आ गया हो तो उसे स्वीकार नहीं करता। कभी कभी प्रभाव परोक्ष होता है या सीधा प्रभाव होने पर भी दोनों में आश्चर्यजनक अन्तर आ जाता है।

ऐसी स्थिति में इसका अध्ययन करने वाले अनुसंधाता के पास पर्याप्त जानकारी होना आवश्यक है जिससे वह एक के बदले दूसरे की स्थापना न करे। वह खुले मन का हो तो सत्य तक पहुँच सकता है। उसे जहाँ कुछ न हो वहाँ व्यर्थ ही बनाने का लोभ न करना चाहिए। यदि उसे स्रोत के बारे में शंका हो तो अपने कारणों को दर्शाते हुए उसकी संदिग्धता सिद्ध करनी चाहिए परन्तु जहाँ उसे पूर्ण विश्वास के साथ उसका निश्चय हो जाय वहाँ जोरदार प्रमाणों के सहारे वह अपने पक्ष का समर्थन अवश्य करे।

समानता और समानान्तरता के कारण अनेक प्रकार के विवादों का उदय होता है। सादृश्यता के अर्थ में रूपान्तर चोरी अपहरण अनुकरण और दोषारोपण की प्रवृत्ति बढ़ती है।

---

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य (१९०० १९२५ ई०), श्रीकृष्णलाल, पृ० ९६ ९८

समानान्तरता और समानता

स्रोत का अनुसंधान करने पर कभी कभी समानान्तरता या समानता की प्रधानता लक्षित होती है। एक लेखक द्वारा किसी अन्य लेखक की कृति में से चोरी या अपहरण की प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जाता है। इस ओर पर खास ध्यान में रखने लायक बात यह है कि साहित्यिक अनुसंधान का विषय कोई भी कृति या लेखक नहीं होते। विशेष प्रतिभासम्पन्न कृति या कृतिकार में ही अनुसंधान का अवकाश रहता है। उस महान कृतिकार का अपहरण या चोरी पसन्द ही न होगी। प्रभाव या प्रेरणा के रूप में अध्ययन या अनुभव के रूप में किसी भी छोटे बड़े स्रोत से उसका सम्बन्ध हो सकता है।

इसलिए स्रोतानुसंधान में मात्र अपहरण या ग्रहण की प्रवृत्ति मुख्य नहीं है, लेखक की मौलिकता और उसके व्यक्तित्व का आकलन मुख्य है। जानकारी के अभाव में हम समानता या समानान्तरता के तथ्यात्मक स्वरूप को अतिरिक्त महत्व दे कर कुछ अनर्थ भी कर बैठते हैं, जैसे कि—

(१) एक के बदले दूसरे को श्रेय देना।

(२) एक कृति की समानान्तर अन्य लेखक की कृतियों को उसकी सिद्ध करना।

(३) लेखक की विशेष प्रतिभा से अज्ञात रहने के कारण उसे पूरा न्याय नहीं देते। वह तैयार कथावस्तु का उपयोग करता है तब उसमें निहित विकास की सारी सम्भावनाओं को अपनी मर्म दृष्टि में देख लेता है और अपनी बुद्धि शक्ति के आधार पर उसे अनुपम बना देता है। किसी गद्य रचना को अदभुत काव्य रचना में परिवर्तित करने की सामर्थ्य को न देख कर उसे अपहरण बताना उसके प्रति बहुत बड़ा अन्याय है।

इन बातों का पूर्ण महत्त्व रहते हुए भी प्रथम लेखक के कथा निर्माण और शिल्पान्वेषण तथा सत्य और कल्पना सृष्टि का श्रेय दूसरे को नहीं उसी को मिलेगा। आगे दूसरे के द्वारा उसमें जितना और जुड़ेगा उतने श्रेय का ही वह अधिकारी माना जायगा। जैसे—प्रसादजी ने 'कामायनी' में कथा और दार्शनिक सिद्धान्तों को पुराण और दर्शन से ग्रहण किया, फिर भी उसमें चरित्र चित्रण, रचनाकौशल, कल्पना और दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या तथा मानव के विकास का मनोवैज्ञानिक स्वरूप

उनकी अपनी देन है जिससे यह महाकाव्य विश्वविख्यात हो गया और मौलिक ही कहलायेगा।

सादृश्यता —

रूपान्तर — लेखक अन्य लेखक के विचार, भाव या कल्पना को अपनी कृति के लिए उपयोगी समझकर उनको अपनाता है परन्तु उसकी अपनी शैली अलग रहती है। यदि रूपान्तरकार सिद्धहस्त न हो तो मूल सौन्दर्य की क्षति होती है और उसमें विकृति आ जाती है। चोरी और अपहरण में भिन्नता तुलना होने पर भी उसमें स्पष्ट ही सूक्ष्म भेद होता है। जैसे शृंगार चित्रण के सिद्धहस्त कवि बिहारी और भक्त शिरोमणि सूरदास के खण्डिता के चित्रण में हम सादृश्यता लक्षित होती है

लहइ जाहु जहं रति बसे ।
अरगज मध मरगजी माला बसन सुगंध भरे से हैं ।
काजर अधर कपोलनि चंदन लोचन अदन करे से हैं ।

—सूरदास

पलक पीक, अंजन अधर, लसत महावर भाल ।
आजु मिले सु भली करी, भले बने हो लाल ।।

— बिहारी

अनुसन्धाता का कथन— बिहारी ने सूर की रचना में थोड़ा परिवर्तन कर दिया है।[1] अर्थात यह अपहरण का प्रमाण है। सूर उनके पूर्ववर्ती होने से इसे स्वीकार किया जा सकता है परन्तु इसमें प्रमाण से नहीं कल्पना या अनुमान से अपहरण मान लिया गया है। हम इसे रूपान्तरण या साम्य के रूप में भी देख सकते हैं।

चोरी अपहरण—सादृश्यता की खोज के साथ अपहरण और चोरी का प्रश्न अनुसन्धाता के लिए विचारणीय है, परन्तु मात्र द्वेषवश या अज्ञान के कारण कभी कभी लेखक पर उसका आक्षेप किया जाता है। कविवर भिखारीदास ने अपने समय के एक प्रमुख कवि श्रीपति के नाम का उल्लेख अपनी सूची में क्यों नहीं किया ?' इसी एक बात के कारण हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान द्वय 'मिश्रबन्धुओं' ने दासजी

---

१ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठभाग रीतिकाल, रीतिबद्ध काव्य, (सं० १७००—१९०० वि०) ना० प्र० स० काशी

पर श्रीपति ने काव्य की चोरी का गम्भीर दोषारोपण किया था जो पूर्णत निराधार तथा असत्य था।'[1] इस प्रकार की वस्तु स्थिति का उल्लेख करते हुए अनुसंधाता ने निम्नलिखित पंक्तियों म इस गंभीर आरोप की विस्तारपूर्वक जाच की है—

१ मिश्रबंधु विनोद (पृ० ६३६) से उद्धरण— दास यह भी एक बडा दोष है कि य अन्य कवियों की उक्तियों को अपनी कविता म बधड़क रख लेते है। इस कथन क उदाहरणस्वरूप इनकी रचना म बहुत स छन्द मौजूद हैं यहाँ तक कि श्रीपति कवि पर यह अपना हक विशेष रूप स समझते थे। यहा तक कि 'श्रीपति सरोज' के अध्याय के अध्याय उठाकर आपन जस-क तसे अपन काव्य निर्णय म रख लिय ह और इस बात का स्वीकार करना तो दूर रहा अपनी कवियो की नामावली म श्रीपतिजी का नाम तक नही लिया, मानो यह उनको जानते ही न थ।'[2]

प्रमाणित हुए बिना एसा आरोप निराधार सिद्ध होता है। अनुसंधाता न इस विषय म प्रमाणो की खोज की और बताया—

२ "किसी भी इतिहासकार न स्वय मिश्रबंधुओ न भी इतन गभीर आरोप को सिद्ध करन क लिए एक पक्ति भी उधत नही की। हमने 'श्रीपति सरोज' का मिला और 'काव्यनिर्णय' की उससे तुलना की। दोनो क प्रथम अध्याय—दोनो म मगलाचरण सबधी अध्याय म कुछ भाव साम्य का समावेश हो गया है।[3] इस कथन का उदाहरण स प्रमाणित करके व लिखत हैं कि इस भाव साम्य का मुख्य कारण है चन्द्रालोक और काव्यप्रकाश। दास अथवा श्रीपति किसी ने भी उसम मौलिकता का प्रदर्शन नहीं किया है। यह तो मात्र अनुवाद है।[4]

३ इसकी स्पष्टता क लिए अनुसंधान करके बताया गया कि—"प्रथम अध्याय ही म श्रीपति न उत्तम मध्यम और अधम काव्य का वर्णन किया है। ठीक यही क्रम हम 'काव्यप्रकाश' म मिलता है और क्योकि दासजी क 'काव्यनिर्णय' का आधार, जसा उन्हाने ईमानदारी के साथ स्वीकार किया है, 'काव्यप्रकाश' और 'चन्द्रालोक' है, अत यदि दास म यही क्रम पाया जाय तो दासजी को इस बात का दोषी कौन ठहरा सकेगा कि इस अध्याय का क्रम उन्होने 'श्रीपति सरोज' स लिया है। दास के

---

१ आचार्य भिखारीदास, डॉ० नारायणदास खन्ना, पृष्ठ ३३४
२ वही, पृ० ३३५
३ वही, पृ० ३३५ ३३७
४ वही, पृ० ३३६

दूसरे अध्याय और श्रीपति के तीसरे अध्याय में भी इसी प्रकार का क्रम-साम्य है।"[1]

४ आगे सोदाहरण अनुसंधाता ने अपने इस कथन को प्रमाणित किया है।[2]

श्रीपतिसरोज—

> मो पर जो कर सासु रिसाइहै य घर य उत हौं ही निरारिये।
> मोइ बटोही करगो कहा हित को यह सीख कथा उर धारिये।
> तू है रतौंधो ने आँधरो राति को धोस ही आपनो पठो निरारिये।
> सेज या मेरी अँधेरे महा मग भिलगाई कहूँ सिर मारिये।

दास—

> एहि सज्जा मज्जा रहै एहि हौं चाहत सन।
> है रतौंधि है बात मह सैन समय भूले न।

परन्तु यह तो काव्यप्रकाश के निम्नलिखित प्राकृत श्लोक का ही अनुवाद है—

> अत्ता एत्थ णिमज्जइ अह दिअहए पलोए।
> मा पहिअ रत्ति अंधअ सेज्जाए मह णिमज्जहिसि।

—छाया

> श्वश्रूरत्र निमज्जति अत्र दिवसके प्रलोकय।
> मा पथिक रात्र्यन्ध शय्यायामावयोर्निमङ्क्ष्यसि।

५ अब वे अनुमान से रचनाकाल की तुलना करते हैं।[3]—'दास का प्रथम ग्रन्थ अनुमानतः सं० १७८१ वि० और अंतिम ग्रंथ सं० १८०७ वि० में लिखा गया, श्रीपतिसरोज सं० १७७७ वि० सावन कृष्ण पंचमी को लिखा गया। इससे यह तथ्य निकला कि सरोज की रचना भिखारीदास की रचना से पहले हो चुकी थी। इस बात का प्रमाण नहीं हो सकता कि उन्होंने 'काव्यसरोज' को देखा भी था। दास ने श्रीपति के सरोज का नाम भी कदाचित् न सुना था।

---

१ आचार्य भिखारीदास डा० नारायणदास खन्ना पृ० ३३६
२ वही, पृ० ३३७
३ वही, पृ० ३३८-३३९

अनुसधाता न इस प्रतिपादन म निम्नलिखित कारण प्रस्तुत किय हैं—

(१) उन दिनो मुद्रण के अभाव म उसका प्रकाशित रूप नही था और हस्त-लिखित ग्रथ दास के हाथ लगना असभव था।

(२) दास के काल तक काव्य सरोज का कोई उल्लेखनीय स्थान नही मिला था।

(३) श्रीपति कालपी के और दास टयोंगा के निवासी थे। बीच म सकडा मील का अतर था। यदि सुना देखा हो तो भी दास की आचार्यबुद्धि न सूची म नाम दना ठीक न समझा होगा।

साहित्य म भावसाम्य होना कोई दोष नहीं है इस अभिप्राय स प्रेरित हो कर अनुसधाता लिखत हैं—'दास की रचनाओ म हम यत्र तत्र उनके पूववर्ती कवियो के भावो की छाप मिलती है। यह भावसाम्य तो बड़े म बडे कवियो की रचनाओ म भी मिलता है और साहित्य म दोष नही माना जाता।'[१]

अपनी इस स्थापना के समथन म समालोचक न प० कृष्णबिहारी मिश्र के मन्तव्य का उद्धरण दिया है।[२]

"यदि किसी कवि की कविता म भावसादृश्य आ जाय तो समालोचना करते समय एकाएक उसे तुकचोर या चोर न कह बठना चाहिए, वरन उस प्रसग पर इमसन और ध्वन्यालोककार की सम्मति दखकर कुछ लिखना अधिक उपयुक्त होगा—

इमसन— साहित्य म यह एक नियम सा हो गया है कि यदि एक कवि यह दिखला सके कि उसम मौलिक रचना करन की प्रतिभा है तो उस अधिकार है कि वह औरो की रचनाओ को इच्छानुसार अपन व्यवहार म लाव। विचार उसी की सपत्ति है जो उसका आदर कर सक ठीक तौर स उसकी स्थापना कर सके। अन्य के लिए लिये हुए विचारो का व्यवहार कुछ भद्दा सा जाता है परन्तु यदि हम वह भद्दापन दूर कर द तो फिर व विचार हमार हो जात है।'

ध्वन्यालोककार— 'जिस कविता म सहृदय भावुक को यह सूझ पडे कि इसम कुछ नूतन चमत्कार है, फिर चाहे उसम पूव कवियो की छाया ही क्यो न दिखलाई

---

१ आचाय भिखारीदास डा० नारायणदास खन्ना, प० ३४०

२ वही, पृ० ३४१

पड़े, भाव अपनाने में कोई हानि नहीं है। उस कविता का निर्माता सुकवि, अपनी प्रबंध छाया से पुराने भाव को नूतन रूप देने के कारण निन्दनीय नहीं समझा जा सकता।'

दास के काव्य में मात्र सरोजकार से भावसाम्यता मिलती हो, सो बात नहीं है। इसके प्रमाणस्वरूप अनुसंधाता ने सिद्ध कर दिखाया है कि दास में देव, बिहारी, रसखान, केशव, रहीम, सेनापति और मतिराम के भावों का चित्रण भी मिलता है।[1] स्पष्ट है कि इस साम्यता का कारण श्रीपति और दास का एक भाषा से स्रोत से सम्बद्ध रहना है।

कवि देव पर भी अपहरण का आक्षेप पं० गोकुलचन्द्र दीक्षित द्वारा किया गया है और डा० नगेन्द्र ने उसका युक्तियुक्त ढंग से निवारण किया है।[2] पं० गोकुलचन्द्र दीक्षित—

१ 'काव्यरसायन' और 'सुख सागर-तरंग' में कृतिसादृश्य है।

२ 'रागरत्नाकर' के अनेक पद ज्यों-के-त्यों 'माधवगीत' में आ गये हैं।

डा० नगेन्द्र द्वारा इस तथ्य की स्पष्टता — 'माधवगीत' मैंने देखा नहीं है परन्तु स्वयं दीक्षितजी ने उसका वर्णन करते हुए जो उदाहरण दिये हैं उनसे स्पष्ट है कि वह ग्रन्थ पदों में लिखा गया है, जब कि इसके विपरीत 'रागरत्नाकर' पूरा देव के प्रिय छन्द, कवित्त, सवैया, दोहा और छप्पय में समाप्त हुआ है।

चोरी—

किसी की पूर्ण रचना को अपने नाम पर प्रसिद्ध कर देना चोरी है। मैथिली-शरण गुप्त और मुन्शी अजमेरीजी में गाढ़ मित्रता थी। इसी को आधार बना कर मुन्शी अजमेरीजी से पक्षपात और प्रेमचन्दजी से द्वेष करनेवालों ने चोरी का अपवाद फैलाया—*'लिखता सब अजमेरी है और छपता सब मैथिलीशरण के नाम से है।'*[3] बाद में मुन्शी अजमेरीजी ने 'गुप्तजी का और मेरा सम्बन्ध' लेख में इस अपवाद का निवारण किया।

अपहरण—

जब किसी की रचना को आंशिक रूप में चोरी या अनुकरण, अनुवाद या रूपान्तर की शैली में किया जाय तब उसे अपहरण कहते हैं। कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कविताओं पर बंगला-काव्य से अपहरण का आक्षेप लगाया गया था। इस तथ्य का उल्लेख करते हुए रामविलास शर्मा ने इस प्रसंग पर प्राप्त तथ्यों का

१ आचार्य भिखारीदास, डा० नारायणदास खन्ना, पृ० ३४१-३५३

२ देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, पृ० १०

३ मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य, डॉ० कमलाकान्त पाठक, पृ० ३३

विवरण और समाधान प्रस्तुत करते हुए प्रमाणित किया है कि अपहरण का आक्षेप निराधार था।[1] उसे उन्होंने प्रभाव, प्रेरणा या रूपान्तर के अन्तर्गत माना है।

एक लेखक की दो रचनाओं मे सादृश्यता—

एक लेखक की दो रचनाओं म सादृश्यता के कारण स्रोत का सम्बन्ध माना जाता है परन्तु इसम अपवाद भी होता है। गुप्तजी की 'स्वदेश सगीत' मूल भावना की दृष्टि से 'भारत भारती' की परम्परा म होने पर भी अनुगधाता न दोनो में अन्तर को स्पष्ट किया है—"स्वदेश सगीत (स० १९८२) तत्कालीन आन्दोलनो से प्रभावित है। उसका उद्देश्य प्रचारात्मक था। यह निर प्रभावक्षम नहीं है, नीरस शुष्क और उपदेशपूर्ण है। भारत भारती युवक कवि का ओजस्वी पौरुष उग्र तारुण्य और अंग्रेजो के निष्कासन की भावना से युक्त है, जबकि 'स्वदेश सगीत' प्रौढ़िका विचार गाम्भीर्य, गुचिसाहय और अंग्रेजो से सम-सम्बन्ध की कामना लिए हुए है। उसम नवीन प्राचीन समन्वय की भावना है अंग्रेजो के प्रति विद्वेष का अभाव और आदर्श जीवन की कल्पना है। यह भाषा विचारधारा के विकास की सूचना देने वाली रचना होने के कारण गुप्त साहित्य म इसका ऐतिहासिक महत्त्व है।"[2]

समकालीन लेखकों मे सादृश्यता—

समकालीन लेखकों म सादृश्यता के रहते भी परस्पर के सम्पर्क के अभाव म स्रोत का सम्बन्ध न हो यह पूर्णतया सम्भव है। रूसी गार्की और प्रेमचदजी के बीच तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा यह स्थापित करने की चेष्टा की गई है कि उन दोनो के साहित्य म 'मानवता का एक नया क्षितिज नजरो के सामने उभरने लगता है नगे अधनगे, बूढ़े जवान, बच्चे-बच्चियाँ तरुणी वधुएँ और ये भी किसान जमींदार, मालिक मजदूर, धनी निधन, छूत अछूत शिक्षित अशिक्षित सभी वर्ग के—इन चित्रो म जादूई आकर्षण है जिसकी सुहानी दीप्ति हमारी चेतना पर छा जाती है फिर भी दोनो के चित्रो म अतर है।[3]

इस अनुसधान की प्रक्रिया म प्रेमचन्द के 'गोदान' और गार्की की 'माँ' म साम्यता निकाल गई—"दोनो उपन्यासो की मै द्वीय आत्मा एक है उनम एक सी प्रतिध्वनि गूज रही है—दुर्बल कमजोर मानव जो व्यय का भार अपने ऊपर लादे रूढ़ियों, अधविश्वासो और मिथ्या मान मर्यादाओ के मलबे के नीचे दबे पड़े हैं—यह

---

१ निराला की साहित्य साधना पृ० ९६ १०६

२ मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय सस्कृति के आख्याता, उमाकान्त, पृ० २४

३ प्रेमचन्द और गार्की, स० शचीरानी गुर्टू, भूमिका, पृ० १

हमारी अधोगति और पराजय का द्योतक है। जीवन की सहज चाह, उसकी शक्ति और स्फूर्ति को कुचल दिया गया है। पूंजीवाद रूपी कोल्हू में मानवता को पीस डाला है, इसीलिए वह निष्प्राण और निर्जीव हो रही है ।"[1]

परोक्ष प्रभाव के कारण सादृश्यता—

● शिवदानसिंह चौहान ने इस विषय में साम्यता से अधिक वैषम्य पर बल देकर युक्तियुक्त शैली में अपने विचारों का समर्थन किया है और गोर्की के साथ सादृश्यता के स्थान पर टालस्टाय का परोक्ष प्रभाव सिद्ध किया है। प्रारम्भ में उन्होंने इस प्रकार की भारतीय और विदेशी की तुलना में भारतीय प्रजा की हीनता ग्रंथि और प्रतिवाद की भावना को कारण बताते हुए इस प्रवृत्ति के मूल में राष्ट्रीय जागरण की परिस्थितियाँ बतायी हैं तथा प्रेमचन्द के जीवन काल में गोर्की से नहीं, चार्ल्स डिकेन्स या विलियम थैकरे से रचना प्रवृत्ति में साम्य को लेकर तुलना की जाती थी इसका उल्लेख किया है।[2] फिर वे बताते हैं कि प्रेमचन्द और गोर्की में साम्य से वैषम्य अधिक है इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर शायद सोवियत आलोचक बस्कानवी ने प्रेमचंद पर लिखते समय गोर्की का नहीं, टालस्टाय का उल्लेख किया है। प्रेमचंद अनेक दृष्टियों से अपेक्षया टालस्टाय के अधिक निकट हैं यद्यपि इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि वे टालस्टाय से बड़े थे या उनकी बराबरी के लेखक हैं। टालस्टाय से प्रेमचंद बहुत अधिक प्रभावित थे इसका केवल इतना ही अर्थ है। स्वयं महात्मा गांधी टालस्टाय से प्रभावित थे और प्रेमचन्द मूलतः गांधीजी के ही अनुयायी थे।[3] कहा जा सकता है कि गोर्की से साम्यता का कारण परिस्थितियों की और विषय वस्तु की समानता है तथा टालस्टाय साम्यता का कारण गांधीजी के माध्यम से टालस्टाय साहित्य से प्रेमचन्द साहित्य का परोक्ष मानस का सम्बन्ध है।

सादृश्यता के सही मूल्यांकन में तुलनात्मक अध्ययन—

अनुसंधाता का कर्तव्य है कि वह साम्यता की खोज करते समय कवि और कविकार का सर्वांग अध्ययन करके वैषम्य को भी समझ ले जिसमें साम्य के स्तर और स्वरूप का सही मूल्यांकन और व्याख्या हो सके। प० हजारीप्रसाद द्विवेदी का उपन्यास बाणभट्ट की आत्मकथा और बाण की कादम्बरी की तुलना करते हुए बताया गया है— उपन्यास की शैली और कादम्बरी की शैली में बहुत साम्य दिखाई पड़ता है क्योंकि अनेक ऐसे स्थल आए हैं जिनमें आँखों को लुभा लेनेवाले मनोरम दृश्यों का वर्णन जगह न कहीं ही रुचिपूर्वक किया है जबकि आँखों का

---

१ प्रेमचन्द और गोर्की शचीरानी गुर्टू भूमिका पृ० १३-१४

२ वही, पृ० ५७६

३ वही पृ० ५८२

बचाकर भीतर चलनेवाले अन्तद्वन्द्वा के चित्रण म उसने अपनी उस सुरुचि का परिचय नही दिया है।"[1] अनुसधाना न इस साम्य का कारण सस्कृत काव्य शैली का प्रभाव माना है।

एक साथ दो या दो से अधिक सख्या म कृतिया या कृतिकारो म साम्यता का दशन होता है तब अध्ययन पूण गम्भीरता के साथ अत्यन्त रसप्रद भी होता है। इस सादश्यता का सम्ब ध स्थूल शब्दा तक सीमित न रह कर रचना के सूक्ष्म-तत्त्वा को प्रावत्त किय रहता है। 'प्रेमचद (स० १६३७ १६७३ वि०), वन्दावनलाल वर्मा (स० १८८६ म जन्म) और राजा राधिकारमण प्रसादसिंह (स० १८७१ म जन्म)" मे यद्यपि अनेक साम्य आलाचका को दष्टिगत हाग परन्तु इसके विपरीत स्वतत्र और मौलिक क्षेत्रो का समादर साहित्यिक मू याकन निमित्त नात य हागा[2]—

साम्य—

१ सामाजिक चित्रण की प्रवणता अभूतपूव है।

२ चरित्रा का जीवन दशन।

३ कथानक की रोचकता।

४ आदर्शोन्मुख यथाथ।

५ मनोवज्ञानिक परीक्षण।

६ प्रेमतत्त्व के विस्तार की आकाक्षा।

७ भाषा के परिमाजन का अभाव।[1]

८ सूक्तिया का प्रबल आग्रह।

६ शिल्प से अधिक भावपक्ष पर दष्टि।

१० सवेदनाओ की उनमन का अभाव।

११ भारतीय जीवन म सास्कतिक प्रतिष्ठान।

१२ नारी के सात्त्विक प्रेम तथा उसके उचित सम्मान की भावना।

आग इन तीना लखका के वषम्य पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार सादश्यता का विचार अधिक विकसित होकर तुलनात्मक अध्ययन का प्रेरणा स्रोत बन जाता है। तुलनात्मक अध्ययन अनुसधान के क्षत्र म एक स्वतत्र विषय है और इसम अन्य विचारणा का विशप महत्त्व नही दिया जाता। दानबहादुर पाठक के

---

१ ऐतिहासिक उपन्यास की सीमा और बाणभट्ट की 'आत्मकथा', डॉ० त्रिभुवनसिंह, पृ० २४

२ वन्दावनलाल वर्मा साहित्य और समीक्षा, सियारामशरण गुप्त, पृ० २०२

सयुक्त स्रोता के अध्ययन मे तुलनात्मक अध्ययन का एक प्रकरण सादश्यता के विचार के विकासस्वरूप जाना है। इसके अ तर्गत ट हान निम्न [illegible] की चर्चा की है[1]—

युग और परिस्थितियाँ।
काव्य और जीवन।
चरित्र चित्रण।
भाव पक्ष।
कला पक्ष।
सीमाकन।

जयनाथ 'नलिन' लिखते हैं — 'भारतेन्दु युग के प्रौढ व्यक्तित्व ने प० बालकृष्ण भट्ट मे आकार पाया।[2] प० प्रतापनारायण मिश्र और भट्टजी म यह बात विशेष रूप से थी। उनके शीर्षको और भाषा की भाव भगी से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह उन्ही की लेखनी है। भट्टजी की भाषा म मिश्रजी की भाषा की अपेक्षा नागरिकता की मात्रा कही अधिक पाई जाती है।[3] इस उद्धरण म तुलनात्मक शैली म समानता और विषमता का निर्देश मूल स्रोत को ध्यान म रख कर किया गया है। हिन्दी के सर्व प्रथम निबन्धकार भट्टजी है। उनका हिन्दी प्रदीप का सम्पादन उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के परिचय का मुख्य और प्रत्यक्ष स्रोत है। इसस प्रभाव और अनुकरण या धारी के बीच क्या अन्तर है यह स्पष्ट हो जाता है।

दो प्रान्तीय भाषाओ के नाटय साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन—

हिन्दी और गुजराती नाटय साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन म दोनो के आदिनाटक क्रमश शकुन्तला (सन १८६३) हिन्दी म और लक्ष्मी (सन १८५१) गुजराती म—का विवचन करने के बाद अनुसधाता उनके स्रोतो पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं— उपयुक्त दोनो भाषाओ के आदि नाटको के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुजराती नाटक का जन्म हिन्दी नाटक से लगभग बारह वर्ष पूर्व हुआ। इस दृष्टि से वह अग्रज है। नाटयोत्पत्ति के समय दोनो भाषाओ की ऐतिहासिक साम्प्रदायिक सामाजिक एव शैक्षणिक पृष्ठभूमि समान थी दोनो का उदगम-काल अग्रजो का शासन-काल १९वी शती का उत्तरार्द्ध है।

---

१ मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य दानवहादुर पाठक 'वर' पृ० ३३८
२ हिन्दी निबन्धकार पृ० ६६
३ हिन्दी गद्य शैली का विकास, डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृ० ४८

प्राचीनतम दो महान नाट्य परम्पराओं— यूनानी और भारतीय—में से हमारी आलोच्य भाषा गुजराती के आदि नाटक का यूनानी नाटक में और हिन्दी के आदि नाटक का संस्कृत नाटक से संबंध हो, यह एक अत्यन्त रोचक घटना है। भिन्न भिन्न परम्पराओं से उद्‌भव होने के कारण दोनों भाषाओं के आदि नाटकों में साम्य कम और वैषम्य ज्यादा है। फिर भी यहाँ यह निर्देश आवश्यक है कि दोनों भाषाओं के इन आदि-नाटकों के कथानक पौराणिक हैं। हिन्दी के आदि-नाटक शकुन्तला का हिन्दी के भावी नाटककारों पर काफी प्रभाव पड़ा है जबकि गुजराती 'लक्ष्मी' नाटक ने किसी भी परवर्ती गुजराती नाटककार को प्रभावित नहीं किया और किसी परम्परा का प्रारम्भ भी नहीं किया।[1]

स्रोतों की एकता तथा समान सांस्कृतिक ऐतिहासिक प्रभाव—

उपर्युक्त प्रबंध में प्राप्त सादृश्यता की चर्चा करते हुए बताया गया है कि— 'ऐतिहासिक नाटकों में ऐतिहासिक वातावरण की सम्यक सृष्टि के लिए रीति रिवाज, वेश भूषा, वार्तालाप, भाषा शैली इत्यादि का ऐतिहासिक इतिवृत्त और चरित्रों के अनुरूप होना आवश्यक है। हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं के इन सभी नाटकों में समान रूप से ऐतिहासिक वातावरण का निर्वाह हुआ है।''[2]

विदेशी साहित्य का प्रभाव सादृश्यता के प्रश्न मे—

प्रदेश के साहित्य और विदेशी साहित्य में प्रतीत होने वाली सादृश्यता की व्याख्या करते हुए अनुसंधाता लिखता है— उनके लेखक व्यक्तित्व की विशिष्टता ने इन प्रभावों को यूं आत्मसात किया कि अपनी आवश्यकतानुसार इन प्रविधियों के संशोधन, अनुकूलन एवं परिष्कार में वह अपने विषयों के प्रभावी सम्प्रेषण में समर्थ हो सकी और यह प्रतीति दे सकी कि ये बाहर से लाई चुराई नहीं गयी बल्कि इनके विषयों की अपनी माग है—इनकी मूल संवेदना की अपनी उपज। तदनुकूल विषय और शिल्प की अनुपात्यता अज्ञेय के उपन्यासों की महत विशेषता बन गई है। यही कारण है कि विदेशी साहित्य का अध्येता पाठक इनके उपन्यासों में विदेशी प्रभावों का संधान चाहे कर लें किन्तु न तो इनमें किसी बाह्यारोपित साधनों के उपयोग से जनित विकारात्मकता का गिला सकता है न ही इन पर नकलची होने का दोषारोपण कर सकता है। यह अवश्य है कि ऐसे पाठक के लिए अज्ञेय के उपन्यास उतने मौलिक न रहेंगे जितने केवल भारतीय साहित्य के अध्येता पाठक के लिए हो सकते हैं।

---

१ हिन्दी और गुजराती नाट्य साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, डा० रणधीर उपाध्याय पृ०६० ६१

२ वही, पृ० १७६

स्वयं अज्ञेय ने अपने को लारेंस और ब्राउनिंग के निकट बताया है। डॉ० राम ने लोरेंस के उपन्यास 'लेडी चेटर्लीज लवर' और 'नदी के द्वीप' के किन्हीं स्थलों की तुलना की है। इस चर्चा का तात्पर्य इतना ही है कि सादृश्यता का अर्थ चोरी या अपहरण कदापि नहीं है। हम उसे प्रभाव या प्रत्यक्ष स्रोत के रूप में देखने की दृष्टि यदि प्राप्त करेंगे तो बहुत संभव है कि लेखक की मौलिकता का हम अधिक सही रूप में जान सकें।

अनुकरण—

अनुकरण रचना के भाव पक्ष की अपेक्षा कला पक्ष से अधिक संबंध रखता है। 'विनयपत्रिका' और 'रामचरितमानस' में संत तुलसीदास ने जिस प्रकार राम के ब्रह्मरूप की अनेक स्तोत्रों और छंदों में वंदना की है श्रीधर पाठक ने भी उसी प्रकार मातृभूमि के देवीरूप की वंदना की है। तुलसीदास ने श्रीरामचंद्र के लिए 'रामचरित मानस' में लिखा है—

> जय रामरूप अनूप निर्गुण सगुण गुण प्रेरक मही,
> दशशीश बाहु प्रचंड खंडन चाप शर मंडन मही।
> पाथोदगात सरोजमुख, राजीव आयत लोचनम
> नित नौमि राम कृपालु बाहु विशाल भव भय मोचनम॥

श्रीधर पाठक भी उन्हीं के राग में राग मिलाकर 'भारतमाता के नौमि भारतम' में लिखते हैं—

> सुखधाम अति अभिराम गुन निधि नौमि नित प्रिय भारतम
> सुठि सकल जग ससेव्य सुभ थल सकल जग सेवारतम।
> सुचि-सुजन सुफल सुसस्य संकुल सकल भुवि अभिवंदितम
> नित-नवल सुऋतु-सुदृश्य-सुठि छवि अवलि अवनि अनंदितम॥

इन समान उद्धरणों को प्रस्तुत करके अनुसंधाता ने यह प्रमाणित किया है कि श्रीधर पाठक ने तुलसीदास के पदचिह्नों का अनुसरण कर किस प्रकार भारतवर्ष को देवरूप प्रदान किया है। उन्होंने गीतगोविन्द के अमर कवि जयदेव का अनुसरण कर अनेक सुंदर पद रचे। उनका 'भारत स्तव' जयदेव के 'जय जगदीश हरे' की शैली से प्रभावित हुआ जान पड़ता है।[१] उन्होंने भारत माता की पूजा के लिए आरती भी लिखी जिस प्रकार तुलसीदास ने हनुमान और राम की लिखी थी।[२]

अनुकरण और प्रभाव में अंतर—

एक प्रसंग को उद्धृत करने पर यह स्पष्ट हो जायगा— भारतेंदु के नाटकों, श्रीकृष्णलाल,

---

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (१९०० १९२५ ई०) श्रीकृष्णलाल, पृ० ८३ ८४

२ वही, पृ० ८५

का अध्ययन करने पर यह तथ्य उपलब्ध हुआ कि उनकी विख्यात नाटिका 'श्रीचन्द्रावली' रासलीला के प्रभाव से विशेष प्रभावित है और बीसवी शताब्दी म 'वियोगी हरि' न 'श्रीप्रेमयोगिनी' नाटिका लिख कर उसी रासलीला का अनुकरण उपस्थित किया।"[१]

इस प्रसग म प्रभाव और अनुकरण इन दो शब्दो के द्वारा भाव और साहित्यकार की प्रवृत्ति का भी सकेत किया गया है। प्रभावग्रहण अलक्षित रूप म और लेखक के अनजान म स्वाभाविक और उसके स्वभाव के अनुरूप होता है जब कि अनुकरण प्रयत्नपूर्वक और जान-बूझकर होता है और अक्सर अस्वाभाविक भी हो जाता है।

[३] प्रभाव

प्रभाव किसी व्यक्ति, रचना, प्रवृत्ति समुदाय और युग का भी हो सकता है। साहित्य की व्याख्या म 'नूतन नूतन पद पद' का रहस्य है, उसका प्रतिक्षण चैतन्यपूर्ण रह कर प्रभाव को ग्रहण करना। व्यक्ति की प्रतिभा प्रवृत्ति और युगजीवन विविध रूप से उसे प्रभावित कर उसका नवनिर्माण करते रहते हैं।

पूर्ववर्ती आचार्यों का प्रभाव—

विद्यापति पर माघ अमरुक, गोवर्धनाचार्य कालिदास, जयदेव आदि पूर्ववर्ती आचार्यों का प्रभाव लक्षित होता है।[२] व अपने समकालीन साहित्य से भी प्रभावित रहे। पदावली जिस काल और वातावरण म रची गई, वह घोर शृंगारिक था। साधारण लोगो की तो कौन कहे, भक्ति-सम्प्रदायो के प्रणेता भी माधुर्य भाव के नाम से भक्ति म शृंगार का अमित समावेश कर चुके थे। जीवन और जगत का कोई कोना शृंगार रस से अछूता न रह गया था। राजा शिवसिंह और लखिमादेवी जिनके आश्रय म कवि ने अपने पदो की रचना की, तो शृंगार रस के आगार ही थे।[३]

युग प्रभाव—

भारतेन्दु की 'भारतजननी' और 'भारतदुर्दशा' नाटक म अनेक पदो और गीतो म वर्तमान अवनति के प्रति क्षोभ की भावना व्यजित है। मैथिलीशरण की 'भारत भारती' और 'स्वदेश सगीत' पर भी इसका प्रभाव है।[४] प० प्रतापनारायण मिश्र 'जीवन और साहित्य' प्रबध म अनुसधाता ने अनेक तथ्यो के सकलन के पश्चात्

---

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (१६०० १६२५ ई०) श्रीकृष्णलाल, पृ० २००

२ विद्यापति और उनकी पदावली, दशरथसिंह भाटी एव जीवनप्रकाश जोशी, पृ० ३

३ वही, पृ० १५७

४ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (१६०० १६२५ ई०), श्रीकृष्णलाल पृ० ८५

स्वरूप उनके साहित्य स्रोतों की गवेषणा करके बताया कि "तत्कालीन परिस्थितियाँ, राजनीति समाज धर्म और साहित्य'—इन सब का सम्मिलित प्रभाव मिश्रजी पर था।[1]

साहित्यिक वातावरण और राजनीतिक सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव—

भारतेन्दु युग में पद्य में ब्रजभाषा और गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग होता था। इस प्रकार के भेद में तत्कालीन साहित्यकारों को अस्वाभाविकता नजर आई और श्रीधर पाठक जैसे कुछ प्रमुख साहित्यकारों ने खड़ी बोली को महत्त्व देने का प्रयास किया। इस विषय पर तीव्र मतभेद प्रचलित था। राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ खड़ी के अनुकूल थीं। 'एक हिन्दी' के पक्ष में श्रीधर पाठक का प्रयत्न सराहनीय है। इस समय की उनकी रचना का प्रेरणा स्रोत तत्कालीन साहित्यिक वातावरण तथा राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ थीं। 'एकान्तवासी योगी' की भूमिका में वे लिखते हैं—

'हिन्दी के प्रेमी पाठक,

यह एक प्रेम-कहानी आपको भेंट की जाती है। निस्सन्देह इसमें ऐसा तो कुछ नहीं जिससे यह आपको एक ही बार में अपना सके अथवा आपके इस नित्य नवीन रसान्वेषी मनोमधुप को सहज ही लुभा सके। केवल दो प्रेमियों के प्रेम का निर्वाह मात्र है, पर हम को और क्या चाहिए? हम तुम भी तो एक हिन्दी के प्रेमी हैं, बस यही सबब इस भेंट के लिए बहुत कुछ है।'[2]

विचार धारा का प्रभाव—

महापुरुष के संकल्प की महान शक्ति उनके विचार को इतना प्रभावक्षम बना देती है कि उनके असंख्य अनुयायी हो जाते हैं और जीवन के विविध क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला देती है। तब वह उस विचार धारा को 'वाद' या वाद रूप में मान्यता मिल जाती है। गांधीवाद के सम्बन्ध में यह नितान्त सत्य सिद्ध हुआ है— कभी कभी जीवन में ऐसी भी परिस्थितियाँ आती हैं कि उत्तम चरित्र के जीवन में निराशा का अंधकार छा जाता है। ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति को अपना पथ नहीं सूझता। इस प्रकार का रूप वाजपेयीजी की गीता में दर्शाया है। यह प्रवृत्ति भी गांधीवादी विचार धारा के मेल में है। वाजपेयीजी के उपन्यासों के पात्रों के चरित्र पर गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट है।[3]

---

१ डॉ० [illegible] पृ० १२

२ ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली डा० कपिलदेव सिंह पृ० ३

३ उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी शिल्प और चिन्तन डॉ० [illegible], पृ० ६१

ऐतिहासिक सांस्कृतिक प्रभाव—

साहित्य संस्कृति का वाहक है और अपने उद्भव तथा विकास के लिए वहीं से अपने जीवन-तत्त्वों का ग्रहण करता है। संस्कृति का सहयोगी तत्त्व ऐतिहासिकता अनिवार्य रूप से उसमें आ जाती है— ऐतिहासिक नाटकों में ऐतिहासिक वातावरण की सम्यक सृष्टि के लिए रीति रिवाज वेश भूषा वार्तालाप, भाषा शैली इत्यादि का ऐतिहासिक इतिवृत्त और चरित्रों के अनुरूप होना आवश्यक है। हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं के इन सभी नाटकों में समान रूप से ऐतिहासिक वातावरण का निर्वाह हुआ है।[1]

वातावरण के कारण व्यक्ति पर प्रभाव —

किसी महापुरुष की विचार धारा से नये वातावरण की सृष्टि होती है वैसे ही प्रवर्तित वातावरण के अनुरूप विचारों का शक्तिशाली ढंग से अभिव्यक्त कर सकने की प्रतिभा के प्रताप से भी साहित्य निर्माण होता है। नव वातावरण पृष्ठभूमि का काम देता है। "प्रायः २१० वर्षों तक चली आ रही नाट्य शैली को विश्वनाथ ने नये मार्ग पर मोड़ दिया। नाट्य शास्त्र के नियमन को नाटककारों ने पूर्णतया स्वीकार किया। यह स्वाभाविक भी था। हिन्दी नाटककारों ने १२वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक संस्कृत नाट्य शास्त्र की उपेक्षा की थी। १७वीं शताब्दी में महाराज जसवन्तसिंह ने संस्कृत नाट्य शास्त्र के नियमों का उपयोग करना चाहा, किन्तु वह सफल न हो सके। छः सौ वर्षों के बाद देश में ऐसा वातावरण उत्पन्न हो गया कि नाटककार विश्वनाथसिंह ने पूर्णतया संस्कृत की नाट्य शैली को अपनाया और इस कार्य में वे सफल हुए। विश्वनाथ द्वारा प्रवर्तित नान्दी सूत्रधार और प्रस्तावना के विधि विधान सर्वमान्य हुए। भारतेन्दु-कालीन नाटककारों के नाटकों से होती हुई यह परम्परा प्रसाद के प्रारम्भिक नाटक सज्जन तक चलती रही। यद्यपि यत्र-तत्र आज भी उसके दर्शन हो जाते हैं किन्तु अब उसकी झाँकी ही रह गई है।"[2]

एक लेखक का सम्पूर्ण युग पर प्रभाव—

भारतेन्दु-पूर्व हिन्दी गद्य का नमूना लल्लूलालजी के लेखन में इस प्रकार है— "इतना कह, महादेवजी गिरिजा को साथ ले गंगा तीर पर जाय नीर में न्हाय, हिलाय, अति लाड़ प्यार से लगे पार्वतीजी को वस्त्राभूषण पहिराने।"[3] इस ओर

---

१ हिन्दी और गुजराती नाट्य साहित्य तुलनात्मक अध्ययन डा० रणधीर उपाध्याय, पृ० १७६

२ हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डा० दशरथ ओझा, पृ० १८९ १९०

३ ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली, डा० कपिलदेव सिंह, पृ० ७

सन्दर्भ ४८ के उपर्युक्त दो उद्धरणों में जो अंतर लक्षित होता है उसका कारण युग प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रतिभा है। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व ने एक दो लेखकों को नहीं, सम्पूर्ण युग को प्रभावित किया। हरिश्चन्द्री हिन्दी की परम्परा को बालकृष्ण भट्ट ने आगे बढ़ाया।[1] परन्तु इस समय के प्राय सभी लेखकों में एक बात सामान्य रूप में पाई जाती है। वह यह कि सभी शैलियों में उनके व्यक्तित्व की छाप मिलती है।

इसे प्रभावशाली भारतेन्दुजी ने जिस क्षेत्र में जैसे साहित्य का निर्माण चाहा, खुद किया और अन्य लेखकों को बहुत हद तक प्रभावित किया। उनके प्रभाव से तत्कालीन साहित्यकार इतने अधिक आतंकित थे कि गद्य पद्य में समान भाषा के प्रयोग की आवश्यकता होते हुए भी किसी की हिम्मत न पड़ी कि गद्य के अनुकरण में पद्य में भी खड़ी बोली का प्रयोग और तद्विषयक प्रचार किया जाय। भारतेन्दु पद्य में ब्रजभाषा के पक्षपाती थे।

गद्य पद्य की भाषा के विषय में इस प्रकार के प्रभाव के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य का अध्ययन बहुत दिलचस्प है और युग को प्रभावित करने वाली एक और प्रतिभा को प्रकाश में लाता है। उन्होंने भारतेन्दुजी के मन्तव्य के विरुद्ध गद्य पद्य दोनों के लिए खड़ी बोली का प्रवर्तन प्रचलन बड़े शक्तिशाली प्रयत्नों और साधना के साथ किया। इसका यही तात्पर्य है कि युग निर्माता करणीय अकरणीय में पूर्ण समर्थ होता है। कुलदेव शास्त्री के शब्दों में द्विवेदीजी का परिचय—

'साहित्य की सब विधियों के साथ साथ उन्होंने इतिहास, सम्पत्ति शास्त्र, भूगोल, हिन्दी भाषा, संस्कृत साहित्य, जीवन चरित, शासन पद्धति, यात्रा विवरण तथा चित्रकला आदि विभिन्न विषयों पर लिखकर हिन्दी की अभावपूर्ति की। अत तत्कालीन युग पर द्विवेदीजी का इतना प्रभाव पड़ा कि उसका नामकरण ही इनके नाम के आधार पर द्विवेदी काल से विभूषित हो गया। अन्त में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के शब्दों में हम द्विवेदीजी की महत्ता में निस्संकोच कह सकते हैं — यदि कोई मुझसे पूछे कि द्विवेदीजी ने क्या किया तो मैं उस समग्र आधुनिक हिन्दी साहित्य को दिखाकर कह सकता हूँ कि यह सब उन्हीं की सेवा का फल है। हिन्दी साहित्य-गगन में सूर्य चन्द्रमा और तारागणों का अभाव नहीं। सूरदास, तुलसीदास, पद्माकर आदि कवि साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। परन्तु सब की तरह ज्ञान की जलराशि देकर साहित्य उपवन को हरा भरा करने वालों में द्विवेदीजी की गणना होगी।[2]

इस प्रसंग में एक और तथ्य प्राप्त होता है कि भारतेन्दुजी और द्विवेदीजी दोनों को युग निर्माता का विरद दिया गया परन्तु पद्य में खड़ी बोली का विरोध

---

१ ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली डॉ० कपिलदेव सिंह पृ० २६ ७१

२ युग निर्माता द्विवेदी पृ० २३

समय बीतने अव्यावहारिक सिद्ध होने से भारतेंदु के इस भाषा विषयक आग्रह का प्रभाव समाप्त हो गया और द्विवेदीजी के खडी बोली के व्यवहार का प्रयत्न सफल और सार्थक हुआ। साहित्य जगत् का वातावरण और उसकी आवश्यकता ही प्रभाव को बनाती बिगाडती रहती है। इसे युग निर्माता का दोष नहीं कहा जायगा।

विदेशी प्रभाव—

हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव पर्याप्त मात्रा म पडा है। प्रसादजी के कथा-काव्य 'प्रेम पथिक' (१९१३) पर अंग्रेजी प्रभाव और अधिक स्पष्ट है। यह गोल्डस्मिथ की रचना 'हरमिट' के आदर्श पर निर्मित है। इसके सविधान म स्वच्छन्दता की श्रेष्ठ झलक है और अपने इसी स्वरूप म यह गोल्डस्मिथ की सीधी सरल गति म चलने वाली कथा से भिन्न है। स्वच्छन्दतावादी साहित्य दर्शन की अभिव्यक्ति इस काव्य रचना म तीन रूपों म है। एक तो सामाजिक मर्यादा के प्रति विद्रोहात्मक उक्तियों म दूसरे प्रकृति के प्रांगण म उल्लास के अनुभव और तीसरे विश्व प्रेम के आदर्श के सदेश म। सामाजिक मर्यादा के प्रति विद्रोह की अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर है। 'एक पुत्री के अपरिचित व्यक्ति के साथ विवाह के प्रति विक्षोभ म दूसरे विवाहिता नारी के दाम्पत्य चित्रण म एव तीसरे वधव्य से पीडित एव अभिशप्त जीवन के दिग्दर्शन म। गोल्डस्मिथ के कथानक को पूर्णत भारतीय रूप देने के लिए उसम कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिए गए हैं।'[1]

अज्ञेय का साहित्य विदेशी साहित्य से बहुत अधिक प्रभावित है। 'शेखर' पर रोमाँ रोलाँ के 'ज्याँ क्रिस्ताफ' का और 'नदी के द्वीप' की कथा पर व्यक्तिमूलक उपन्यासकार मामस मूर्स के 'In quest of an island unto himself' म खोजी जा सकती है जिसका दृष्टिकोण समाजपरक है। जान डन के उपर्युक्त कथन के विपरीत उन्नीसवीं शती के मध्य के मथ्यू आर्नल्ड की 'The River of Life' कविता म इसी प्रतीक का व्यक्तिपरक अर्थ म प्रयोग हुआ। अज्ञेय ने अपना प्रभाव इसी से ग्रहण किया है। 'नदी के द्वीप' के काम प्रसंगों पर डी० एच० लारेंस का प्रभाव है।

[४] स्रोत के प्रकार

इतिहास और व्यक्ति के सदर्भ म ग्रहण, समानान्तरता, सादृश्यता, रूपांतर चोरी, अपहरण, अनुकरण और प्रभाव—प्रत्यक्ष और परोक्ष—की चर्चा के निचोड स्वरूप मोटे तौर पर इन आठ प्रकार के स्रोतों की उपलब्धि होती है—

---

१ हिन्दी साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव, पृ० २५२ २५५

विवेचन उसम नही आ सका है।"[१]

रीति कवि कृपाराम की 'हितनरगिणी' के स्रोत विषयक कथन म अनुसधाता लिखता है—"दूसरी कोटि के रीति-काव्य प्रणेता वे कवि हैं जो रस, अलकार आदि का याग-निरूपण म ही प्रवृत्त हुए थे। उनम कृपाराम का नाम कालक्रम मे सवप्रथम आता है। कृपाराम ने 'हिततरगिणी (सन १५९८) नामक ग्रथ कविशिक्षा के निमित्त दोहा छद म लिखा था। उन्होने अपने पूववर्ती रीति-काव्य प्रणेताओ का भी सकेत किया है, किंतु अभी तक किसी ऐसे रीति ग्रथ का पता नही लगा है। अत कृपाराम को ही सवप्रथम रीति-काव्यकार मानना उचित है।"[२] भरत के प्रति इस कवि ने ऋण स्वीकार किया है और भरतमुनि का नाट्य शास्त्र उपलब्ध होने के कारण स्रोत विषयक सगति भी लगती है। इन्होने स्रोत का सकेत देते हुए इस ग्रथ म लिखा है—

बरनत कवि सिंगार रस छद बडे विस्तारि।
मैं बरन्यौ दोहान बिच याते सुघरि बिचारि॥

भारत भारती' की प्रस्तावना म गुप्तजी ग्रहण के अथ म प्रत्यक्ष स्रोत का निर्देश करते हुए लिखते हैं— हाली और कैफी के मुसद्दसो से मैंने लाभ उठाया।'[३]

अनुसधाता ने इस तथ्य के आधार पर और ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए इस प्रभाव के अ तगत रखा है —'मुसद्दस हाली, मुसद्दस कैफी और भारत भारती—तीनो एक ही प्रकार की रचनाएँ है। प्रथम दो पूव प्रकाशित है। गुप्तजी दोनो म प्रभावित है।[४]

मेरे निबन्ध जीवन और जगत् के लेखक गुलाबराय लिखते हैं— अपनी सिद्धात और अध्ययन' शीषक पुस्तक के लिए छ सात लेख लिखे गए। (मैं उन लोगो म हूँ जो अपने विशेष निबन्धो के लिए बिना कुछ पढे नही लिख सकते। वास्तव म मेरे लेखन म एक तिहाई दूसरे स पढा होता है, एक बटा छह उसके आधार स स्वय प्रकाशित और ध्वनित विचार होते है, एक बटा छह सप्रयत्न सोचे हुए विचार रहते है और एक तिहाई मलाई के लड्डू की बर्फी बनाकर चोरी छिपाने वाली अभिव्यक्ति की कला रहती है।"[५]

इसी पुस्तक म लेखन के आधार की इस स्पष्ट स्वीकृति के साथ साथ वे अपनी

---

१ हिंदी साहित्य का वहत इतिहास पष्ठ भाग रीतिकाल, रीतिबद्ध काव्य, (स० १७०० १९०० वि०), ना० प्र० स० काशी, प० १६६
२ वही, प० १६६
३ मथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय सस्कृति के आख्याता, उमाकान्त, पृ० ३
४ वही, प० ३, स० १८
५ मेरी दनिकी का एक पृष्ठ, पृ० ३

सामग्री के मूल स्रोतों का तथा उनके प्रभाव और अपने जीवन-दर्शन के स्वरूप का भी परिचय दे देते हैं — "मैं कभी कभी उपन्यास का सर्वव्यापी पक्ष की गहन गुम्फित सीमाओं को स्पर्श कर लेता हूँ किन्तु पारिवारिकता के क्षेत्र से बाहर नहीं जा सका हूँ। पारिवारिक जीवन में सामाजिक जीवन का समन्वय करना कभी-कभी बड़ी समस्या हो जाती है।[1] उनकी विचार धारा का सार प्रश्न ? और यथार्थ जीवन और जगत है—"मैं बहुत साम्यवाद में नहीं गया अस्तित्ववाद में स्वतंत्र श्रेय का सिद्धांत मेरे जीवन को क्रियाशील बनाए रखने में सहायक रहा है।[2]

२ अनुसंधान के आधार पर निर्णय—

आचार्य कवि केशवदास के सम्पूर्ण साहित्य का किसी-न-किसी साहित्यिक स्रोत से सम्बन्ध रहा है। लेखक द्वारा निर्देश न होने पर भी संस्कृत के काव्यशास्त्र के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। केशवदास की 'रसिकप्रिया में १ से १३ प्रकाश में शृंगार प्रकरण के अंतर्गत नायक नायिका भेद निरूपण किया गया है जिसका आधार-स्वरूप भानुमिश्र की रसमंजरी तथा विश्वनाथ का साहित्यदर्पण बताया गया है। इसमें नायक-नायिकाओं के प्रकाश्य प्रच्छन्न उपभेद का सम्बन्ध रुद्रट प्रणीत 'काव्यालंकार' और भोजप्रणीत 'शृंगार प्रकाश' से है। कामशास्त्र सम्बन्धी चार प्रकार की नायिकाएँ—पद्मिनी चित्रिणी शंखिनी और हस्तिनी के लक्षणों का निरूपण अकबरप्रणीत शृंगारमंजरी और श्रीकृष्ण कवि के मन्दारमरन्द चम्पू के संस्कृत काव्यशास्त्र के ग्रंथों से बनाया गया है। जहाँ अनुमान करना पड़ता है वहाँ अनुसंधाता ने आधार ग्रंथ शायद शब्द का प्रयोग किया है। कामशास्त्र के ग्रन्थों के बारे में अनुमान करके लिखा है 'कोका पण्डित का 'रतिरहस्य' कल्याणमल्ल का 'अनंगरंग', ज्योतिरीश्वर रचित 'पंचसायक' और हरिहर का 'शृंगारदीपिका' शायद आधार ग्रंथ हैं।[3]

केशवदास ने मुग्धा नायिकाओं के उपभेदों का निरूपण करते हुए नवलवधू नवलअनंगा और लज्जा प्रहारनि के लक्षण शिंगभूपाल कृत रसार्णव सुधाकर में निर्दिष्ट नववयसा नवकामा और सव्रीडसुरत प्रयत्ना के आधार पर दिए हैं ऐसा अनुमान किया है।[4] अन्य प्रसंगों में दम्पति चेष्टा वर्णन का साहित्यदर्पण कामसूत्र और अनंगरंग, प्रथम मिलन स्थान का साहित्यदर्पण और स्वयंदूतत्व, 'बाहर रति', 'अंतर रति' तथा 'अगम्या वर्णन' का कामसूत्र प्रेरणा स्रोत माना गया है।[5]

---

१ मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ, पृ० २
२ वही, पृ० ६
३ वही, पृ० ३०४
४ वही पृ० ३०५
५ वही, पृ० ३०६

इसी प्रकार चितामणि के ग्रथा के अनेक स्रोना पर प्रकाश डाला गया है। आधार, सहायता, अनुवाद, रूपातर, ऋण, ग्रहण अनुकरण, प्रभाव आदि शब्दा द्वारा तथा कही-कही पर तुलना द्वारा इन स्रोता की प्रकृति म सूक्ष्म भेद भी निर्देशित किया गया है—' चितामणि काव्य स्वरूप, शब्द शक्ति, ध्वनि, गुण और दोष प्रकरण के लिए मम्मट के ऋणी हैं। रस अलकार विद्यानाथ प्रणीत प्रतापरुद्रयशाभूषण पर आधृत है। रस प्रकरण म मम्मट, विश्वनाथ और धनजय की तथा अलकार प्रकरण म अप्पय दीक्षित की सहायता ली गई है। परन्तु शास्त्रीय विवेचन सस्कृत आचार्यों सा नही है। अलकार म शाब्दिक अनुवाद के स्थलो को उदधृत करके समानता की ओर हमारा ध्यान खीचा गया है। यह समानता अपहरण, चोरी अथवा समानान्तरता नही कही जायगी इस तो अनुवाद ही कहना होगा। उदाहरण के रूप म चितामणि के कविकुलकल्पतरु म और काव्यप्रकाश म यमक अलकार का लक्षण शब्दश मेल रखता है—

> अरथ होत अथारयक बरनन को जहँ होइ
> फेर श्रवन को जनम कहि बरनत यों सब कोइ॥
>
> —कविकुलकल्पतरु, ३।२१
>
> अर्थे सत्यथभिन्नामा वर्णाना सा पुन श्रुति ।
> यमकम ॥
>
> —काव्यप्रकाश, ६।८३

उन्होने मम्मट का गुण प्रकरण हिन्दी म रूपान्तरित किया है।[१]

भारतेन्दु के नाटको का अध्ययन करने पर तथ्य उपलब्ध हुआ कि उनकी विख्यात नाटिका 'श्री चन्द्रावली' रासलीला के प्रभाव स विशेष प्रभावित है और बीसवी शताब्दी म वियोगी हरि न 'श्री प्रेमयोगिनी नाटिका लिखकर उसी रास लीला का अनुकरण उपस्थित किया।[२]

इस प्रसग म प्रभाव और 'अनुकरण' - इन दो शब्दो के द्वारा स्रोत और साहित्यकार की प्रकृति का भी सकेत दिया गया है। प्रभाव ग्रहण अलक्षित रूप म और लेखक के अनजाने म स्वाभाविक और उसके स्वभाव के अनुरूप होता है जब कि अनुकरण प्रयत्नपूर्वक जान-बूझकर होता है और बहुधा अस्वाभाविक हो जाता है।

निराला की कविता 'राम की शक्तिपूजा' म कथा-वस्तु को लेकर दो आधार बताये गय हैं[३]— देवी भागवत और 'शिव महिम्न स्तोत्र ।

---

१ मेरी दनिकी का एक पष्ठ पृ० ३१४

२ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (सन् १९०० १९२५ ई०) श्रीकृष्णलाल, पृ० २००

३ निराला व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ० १५६

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकार श्री वृन्दावनलाल वर्मा पर वाल्टर स्काट का प्रभाव माना गया है।[1] उनके 'मृगनयनी' में मुख्य कथा का सूत्र ऐतिहासिक है, शेष कलेवर अन्य स्रोतों से सगृहीत है। उसका मुसाहिबजू का स्रोत स्थानीय इतिहास है।[2]

कभी कभी लेखक की घर रहन का आधार उसकी ही अन्य रचना होती है—'नदी के द्वीप' का रूप भाग की टगी धारा पर क्षण भर का प्रसिद्ध कविता 'नदी के द्वीप' पर ही आधृत है।[3]

(ख) दस्तावेजी स्रोत—ऐतिहासिक कार्यों में मुख्य स्रोत यही है। इसके अनुसधानकर्ता को वैज्ञानिक पद्धति पर उसकी खोज अध्ययन और आलोचना के साथ करनी पडती है। वह प्राप्त स्रोतों का अपनी पाद टिप्पणी में परिशिष्ट में या ग्रथ सूची में सकेत देता है। परन्तु साहित्य और रचना के अनुसधान में मात्र ऐतिहासिक प्रणाली काम नहीं देती क्योंकि लेखक समग्र स्रोतों को बड़ी सूझी के साथ अपने काव्य निर्माण में गुम्फित कर लेता है जिसे पृथक करना मुश्किल हो जाता है।

पट्टे-परवाने शिलालेख ताम्रपत्र जैसी सामग्री में किसी रचना या लेखक का परिचय सुरक्षित रह सकता है परन्तु इनके आधार पर कोई साहित्य सृजन की प्रेरणा पावे ऐसा निश्चय नहीं।

ऐतिहासिक घटनाओं के साथ लेखक के व्यक्तित्व कृतित्व का सम्बन्ध अनेक रूपों में प्राप्त होता है। इतना ही नहीं इतिहास में अप्राप्त तथ्यों का सकलन साहित्य द्वारा सम्भव है। परन्तु इसमें शर्त यह है कि लेखक के जीवन-काल में ये घटनाएं घटित होनी चाहिए और किसी-न किसी रूप में लेखक के भाव विचार उनसे प्रभावित होने चाहिए। ऐसी स्थिति में लेखक की रचना दस्तावेज से भी अधिक प्रामाणिक सिद्ध हो सकती है। दस्तावेज के जाली होने का खटका रहता है। साहित्यिक रचना में यदि 'पृथ्वीराज रासो' की भाँति प्रक्षेपों की भरमार न हो तो वह इतिहास के अनुसन्धान में महान उपकारी होता है।

साहित्य निर्माण में दस्तावेजी स्रोत का एक उदाहरण जायसी के पद्मावत में मिलता है— टाड ने पद्मिनी (या पद्मावती) के पति का नाम भीमसी लिखा है पर आइने अकबरीकार ने रत्नसिंह ही लिखा है, जायसी ने यही नाम अपनी प्रेमकथा के लिए चुना है।'[4]

---

१ उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा डा० शशिभूषण सिंहल, पृ० ५
२ वही, पृ० १३३
३ अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्पविधि—सत्यपाल चुघ पृ० १७०
४ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ३१८

भाषा की समृद्धि, प्रचार, व्यवहार और लोकप्रियता का परिचय देने में दस्तावेजी प्रमाण सक्षम होता है। संस्कृत विषयक अनुसंधान उल्लेखनीय है—"संस्कृत का साहित्य सबसे अधिक सम्पन्न था। इस समय संस्कृत ही राजकीय भाषा थी, राज्यकार्य इसी में होता था। शिलालेख, ताम्रपत्र आदि भी प्रायः इसी में लिखे जाते थे, इसके अतिरिक्त यह सम्पूर्ण भारतवर्ष के विद्वानों की भाषा थी, इस कारण भी संस्कृत का प्रचार प्रायः सम्पूर्ण भारत में था।[1]

राजा जयसिंह अपने राज्य-काल में 'लापरवाह' और विलासी था, इस तथ्य को बिहारी ने अपने दोहे में कितने रसात्मक ढंग से बाँध लिया है—

'नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल
अली कली ही सौं बंध्यो आगे कौन हवाल !'[2]

कवि भूषण ने 'शिवराज भूषण' में सं० १७१३ से १७३० तक की शिवाजी के जीवन की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं तथा विजयों, उनके प्रभुत्व, आतंक, यश तथा दान आदि का वर्णन है।[3] उसमें किसी समय का तारीखवार इतिहास या किसी घटना विशेष का क्रमबद्ध वर्णन नहीं है, केवल घटनाओं का उल्लेख मात्र है। यद्यपि 'शिवराज भूषण' एक अलंकार ग्रंथ है, पर अलंकारों की गूढ छानबीन करने के लिए यह नहीं लिखा गया। भूषण का उद्देश्य तो केवल शिवाजी के यश को अजर अमर करना था और उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं तथा अवसरों को उस उज्ज्वल चरित्र को प्रस्तुत करने का साधन-मात्र बनाया है।"[4]

सन् १८५७ ई० का विद्रोह देश के राजनीतिक क्षेत्र में एक महान् ऐतिहासिक घटना होते हुए भी भारतेन्दु कालीन कविता उसके प्रभाव से मुक्त है। इस घटना ने देश की राजनीति को जन्म दिया और हिन्दी प्रदेश में नवीन साहित्यिक चेतना का जन्म हुआ। विद्रोह के पीछे इंग्लैंड और भारत के आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध का करीब एक शताब्दी का इतिहास है। परन्तु इसका कोई स्पष्ट प्रभाव हिन्दी कविता पर नहीं दिखता। भारतेन्दु ने इस पर कुछ नहीं लिखा, मात्र एक प्रसंग में संकेत किया है। बाद में भी जो लिखा गया वह परिमाण में बहुत कम है। हिन्दी साहित्य में इस घटना के वर्णन का अभाव होने के कारणों पर शायद दस्तावेजी अध्ययन सम्यक् प्रकाश डाल सकता है।

कवि सम्राट कविरसराज बाबू बिहारीसिंह, श्री प्रतापनारायण मिश्र, उपाध्याय

---

१ चन्द्रवरदाई और उनका काव्य विपिनविहारी त्रिवेदी, पृ० ४३
२ बिहारी सतसई २
३ शिवराज भूषण, एव पं० राजनारायण शर्मा भूमिका लेखक श्री देवेन्द्र विशारद, पृ० ४५
४ वही, पृ० ४६

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', राधाकृष्णदास कवि दुलारे बजरंग ब्रह्मभट्ट, छत्रपति सिंह, ज्वालाराय और लोक-कवियो की वाणी म इस प्रसग का विवरण फुटकल रूप में प्राप्त होता है।[1] इनमें कवि सेवक दुलारे बजरंग ब्रह्मभट्ट, छत्रपति सिंह तथा ज्वालाराय राज्यकुलो से सम्बन्धित होने के कारण इस विषय म कुछ तथ्यात्मक परिचय प्राप्त किया जा सकता है और वह मात्र दस्तावेजो अध्ययन या परीक्षण से सम्भव है।

भूषण तथा इन सब कवियो ने अपनी आँखो देखा हाल लिखा है और लोक काव्य म भी सीधा प्रभाव लक्षित होता है। इस प्रकार के स्रोत का अध्ययन समथन की दृष्टि से दस्तावेज की अपेक्षा रख सकता है परन्तु काव्य का प्रेरणा स्रोत तो प्रथम स्रोत के स्वरूप का ही माना जायगा। आश्रित कवियो क जीवन का कुछ परिचय दस्तावेजो से मिलता है जसे कि विद्यापति केशव बिहारी, देव आदि।

ऐतिहासिक, उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी और जयशंकर प्रसाद ने इस स्रोत का उपयोग अपनी कथा वस्तु म अवश्य किया है—"शिलालेखो, ताम्रपटटो, महावश मुद्राराक्षस वायुपुराण और कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र से अपनी कथावस्तु की सामग्री का चयन कर प्रसाद ने चन्द्रगुप्त के जीवन पर नवीन प्रकाश डाला।[2]

(ग) **विवरणात्मक स्रोत**—कवि व्यक्तित्व तथा कृतित्व के विविध पहलुओ म से किसी एक को लेकर—कथावस्तु चरित्र वातावरण, वणन भाषाशली शिल्प विचार, भाव आदि के विविध स्रोतो का अनुसन्धान करके लेखक के व्यक्तित्व तथा कृतित्व से उनका सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इस स्रोत की विशेषता है जानकारी देनेवाले विवरणो की खोज। यह व्याख्यात्मक की अपेक्षा तथ्यात्मक अधिक होता है और व्याख्या के लिए पष्ठभूमि तयार कर देता है।

'प्रेमचन्द के नारी पात्र पर अनुसन्धान न प्रारम्भ म प्रेमचन्द के नारी पात्रो की सामाजिक पष्ठभूमि का अध्ययन किया और जसे कथा सामग्री का स्रोत के रूप मे ग्रहण होता है वसे प्रेमचन्द द्वारा किया गया प्रयत्न ध्यान म रख कर निष्कर्ष दिया—' स्थूलत प्रेमचन्द युगीन नारी को दो वर्गों म विभाजित किया जा सकता है—ग्रामीण नारी और नागरिक नारी। यह वर्गीकरण इसलिए आवश्यक हो गया है कि तत्कालीन सुधार आन्दोलनो एव युग की बदलती हुई करवटो के परिणामस्वरूप जो नारी चेतना उदबुद्ध हो रही थी उसका क्षत्र प्राय नगरो तक ही सीमित था। एक म बहुत कुछ प्राचीन थी तो दूसरे म बहुत कुछ अर्वाचीन और इस दष्टि से

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य (सन १८५०-१९०० ई०) डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पृ० २८० २८६

२ प्रसाद की दार्शनिक चेतना, डा० चक्रवर्ती पृ० ६५७

दानो वर्गों की विशेषताएँ सस्कारा, परिस्थितिया एव प्रेरणा-स्रोतो के अनुसार पथक पथक थी।''[1]

प्रेमचन्दजी के जीवन म इन पात्रो क आधार का स्वरुप वास्तविक जीवन की अनेक नारिया रही हागी जिन्हनि लेखक के चित पर अपन चरित्र का प्रभाव छोडा हागा, कुछ निजी सम्बन्ध की स्त्रिया के गुण-स्वभाव का प्रभाव भी होगा और यथाय जीवन की घटनाग्रो स प्रेरित हो कर समस्याग्रा को अपन साहित्य म स्थान दिया होगा। अनुसन्धाता शायद इतनी हद तक क तथ्या का सकलन नही कर पाया है। यह मूतकालीन बातें हान के कारण ऐसे अध्ययन की इच्छा और प्रयत्न के रहते भी प्राय निराशा और निष्फलता ही हाथ लगन हैं और तब अनुसन्धाता लेखक की युगीन परिस्थितियो का अध्ययन लखक के जीवन और साहित्य के सदभ म करके सन्तोष मान लेता है। इस प्रबन्ध के अनुसन्धाता ने यही किया है—''प्रमचन्द काल म सामाजिक सुधार सम्बन्धी सभी आन्दोलन स्त्री-सुधार पर विशेष बल दे रहे थ।''[2] आग चल कर अनुसन्धाता ने प्रेमचन्द के विशिष्ट नारी-पात्रा का विभाजन पाच वर्गों म किया है।[3] इनका सम्बन्ध मानव की दिनचर्या से अधिक है और आशिक रुप से अधिक तत्कालीन राजनीति म—

१ प्रेमिका—प्रेमा विरजन, साफिया, मनोरमा रूकिया मारा लज्जा, लला, चन्दा, प्रेमा सिनिया जनी, मालती माधवी।

२ परिणीता—सुमित्रा, सुमन, निर्मलावती विलासी, कुलसुम, जालपा रतन, निमला मुन्नी, धनिया गायित्री दवी, रानी सारधा, उमा, लौंगी।

३ रानी जाह्नवी, रालानी करणा।

४ सुखदा, मदुला।

५ गायत्री, कलासी प्यारी।

'समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द म समस्या के मूल स्रोत और उनके स्वरुप का अध्ययन तथा उनके प्रति लेखक के दृष्टिकोण तथा समाधान की खोज करन के लिए अनुसन्धाता ने मुख्यत पाँच बाता पर विचार किया।[4]

(१) प्रेमचन्द के समय का भारत

(२) प्रेमचन्द युग म मध्यवग की स्थिति

(३) प्रेमचन्द की साहित्य सम्बन्धी मान्यताएँ

---

१ ओम अवस्थी, प० १६

२ वही, प० २१

३ वही प० ५६

४ डा० महेन्द्र भटनागर

(४) प्रेमचन्द जीवन व्यथा
(५) मानवतावादी प्रेमचन्द

समस्याओं के क्षेत्र और स्वरूप भारतीय स्वाधीनता रियासता और दशी नरेशा, साम्प्रदायिक शक्षणिक औद्योगिक ग्रामीण जीवन अछूत वग वश्या वग, विधवा, ववाहिक और पारिवारिक जीवन के पहलू।

प्रेमचन्द उपन्यास और शिल्प' म अनुसंधाता ने प्रथम खण्ड म 'हिन्दी उपन्यास परम्परा और प्रेमचन्द', द्वितीय खण्ड म ग्यारह उपन्यासा का अध्ययन' तथा तृतीय खण्ड म प्रेमचन्द का शिल्प विधान पर विचार किया है। शिल्प विधान के अन्तगत कथा वस्तु चरित्र चित्रण कथोपकथन, देशकाल भाषा शली और उद्देश्य की चर्चा करके लेखक की त्रुटिया और असावधानियो पर भी आलोचना की है। स्रोत की दृष्टि से अनुसंधाता लिखते हैं कि प्रेमचन्द ने कथा वस्तु की सामग्री जीवन से ली थी उनका आधार पारिवारिक सामाजिक और राजनीतिक जीवन था और अपनी कल्पना तथा अनुभवो स सहायता ली थी। लेखक म पूववर्ती धारा के प्रभाव से कुछ दोष भी लक्षित होते हैं। उदाहरण उपन्यास की कथावस्तु मे आकस्मिकता, अलौकिकता और अतिशयोक्ति को जोडना।[1]

बलदेवकृष्ण शास्त्री ने अपने प्रेमचन्द और उनका गोदान ग्रथ क पूव भाग म साहित्यिक व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए उसमे समकालीन युग का प्रतिबिम्ब देखा गया है तथा उत्तर भाग मे गोदान' के अध्ययन के सन्दभ म यथार्थवाद और प्रगति शील तत्वों की खोज और चर्चा की गई है। तात्पय यह कि प्रेमचन्द अपन युग से प्रभावित है। लेखक के उद्देश्य का स्रोत वही है जो उनके व्यक्तित्व निर्माण का कथा, चरित्र और भाषा शली का है।[2]

ईमानदार साहित्यकार स्वय लोकहिताय साहित्य निर्माण करता है और चाहता है यह आदश साहित्य जगत म व्यावहारिक बने। इस आदश से प्रेरित हो कर वह अपने साहित्य म प्रसगानुकूल चरित्रो के माध्यम से सिद्धान्तो की स्थापना वास्तविक जीवन म करता है। इसकी वस्तु का स्रोत व्यावहारिक जीवन और जगत होता है। साहित्य मे इसके फलस्वरूप आदश यथाथ अथवा आदर्शोन्मुख यथाथ वाद का अवतारण होता है। प्रो० नरेन्द्र कोहली ने इस सत्य का अनुभव करके बताया—

सजनात्मक साहित्यकार अधिक व्यावहारिक होता है। वह सरस साहित्य तथा शास्त्र के सबध म नवीन रक्त का सचार करता है तथा नवीन सिद्धान्तो के निमाण एव प्राचीन सिद्धान्तो म परिवतन के लिए आधार प्रस्तुत करता है।'[3]

---

१ श्री हरस्वरूप माथुर, पृ० १७६
२ वही पृ० ४०५ ४१४
३ प्रेमचन्द्र के साहित्य-सिद्धान्त प्रा० नरेन्द्र कोहली

सांसारिक जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण से जीवन के परस्पर विरोधी पक्षों म संतुलन, समन्वय और समादिता आती है। और वही साहित्यकार की वाणी से व्यक्त होता है। परन्तु साहित्यकार आंतरिक अंतद्वंद्व से पीडित होने पर अपने साहित्य म या जीवन दशा म वैसा समन्वय लाने म असमर्थ रहता है। उसके साहित्य का मूल स्रोत, कथावस्तु और चरित्र घटना और उद्देश्य भाषा और शैली का—संघर्षशील जीवन हार जीत दुःख दद आदि से निर्मित अन्तद्वन्द्व हो जाता है। यह स्रोत स्वरूप मे अत्यंत सूक्ष्म है और सार बाह्य तथ्यों की व्याख्या अंतद्वन्द्व के रूप मे ही संगत होती है। निराला व्यक्तित्व और कृतित्व' म बताया गया है—"कवि के कथानको म चरित्रों का निर्माण कवि के व्यक्तित्व एवं स्वभाव के अनुकूल ही होता है। निराला का जीवन भी घोर निराशा और भयंकर अन्तद्वन्द्व का मन्द्र रहा। किंतु अपनी पुरुषोचित अभिनता ही उन्होंने राम के अंतद्व [illegible] के बाद उनम प्रदर्शित की।"[1]

क्रांतिकारी कवि निराला के अनुसंधाता लिखते हैं—"इनके संघर्षशील जीवन की हार जीत दुःख दद आदि की झाँकी इनकी अनेक रचनाओं म देखी जा सकती है। इनकी तीन प्रौढ रचनाओं म विषाद और पराजय का स्वर अवश्य सुनाई पडता है किन्तु उनम भी कवि युद्ध से विमुख नहीं हुआ है। धय ने उसका साथ दिया।"[2]

साहित्य म व्यक्तिवाद की अवतारणा से कथावस्तु चरित्र घटना और कभी कभी उद्देश्य भी विविधता और विवरण से विशेष समृद्ध होता है। 'हिन्दी के समस्या नाटक' के अनुसंधाता के मत म— समस्या नाटकों के पात्र किसी भी परिस्थिति म सामाजिक और बौद्धिक शून्यक के प्राणी नहीं होते—वे सम सामयिक जीवन के प्रति शय प्रबुद्ध सजीव और गभीर सामाजिक होते है। वे अपने चरित्र और प्रारब्ध पर सामाजिक और आर्थिक परिवेश के दबाव के प्रति अत्यधिक सचेष्ट भी होते हैं, यही कारण है कि उनके द्वारा अभिव्यक्त विचार उधार लाये हुए म नहीं बल्कि वैयक्तिक अनुभवों और धारणाओं से उन्मज्जित हुए म लगते है।[3]

(घ) संयुक्त स्रोत—एक रचना का तथा एक कवि के व्यक्तित्व और संपूर्ण कृतित्व का संबंध अनेक स्रोतों से होता है। इस का अनुमान क्लिष्ट होते हुए भी अत्यंत रसप्रद होता है। मुख्य स्रोत को खोजने म अनुसंधाता के निर्णय का और रचना तथा व्यक्तित्व का उस स्रोत से संबंध का विशेष महत्त्व है। जिस प्रकार एक मनोविज्ञान वेत्ता तटस्थता के साथ मानव मन की क्रिया का अध्ययन करता है वैसे ही अनुसंधाता को अपने और लेखक के व्यक्तित्व के बीच तथा अपने और रचना के बीच काफी अंतर

१ सं० डा० प्रेमनारायण टंडन, पृ० ११६

२ डॉ० बच्चनसिंह पृ० २०२

३ डा० विनयकुमार पृ० १३१

रखना आवश्यक है। इस प्रकार के अध्ययन से रचनात्मक कल्पना के रहस्यों का उद्घाटन संभव होता है और अच्छे लेखकों को मार्गदर्शन मिलता है। वास्तव में लेखक की रचना क्रिया आंतरिक है और अनुभव ही उसकी ज्ञान संपत्ति और मानस प्रक्रिया का रूप धारण कर लेता है। फिर भी साहित्य सृजन में इस मार्गदर्शन से गलतियों और सुधार परिवर्तन के लिए कम अवकाश रहता है। आलोचकों को भी इस अध्ययन से बड़ी मदद मिलती है और अभिप्रशंसक का कार्य प्रशस्त हो जाता है। अंत में रचना से संबंधित समग्र स्रोतों की जानकारी प्राप्त होने पर स्वतंत्र रूप से रचना का अध्ययन हो पाता है और उसकी सच्ची योग्यता तथा लेखक की महानता का सही मूल्यांकन किया जा सकता है।

एक लेखक की एक रचना तथा उसके व्यक्तित्व और संपूर्ण कृतित्व के प्रत्येक तत्त्व का स्रोत एक दूसरे में भिन्न होता है तब एक साथ अनेक स्रोतों का अध्ययन करना पड़ता है। इसके अभाव में एक कृति का भी सम्यक और सांगोपांग आकलन नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में संपूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में तो यह अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। यथा मैथिलीशरण गुप्त के साकेत का यदि अध्ययन करना हो तो उसकी कथा वस्तु का मूल स्रोत वाल्मीकि रामायण मानना होगा। परन्तु उस पर अध्यात्म रामायण और रामचरितमानस का प्रभाव भी है। उर्मिला का चरित्र चित्रण करने में उन्होंने कवीन्द्र रवीन्द्र की रचना काव्य की उपेक्षिता और महावीर प्रसाद द्विवेदी की कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता से प्रेरणा प्राप्त की है। कैकेयी का चरित्र चित्रण मनोविज्ञान के आधार पर मौलिक है। सीता का चरित्र आधुनिकता का अंगीकार किये हुए है। इसमें देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ तथा आजादी के आन्दोलन का प्रभाव लक्षित होता है। महाकाव्य की प्राचीन शैली का निर्वाह करते हुए भी उन्होंने नवम सर्ग में विविध छन्दों में नवीन गीति-नाट्यों की सृष्टि की है। भाव भाषा अलंकार और रस में कवि का प्रयत्न प्राचीन-नवीन का समन्वय किये है। उनके 'जयद्रथ वध' में गुप्तजी ने परम्परागत प्रचलित काव्यरूप में अपनी मौलिक प्रतिभा का सम्मिश्रण कर अर्थात् अनेक विधि साधनों के उपयुक्त तत्त्वों का ऐसा समन्वय किया गया कि एक अपूर्व काव्य की सृष्टि हो गई। उन्होंने 'रामचरित मानस' में प्रयुक्त हरिगीतिका छन्द का सरस साहित्यिक और ओजपूर्ण खड़ीबोली में सफलतापूर्वक प्रयोग किया। कथानक के लिए उन्होंने महाभारत का एक अंश ही प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण प्रसंग लिया। फिर युद्धभूमि का चित्रमय चित्रण करुण रस का अबाध प्रवाह और भक्तिभावना का सुन्दर व्यंजना ने पाठकों का हृदय मोह लिया और पन्द्रह वर्ष के भीतर ही उसका चौदहवाँ संस्करण प्रकट हुआ। परन्तु इसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग इस की भाषा था जो साहित्यिक होती हुई भी अद्भुत गतिपूर्ण और लयमयुक्त थी।[१]

---

१ आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास (सन् १९०० १९२५ ई०) डा० श्रीकृष्ण लाल पृ० १०२ १०३

मथिलीशरण गुप्त के "व्यक्तित्व और कृतित्व' विषयक अनुसंधान मे संयुक्त स्रोतो के अध्ययन के फलस्वरूप डा० कमलाकान्त पाठक ने अनेक तथ्यो पर प्रकाश डाला है—"गुप्तजी की नाट्य रचनाएँ द्विवेदी युगीन नाट्य शिल्प को उदाहृत करती हैं। 'लीला' पद्य-नाट्य पर रामलीला आदि लोक-नाट्यो का प्रभाव है। तिलोत्तमा' और 'चन्द्रहास' संस्कृत की नाट्य-पद्धति म रची गद्य नाट्य कृतियाँ हैं और हैं पाठ्य-नाटक ही। 'अनघ' म चरित्र चित्रण को लक्ष्य बनाया गया था और संस्कृत के नाट्य शिल्प से स्वतंत्रता ली गई थी, पर वह पद्य-नाट्य है और अभिनेय भी। आशय यह है कि गुप्तजी का नाट्य साहित्य सोद्देश्य पाठ्य एवं वस्तुनिष्ठ है चरित्र प्रधान अथवा भाव-व्यंजना प्रधान नही। इस प्रवृत्ति का गुप्तजी के काव्य पर यह प्रभाव पडा कि उनके प्रबंध-काव्यो म भी नाट्य गुणो का प्रवेश हो सका चरित्र चित्रण तथा संवाद-योजना म अभिनयात्मक शैली अपनाई जा सकी और वस्तु विन्यास म प्रसंगो का चयन दृश्यात्मक शैली के अनुसार किया जा सका।' [1]

साकेत के निर्माण म प्रयुक्त स्रोतो का लेखक ने व्यवस्थित रूप म वर्णन किया है। कथा-वस्तु और कवि के जीवन दर्शन के स्रोत का विश्लेषण करते हुए वे लिखते हैं—' सुप्रसिद्ध कथावस्तु को कवि ने ग्रहण तो किया ही पर ऊर्मिला को नायिका बनाकर उसने कथा के स्वरूप को रूपान्तरित कर दिया। कवि ने मानस की कथा को अपना मूलाधार मानकर उसम ऊर्मिला को प्रधानता प्रदान की है।' [2] आगे साकेत के आधार ग्रन्थो के दो विभाग हैं[3] (१) कथा-वस्तु के मूल स्रोत और (२) जीवन दर्शन के आधार ग्रंथ।

साकेत की कथा-वस्तु के आधार ग्रन्थ—

साकेत	सर्ग	४	वाल्मीकि रामायण (आदिकाव्य)
	"	६	तुलसीदास —रामचरितमानस
"	"	१०	भास—स्वप्नवासवदत्ता और प्रतिमा (नाटक)
"	"	६	भवभूति—उत्तररामचरित
"	"	१०	कालिदास—रघुवंश
"	"	११	व्यास—महाभारत

इनम से भास भवभूति और व्यास के ग्रंथो मे कवि के जीवन दर्शन को आधार प्राप्त हुआ है, प्रत्यक्ष प्रभाव नही है। कवि को कालिदास का काव्य तथा तुलसी की काव्य-कला और भक्ति भावना प्रिय है। गुप्तजी के शब्दो म—

---

१ मथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य, पृ० १६७

२ वही, पृ० ४०४

३ वही, पृ० ४०५ ४१०

'तुलसी के चरणों पर मैं सिर रखता हूँ और कालिदास का सिर पर रखता हूँ।' इस रचना में 'मानस और अध्यात्म रामायण' भी प्रत्यक्ष आधार है। कवि ने महाभारत का प्रभूत प्रभाव ग्रहण किया है, यह कारणों और उदाहरणों सहित अनुसंधाता प्रमाणित करते हैं—

कारण—

(१) एकादश सर्ग वर्णनात्मक है और उसमें युद्धादि का वर्णन प्रधान है, अतएव महाभारत के प्रणेता व्यास की स्तुति की गई है।

(२) [illegible] में कवि के द्वारा हनुमान का संकेत भी है जो राम-कथा के मुख्य वक्ता हैं।

(३) व्यास वेद-पुराण के विधाता हैं और धर्म, नीति तथा इतिहास के प्रवक्ता।

फिर तथ्य, तथ्याख्यान और प्रमाण के बाद निष्कर्ष देकर स्थापित किया गया है—'गुप्तजी ने धर्म के ग्रंथ से शास्त्र विषय लिए, अपने जीवन दर्शन का निर्माण किया तथा भावुकतामयी नैतिकता को काव्य प्रवृत्ति के रूप में ग्रहण किया।'[1]

काव्य में मत ज्ञान परम्परा से, मूलकाल से और ग्रंथों से ही नहीं लिए गये, युग और वातावरण से प्राप्त नवीन तत्वों का उनमें समन्वय भी किया गया, जो मात्र कवि की प्रतिभा का परिचायक है— नवम सर्ग के प्रगीत वस्तुमयी गीत पद्धति में नहीं रचे गये, उनमें नवीन प्रगीतियों का शिल्प व्यवहृत हुआ। प्रायः सभी गीत आत्माभिनिवेशमयी रचना के उदाहरण हैं। पर उनमें दो भावधाराओं का संगम हुआ है। विरहिणी नायिका का सर्वांगसम्पूर्ण चित्र रीतिकाल के शृंगारी कवियों ने तैयार किया था। ऊर्मिला का चित्र वही नहीं है पर ढाँचा वही है। साँचा पुराना है और कल्पना [illegible] गया। ऊर्मिला का चित्र नये युग की देन है। उसमें अन्तर स्थिति का प्राधान्य, विरह ताप अथवा दूरी सम्बन्धी ऊहाओं की न्यूनता, स्थूल सौंदर्य भावना का परित्याग तथा सूक्ष्म आत्मानुभूतिमयी व्यंजना आदि नवीन काव्य गुण सन्निहित हैं।'[2]

साकेत की भाव-व्यंजना का मूल स्रोत कवि के जीवन और व्यक्तित्व से सम्बन्धित है—'साकेत विचार प्रधान या दार्शनिक रचना नहीं है, वह भावनाशील काव्य है। कवि की भावुकता मार्मिक स्थलों के चयन तथा उसके व्यापार शोधन में परिलक्षित होती है। गुप्तजी ने अतिरिक्त भावुकता प्रकट की है जो उनकी पारिवारिक क्षेत्र-सीमा का परिणाम है, पर उसका एक कारण और है। स्वयं गुप्तजी का कथन

१　मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य, पृ० ४१३

२　वही, 'नवीन और प्राचीन उपकरण', पृ० ५६१

है कि व उत्तेजना अथवा आवेश की स्थिति म ही प्राय काव्य रचना करते है।''[1]

साकेत के चरित्र चित्रण म एक महत्त्वपूर्ण स्रोत कवि के आदर्शों का अनुसधाता न बताया है।[2] यह प्रकारान्तर स प्रेरणा के स्रोत म भी गिनाया जा सकता है और इसका सम्बध कवि क आतरिक जगत से होने के कारण मौलिकता म भी इस स्थान दिया जा सकता है। कवि की भाषा के मूल स्रोत पर प्रकाश डालते हुए डा० उमाकान्त लिखते हैं—'हमार कवि न भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा प्रवर्तित श्रीधर पाठक द्वारा अनुमोदित तथा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा परिष्कृत खडीबोली का काव्य भाषा क रूप म ग्रहण किया जिसका कोश मुख्यत सस्कृत शब्दकोश ही है। अवसरानुकूल व्रज उर्दू और अग्रजी शब्द भी गहीत हुए हैं।''[3]

इस अनुसधाता ने भी डा० कमलाकान्त के प्राचीन नवीन सम वय' की स्थापना का स्वीकार किया है।[4] इसको सांस्कृतिक स्रोत भी कहा जायगा क्योंकि परम्पराओ मे सस्कृति अभियक्त होती है। नवीनता का समन्वयात्मक दृष्टि स प्रयोग मौलिकता के अन्तगत रखन म कोई आपत्ति नहा हो सकती।

इन दो अनुसधाताओ की तरह दानबहादुर पाठक 'वर ने भी मथिलीशरण गुप्त क सम्पूर्ण साहित्य का अनुसधानात्मक अ ययन कर उसके समग्र स्रोतो पर प्रकाश डाला है। गुप्तजी के प्राचीन-नवीन समन्वयात्मक दृष्टिकोण को वे भी मानते है। उन्होने अलकार विधान, छन्द योजना, रस योजना प्रकृति चित्रण चरित्र चित्रण प्रबध शिल्प क अतिरिक्त तुलसीदासजी और गुप्तजी की तुलनात्मक चर्चा भी की है।

अलकार विधान—' साकेत म गुप्तजी के कवि जीवन का पूर्ण वभव मिलता है। अत उसका कलेवर अलकृत है—उसका काय श्रीमडित। साकेत की रचना दीर्घ काल म हुई है, अतएव इस बीच हिन्दी काव्य म अलकारो की जितनी विविधता एव नव नवनता क साथ ग्रहण किया गया उन सबका किसी न किसी अश म साकेत पर प्रभाव अवश्य पडा है।'[5]

छद-योजना—साकेत की छद योजना प्रौढ है। उसका चयन प्रसग के अनुरूप किया गया है। मात्रिक और वर्णिक दोनो प्रकार के छन्दो का व्यवहार हुआ है। साकेत मे कवि न हिन्दी म साधारणत प्रचलित लगभग सभी छदो को अपनाया है। विरह की कोमल भावनाओ के लिए गीतो का प्रयोग किया है।[6]

---

१ मथिलीशरण गुप्त 'नवीन और प्राचीन उपकरण, पृ० ४६४
२ वही, पृ० ४४३-४४४
३ मथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय सस्कृति के आख्याता, पृ० २९८ २९९
४ वही पृ० ४६४
५ मथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य—दानबहादुर पाठक 'वर, पृ० २६१
६ वही, पृ० २६९-२७१

रस-योजना—'वह उच्चातुच्च कोटि का भावुक है। काव्य म रस की स्थिति और महत्त्व का उस पूण परिज्ञान है। इसलिये साकेत म उसने यथासम्भव सभी रसो की अवतारणा बडी सावधानी से की है। उस जीवन के ममस्थलो की पहचान है और मानव मन की गहराई म उतरने की क्षमता भी।[1]

प्रकृति चित्रण— साकेत मानवीय चरित्र प्रधान काय है, इसलिए प्रकृति चित्रण की दृष्टि से समृद्ध नही। प्रकृति के कतिपय रूपो का जो कुछ भी प्रकन हुआ है वह कवि के प्रकृति प्रम का परिचायक न होकर मानव प्रवृत्तियो का उदघाटक अधिक है।[2]

चरित्र चित्रण— साकेत चरित्र प्रधान रचना है इसीलिए उसका कथा पक्ष दुबल हो गया है। साकेत की रचना भक्ति भावना के साथ साथ कुछ पात्रो के चरित्र का विशेष रूप से प्रकाश म लाने के उद्देश्य स हुई है। इन पात्रा म ऊर्मिला और ककेयी का नाम शीष पर है।[3]

प्रबन्ध शिल्प—अनुसधाता न सस्कत के शास्त्रीय लक्षणो तथा आधुनिकयुगीन महाकाव्य क लक्षणा की कसौटी पर साकेत को परखन पर अनुभव किया कि वह पूणतया किसी एक या समन्वित रूप से इन दोना का आधार ग्रहण नही कर पाया है। प्राचीन नवीन स्रोता की सहायता लत हुए भी कवि न अपनी निजी धारणाओ के आधार पर इसकी रचना की है। फलस्वरूप साकेत महाकाव्य न होकर महान काव्य बन गया है।[4]

सयुक्त स्रोता के आधार पर हिन्दी म अनेक प्रबन्ध लिखे गये हैं— गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त जीवन और साहित्य,[4] प० प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य,[5] समीक्षक प्रवर श्री रामचन्द्र शुक्ल[6] आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी व्यक्तित्व एव साहित्य[8] आचाय नन्ददुलार वाजपेयी व्यक्ति और साहित्य[9] हिन्दी साहित्य का नया क्षितिज (प्रमनारायण टडन)[1] निराला व्यक्तित्व और

---

१ मथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य—दात्तबहादुर पाठक वर प० २७८
२ वही, प० २८३
३ वही, प० २८४
४ वही प० ३२२
५ डा० नरयनसिंह
६ डा० सुरेशचन्द्र गुप्त
७ श्री गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश
८ डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त
९ स० डॉ० रामाधार शर्मा
१०: श्री राजेन्द्रमोहन अग्रवाल

कतित्व ' आदि ।

इस स्रोत म अध्ययन म निम्नलिखित बाता म अनुसधाता का परिचित होना आवश्यक है—

१ लेखक का पुस्तक-सग्रह—य पुस्तकें लेखक न खरीदी हो, किसी स मांगी हो या उपहार म प्राप्त हुई हो। लेखक की डायरी पत्र डॉक्यूमेंट पुस्तका का खरीद की सूचना या विवरण, लेखक के पुस्तकालय का केटलाग।

२ पत्र-पत्रिकाए जिन्ह लेखक पढ़न के लिए प्राप्त करता है अथवा अन्यत्र जाकर पढ़ता है उनकी व्यवस्थित सूची न हो तो अनुसधाता खोज करके तयार करे।

३ पुस्तकें जो लेखक द्वारा पढ़ी गई हो चाहे व किसी भी व्यक्ति या सस्था की हो।

४ पुस्तकें जो लेखक द्वारा पढ़ जान की सम्भावना हो।

५ पुस्तकें जो लेखक द्वारा पढ़े जान का अनुमान हो।

६ लेखक न कौन सी पुस्तक कब पढ़ी और बाद म कौन सी रचना लिखी, इस जानन की दृष्टि से लेखक के जीवन का अध्ययन।

७ लेखक द्वारा प्रभाव-स्वीकृति या तद्विषयक सकेत।

८ लेखक क परिवार, मित्र मडल आदर्श भाव और वातावरण का परिचय।

९ जिस युग म लेखक का जीवन बीता हो उसका और पूर्वकालीन तथा समकालीन साहित्यकारो की रचनाओं का परिचय।

१० लेखक के समय म प्रचलित परम्पराओं का तात्कालिक अध्ययन तथा युगीन परिस्थितियो की जानकारी। उदाहरण—धार्मिक सामाजिक आर्थिक राजनतिक आदि।

११ विदेशी साहित्य स लेखक का सम्पर्क हो तो उसका परिचय।

१२ लेखक वर्तमान म जीवित न हो तो उसका समकालीन तथा परवर्ती साहित्य और साहित्यकार पर उसका प्रभाव। यह न लेखक के स्रोत का अध्ययन होगा परन्तु अमुक लेखक आगे किस रूप म स्रोत का रूप धारण करता है इसकी रसप्रद जानकारी अवश्य देगा और स्रोत की अविरल परम्परा प्रमाणित होगी।

ऊपर निर्दिष्ट प्रबन्धो म भले ही इन सबका निर्वाह न मिले पर महत्त्वपूर्ण अनेक तथ्यो का इनम सकलित कर उनकी व्याख्या की गई है जिससे लेखक के व्यक्तित्व और कतित्व का मूल्याकन करन म और समग्रता के दशन म अनुसधाता ने सरलता का अनुभव किया है। यथा अनुसधाता राजेन्द्रमोहन अग्रवाल ने लेखक

---

१ स० डा० प्रेमनारायण टडन

प्रतापनारायण टडन का अध्ययन करके बताया—'लेखक की साहित्य म बाल्यकाल से ही रुचि थी। शन शन इसका विकास हुआ। समय बीतते बीतते देशी विदेशी साहित्यकारों की रचनाओं से उनका परिचय हुआ। श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियां उनके मन म एक विचित्र अनुभूति जाग्रत करती थी। साहित्य सजना की प्रेरणा म लेखक का कोई एक बिंदु न होकर जीवन के बहुरूपी पक्ष थे। सामाजिक विडम्बना ने उसे झकझोर दिया था, दैनिक सामान्य जीवन म अनेक अप्रत्याशित परिणतियो ने नई प्रेरणा दी और उन पर लिखने को विवश किया।

लेखक को प्रेरणा प्राप्ति दो प्रकार से हुई—क्रियात्मक रूप से और प्रतिक्रियात्मक रूप से। क्रियात्मक रूप से प्राप्त होने वाली प्रेरणा लेखक के स्वभाव और विचार रुचि सस्कार शिक्षा दीक्षा आदि के अनुकूल थी। लेखक के व्यक्तित्व पर अनुकूल प्रभाव डालने वाला म मुख्यत भारतेन्दु मथिलीशरण गुप्त महादेवी वर्मा और सुमित्रानन्दन पत है तथा प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले निराला, अज्ञेय प्रेमचद तथा जैनेन्द्र है।'[1]

अनुसधाता ने इन प्रेरणा स्रोतो का उल्लेख करके लिखा है—'लेखक का साहित्यिक जीवन गहन साधना और कठिन तपश्चर्या का परिणाम है। अनवरत साहित्य-सागर का मन्थन करके जिन भाव रत्नो को निकाला है उनमे अपनी अनोखी चमक है निराली आभा है यही आभा जो स्पष्ट ढग की अपनी है। फिर भी उसे पूर्णतया प्रभावहीन नही कहा जा सकता। यदि भी पति आसपास के वातावरण पुस्तक प्रणयन से उद्भूत विचारो के प्रभाव से अछूता नही बचता न्यूनाधिक प्रभाव पड ही जाता है अन्यथा सभ्यता शिष्टता शब्द ही मिट जायें। डॉ० प्रतापनारायण टडन भी इसका अपवाद नहीं हैं। उन्होने युग चेतना का सम्पादन किया विदेश भ्रमण किया देशी विदेशी साहित्यकारों के सम्पर्क म आये और उनके साहित्य का अध्ययन किया। प्रभाव के विदेशी स्रोत म स्टीफन विंग, शक्सपियर एण्डरू लग अलबर्ट मारविया गुस्ताव फ्लाबयर तथा इलियट हैं।'[2]

अनुसधाता ने प्रभाव स्वीकृति विषयक लेखक की टिप्पणी को अपने प्रबन्ध म उद्धत कर अपनी स्थापना का समर्थन किया है—'मै इन कथाकारो की रचनाओ की प्रशसा करता हूँ।[3]—इनकी रचनाओ म गहन विचार एव गुत्थियो के रूप म गुथे रहते हैं और भाषा भाव तथा शिल्प का आश्चर्यजनक सगठन रहता है। किसी बडी बात को कहने के लिए उनके हो बडे धरातल का निर्माण करते हैं और अपनी

---

१ मथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य—मानबहादुर पाण्डेय वर्मा' पृ० ५०
२ वही पृ० ५०
३ वही, पृ० ५१

इच्छित बात को कहने के लिए वातावरण तैयार करके ही उसे कहते हैं, फल यह होता है कि उसका प्रभाव पाठक पर सफल पडता है एव पाठक उस बात पर, कहने के ढग पर मुग्ध हो जाता है। इतना होने हुए भी इनकी खूबी यह है कि कहीं कोई शिथिलता नहीं आती और पठन म आकर्षण पूर्ववत् रहता है—गतिरोध नहीं होता। इस उद्धरण म लेखक न प्रभाव का जिस रूप म ग्रहण किया उसका यथातथ्य वर्णन है। इस लेखक पर भारतीय साहित्य का प्रभाव "आदिकवि वाल्मीकि महर्षि वेदव्यास कालिदास बाणभट्ट तुलसीदास रवीन्द्रनाथ शरतचन्द्र तथा प्रेमचन्द द्वारा पडा। आधुनिक भारतीय साहित्यकारो म "जैनेन्द्र, अमृतलाल नागर भगवतीचरण वर्मा यशपाल अज्ञेय तथा डा० देवराज' का उन पर प्रभाव लक्षित होता है।[1] इसके अतिरिक्त लेखक न स्वय सामयिक प्रभाव की प्रक्रिया का निजी अनुभव वर्णित किया है।[2]

इन प्रभावो की चर्चा करते हुए अनुसधाता न लेखक क साहित्य म उपलब्ध समग्रता को देखकर अनुभव किया कि प्रभाव दृष्टि स देशी विदेशी का आनुपातिक या तुलनात्मक स्तर और स्थान निर्धारण करना कठिन है।[3]

(ग) **मौखिक और अनिश्चित स्रोत**—रचना के सदर्भ म महत्त्वपूर्ण सपूर्ण साहित्य का इस स्थान की श्रेणी म रखा जा सकता है। इसके अतर्गत पत्र-पत्रिकाओ द्वारा और तत्सम्बन्धी सपूर्ण शास्त्रो द्वारा जानकारी पाने का प्रयत्न किया जाता है। इस स्रोत का कोई निश्चित रूप नहीं हो सकता। अनेक अकल्पनीय सदर्भ प्रकाश म आना सभव है। अनुसधाता को रचना स सबधित युग का सम्यक् अध्ययन आवश्यक सदर्भो के आधार पर करना चाहिए जिससे वह निश्चित और सतोषप्रद परिणाम प्राप्त कर सके। परिणाम पहले से निर्णीत नहीं हो सकता। प्रारम्भ मे अनुसधाता को व्यक्तिगत अनुभव म उसकी उपलब्धि हो ऐसा भी सभव है। इस स्रोत म लोकमत का स्थान महत्त्वपूर्ण है। लेखक अपनी रचना का मूल स्थान से विच्छिन्न करके उसको मूल प्रकृति क विरुद्ध उस रूप देता है और उसकी रचना लोकप्रिय हो जाती है ऐसा भी देखने म आता है।

कभी-कभी रचना का मुख्य स्थान तथा उसम दिया गया विवरण व्यक्तिगत होता है। इस व्यक्तिगत तत्त्व को उसम म अलग कर देने पर प्रत्यक्ष स्रोत की उपलब्धि होती है या दस्तावेजों की। उसम वार्तालाप का तत्त्व मौलिक स्थान का रूप है। फिर भी ऐसे प्रसगो म व्यक्तित्व की प्रधानता स प्रभाव लक्षित होने के कारण अन्य रूप म उसका वर्गीकरण सभव नहीं है। व्यक्तिगत सस्पर्श का प्रभाव

१ मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य—दानबहादुर पाठक 'वर' पृ० ५३
२ वही, पृ० ५१
३ वही, पृ० ५२

साहित्यिक प्रभाव के समाप्त बना रखता है क्योंकि व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में अलक्षित रूप से भी अनेक प्रभाव स्रोत का कार्य करते हैं। अमुक प्रकार के साहित्य के पाठक अमुक श्रेणी के होते हैं। रचना की विगतता या मूल स्रोत उन पर भी आधारित हो सकता है।

रचना में चरित्र योजना के मूल में भी वास्तविक जीवन के व्यक्ति स्रोत के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। चित्रविचित्र कहानी में माने या रास्ते चलता कोई भी आदमी खलनायक हो सकता है जैसा कि जीवन में स्वाभाविक होता है। हत्या के गंभीर काम में किसी निम्न स्तर के सामान्य आदमी को नियुक्त न करने की सूझ से प्रेरित हो कर किसी विशिष्ट चरित्र की योजना में प्रच्छन्न हो तो आश्चर्य नहीं। किसी कामडी ट्रेजेडी या सॉनेट में व्यक्त विशिष्ट भाव या विचार से लेखक की अदम्य आत्मानुभूति की एकता हो। पर तत्-तत् रचना के स्रोत रूप में स्वीकार करना चाहिए। ये सारे स्रोत मौलिक या अनिश्चित होते हुए भी लेखक के भावनामय जीवन के अनिवार्य अंग रूप में अमिट बन रहते हैं। इन स्रोतों का पता सीधे स्पष्ट रूप में न मिलने पर लेखक की रचना प्रक्रिया और उसकी भावयित्री तथा कारयित्री प्रतिभा का मनोविश्लेषण करना आवश्यक है।

महान से महान लेखक को भी अपने साहित्य के निर्माण में लोक रुचि का ध्यान स्वेच्छा से या अनिच्छा से भी रखना पड़ता है। प्रायः साहित्यकार की महानता का कारण अनायास लोक जीवन से उसके साहित्य की सुसंगति है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस के लिए अनेक स्रोतों से सामग्री ग्रहण की परन्तु उनका समन्वय करते समय उन्होंने बहुत कुछ परिवर्तन अपने समय की लोक रुचि और साहित्य की रूढ़ि के अनुसार किया।[1]

'प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक' के अनुसंधाता ने लेखक की रचनाओं के अनेक स्रोतों में लोक विश्वास को एक महत्त्वपूर्ण स्रोत बताया है। उन्होंने किसी भी काल की सभ्यता के इतिहास के लिए शिला लेखादि प्रमाणों को अपर्याप्त बताते हुए लिखा है— इतिहास जिस सत्य प्रमाण को कहता है वह इतना कम है कि केवल उसके आधार पर इतिहास की रूप रेखाएं भी नहीं बन सकतीं। विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से भारत, मिस्र, यूनान, रोम और चीन के इतिहास का आधार केवल शिला लेख नहीं हैं वरन् प्राचीन साहित्य और पौराणिक कथाएं और किंवदंतियाँ लोक विश्वास एवं रीति रिवाज भी हैं। यदि इसी कथन को और स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो 'सिन्धु की घाटी की सभ्यता' के अतिरिक्त अन्य सभी प्राचीनतम सभ्यताओं का ऐतिहासिक आधार प्राचीन अप्रामाणिक ग्रंथ और ऐसी लोक कथाएं ही हैं, जिनको कालान्तर में लिपिबद्ध कर ऐतिहासिक मान लिया गया।[2]

---

१ गोस्वामी तुलसीदास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ७४

२ डा० जगदीशचन्द्र जोशी, पृ० २

इस उद्धरण म उल्लिखित स्रोत का स्वरूप अनिश्चित और मौखिक है, फिर भी सास्कृतिक साहित्य का आधार है—'पुराण महापुरुषा के धार्मिक दाशनिक प्रवचन, समाज के नियामका के आदेश दक्ष एव प्रतिभाशाली राजनीतिज्ञा के राज नीति-सम्बन्धी विचार तथा प्राचीन कविया एव नाटककारा की रचनाओ के रूप म अन्य सहायक उपकरण उपलब्ध हैं। ये उपकरण सास्कृतिक इतिहास के आधार है।'[1]

यह स्रोत अनिश्चित प्रकार का होते हुए भी लोक जीवन का सत्य है—"इस सत्य के दर्शन एक ओर तो हम काव्य न्याय म होते हैं और दूसरी ओर अन्य लोक विश्वासो म। काव्य न्याय नाटकीय न्याय भी कहा गया है। नाटक, महाकाव्य अथवा उपन्यास सभी म शिव और अशिव, सत और असत के सघर्ष मे सदा शिव की ओर सत की ही विजय होना चाहिए जिससे अच्छे व्यक्ति शिव और सत की ओर प्रेरित हो बुरे व्यक्ति भयभीत हो। भारत का सास्कृतिक दृष्टिकोण सदा ही मानवोचित गुणा के विकास के लिए ही प्रयत्नशील रहा है। काव्य न्याय का सम्बन्ध नाटक-कार से न जोडकर लोक जीवन या दर्शना से जोडना चाहिए। यदि नाटक म यह काव्य न्याय नही मिलता, चाहे प्रच्छन्न रूप मे ही क्यो न हो तो नाटक के प्रसिद्ध होने पर भी उसम कुण्ठित काय भरा ही रहेगा। वस्तुत नाटककार को अनजान भी लोक जीवन का यह सत्य स्वीकार करना ही पडता है।[2]

आञ्चलिक साहित्य का मुख्य स्रोत लोक जीवन है— जिन उपन्यासो म किसी विशिष्ट प्रदेश के जन जीवन का समग्र बिम्बात्मक चित्रण हो उन्ह आञ्चलिक उपन्यास कहा जाता है। क्षेत्र विशेष की सस्कृति सामाजिक धार्मिक, राजनीतिक आर्थिक तथा भौगोलिक स्थिति का चित्रण आञ्चलिक उपन्यासा की विशेषता होती है।'[3]

घुमक्कड लेखक के साहित्य म इस स्रोत का इतना अधिक प्रभाव रहता है कि लेखक द्वारा विशेष उल्लेख के अभाव म हम निश्चित रूप से किसी भी उत्स से उसका सबध नही जोड सकते। प० राहुल साकृत्यायन घुमक्कडी के शौकीन थे और विश्व के अनेक देशा की यात्रा उन्होने की थी। इस के अतिरिक्त राजनीति, धर्म, और इतिहास से उनका प्रेम था तथा वे कई भाषाओ के ज्ञाता थे। उन्होने दर्शन, इतिहास, पुरातत्त्व, भाषाशास्त्र, शिक्षा, समाज शास्त्र, राजनीति, साम्यवाद, उपन्यास, एकाकी, यात्रा-वर्णन, सस्मरण, जीवनी और निबन्ध—इन सब क्षेत्रो म

---

१ डा० जगदीशचन्द्र जोशी, पृ० ६

२ वही, पृ० ४८ ४६

३ हिन्दी के आचलिक उपन्यास, राधेश्याम कौशिक 'अधीर', पृ० १३

रचनाएँ लिखीं।[1]

[illegible] का इतना [illegible] गहन और इस [illegible] भारत [illegible] विदेश [illegible] 'सरोजस्मृति' और अप्रत्यक्ष साहित्य का बहुत [illegible] इस [illegible] देश गए हैं। [illegible] [illegible] धर्म और [illegible] रह चुके थे। [illegible] ३० से [illegible] किया। उनके मन [illegible] और बुद्ध विचार [illegible] का प्रभाव मिलता। प्रेमचन्द के [illegible] विचार और [illegible] थे। [illegible] साहित्य और भाषा की समस्या पर उनके विचार [illegible] थे। इसी कारण वे [illegible] विभूति [illegible]। कोई भी शुद्ध [illegible] साहित्यकार [illegible] प्रचुर उपयोग किए बिना नहीं रहेगा।

साहित्यकार स्वात पथ न ग्रहण हो कर विचारादि की तरह अपना साहित्य में स्वात पथ का सामञ्जस्य लेता है। उसकी दृष्टि सत्य सात्त्वना पर रहती थी और अपनी पद्धति को छोड़ कर सभी कालों में इसका प्रभाव है। किसी भी ग्रन्थ का स्वात साहित्य सामूहिक होने के साथ साथ मौलिक स्वरूप का ज्ञान के कारण प्रतिदिन स्थाना ॥ सर्वाधिक पाया गया है।

(ख) प्रेरणा – लेखक के मन में उद्भूत विचार उसकी रचना में वर्णित विषय उस में नियोजित चरित्र उसकी भूमिका कथावस्तु उसका शिल्प और सभी प्रायः वार्तें हैं जो उसकी प्राथमिक अवस्था में विशेष प्रेरणा से प्रेरित होती है। एक ही स्रोत से एक से अधिक तत्त्वों की उत्पत्ति में यह प्रेरणा सहायक होना सम्भव है। विषय और चरित्र प्रायः तरह से वास्तविक जीवन में प्राप्त होते हैं या साहित्य में सूचना रूप में लेखक उनको ग्रहण करता है। वह अपनी रचनात्मक कल्पना से जीवन और साहित्य का समन्वय करता है या स्वतन्त्र रूप से उसका निर्माण करता है।

वर्तमान युग में कथा शिल्प या चरित्र की अपेक्षा लेखक के विचार का अध्ययन अधिक हो रहा है। विचार का मूल स्रोत साहित्यिक होता है परन्तु उसकी थाह पाना इतना मुश्किल होता है कि विचारों के लिए सम्भावित स्रोतों का अनुसंधान परिणाम में नकारात्मक होता है। यदि विचार महत्त्वपूर्ण है और उसकी अभिव्यक्ति प्रभावोत्पादक है तो उसका जो कोई भी हो वही उसका अध्ययन अनुसंधान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

प्रेरणा का स्रोत विविध रूपों में क्रियाशील होता है। यथा, व्यक्तिगत आत्म अनुभव बाह्य प्रेरणा आंतरिक प्रेरणा आदर्श नवनिर्माण की भावना, मनोवैज्ञानिक आवश्यकता या मानसिक प्रतिक्रिया आदि अनेक निमित्तों से साहित्य सृजन की प्रेरक

---

१ राहुल सांकृत्यायन का कथा साहित्य डा० प्रभाशंकर मिश्र

शक्ति प्रवत्त होती है।

ग्रथ—गुप्तजी ने 'भारत भारती' के प्रणयन म प्रेरणा स्रोत को स्पष्ट स्वीकार किया है— मुसद्दसे हाली" के ही ढग पर गुप्तजी के मित्र कुरी सुदौली के अधिपति न एक कविता-पुस्तक हिंदुआ क लिए लिखन का अनुरोध किया था।"[1]

"यक्ति गुप्तजी की मुख्य प्रेरणा मूर्ति आचाय महावीरप्रसाद द्विवेदी थे जिन्होंन गुप्तजी की काव्य प्रतिभा के बीज का सारी उद्भाव और विकास की सपूर्ण प्रक्रिया के साथ उस पल्लवित-पुष्पित और फलित किया— काव्य के क्षेत्र म आचाय महावीरप्रसाद द्विवेदी का सबसे बडा काम मथिलीशरण गुप्त का निर्माण था। गुप्तजी की सारी कविता उनकी जीवन-व्यापिनी साधना द्विवेदीजी के आदर्शों पर अवलबित है और इस साधना ने हम कुछ अत्यत महत्त्वपूर्ण चीजें दी हैं।"[2]

महान प्रतिभाशाली लखक को प्रेरणा दने वाले महापुरुष भी हो सकते हैं और छोट "यक्ति या प्रसग भी हान हैं। आदिकवि वाल्मीकि को सारस-युगल की मार्मिक विरह-वेदना से प्रेरणा मिली। सूरदासजी पहले घिघियाते हुए हीन भाव स ग्रस्त दास्यभाव के पदा की रचना करते थ। महाप्रभु श्री वल्लभाचाय की प्रेरणा ने उनको भक्त-कवियो का शिरोमणि बना दिया और नवधा भक्ति सवलित उत्कृष्ट काव्य का निर्माण हुआ। सपूर्ण पुराणा उपनिषदा और ब्रह्म सूत्र क प्रणेता वेदव्यास ने भागवत की रचना नारद मुनि की प्रेरणा स की। महादेवी वर्मा की कहानियो की प्रेरणा मूर्ति उन कहानी के मुख्य पात्र ही रह ह और 'श्रृखला की कडिया' की प्रेरणा, भारतीय नारी जीवन। दिनकर ने कुरुक्षेत्र की रचना म कुछ हद तक प्रतिक्रियात्मक भाव से गाधीजी के अहिंसा जीवन-दर्शन से प्रेरणा पाई। भारत पर चीन के आक्रमण के प्रसग ने व्यापक रूप से भारत के कवियो को वीरता और देश भक्ति म ओत प्रोत रचनाए लिखने को प्रेरित किया। निरालाजी ने उन की पकौडी लिखने म महादेवी वर्मा के यहाँ पकौडी खाते खाते प्रेरणा पाई और 'कुकुरमुत्ता' लिखने म राजमहल की मालिन के बालक की 'कुकुरमुत्ता' विषयक तीव्र लालसा मे हरिऔधजी के 'ठठ हिंदी का ठाठ' म उनका हिंदी प्रेम प्रेरणा बना था।

प्राय मथिल कवि विद्यापति ठाकुर की अनेक रचनाएँ राजाना से प्रेरित था—'भू-परिक्रमा महाराज देवसिंह की आज्ञा से पुरुष परीक्षा महाराज शिवसिंह की आज्ञा से लिखनावली' राजबनौली के राजा पुरादित्य की आज्ञा से, शवसर्वस्वसार और गगावाक्यावली' महाराज पदमसिंह की स्त्री विश्वासदेवी की आज्ञा से तथा 'दुर्गाभक्तितरगिणी महाराज भैरवसिंह की आज्ञा से लिखी गई थी।'[3]

---

१ मथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता,
डा० उमाकात पाठक पृ० १३

२ वही पृ० १५

३ विद्यापति ठाकुर, महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्र पृ० ७२-८०

प्रनुभव 'बच्चन का परवर्ती काव्य' म लिखा गया है—' कविता लिखने की प्रेरणा साधारणत दो प्रकार से प्राप्त होती है। एक तो धक्के और झटके के रूप म और एक धीमी धीमी आँच के रूप म कुछ प्रेरणाएँ ऐसी होती हैं जो बहुत बाह्य तीव्र और वेगमयी होती हैं। उनका प्रभाव इतना तात्कालिक होता है कि कवि उससे उबर नही सकता उसके प्रभाव के कारण तत्काल ही कुछ लिखना होता है युद्ध अकाल महामारी आदि ऐसी ही प्रेरणाएँ हैं। लेकिन एक प्रेरणा ऐसी भी होती है जो इतने बाह्य और स्थूल रूप म सम्मुख नही आती लेकिन धीरे धीरे कलाकार के मन म रस बस जाती है और इस प्रकार उसकी चेतना को इस कदर आच्छन्न कर लेती है कि उसके प्रभाव मडल से मुक्त नही हुआ जा सकता। तब बहुधा उसके कारण सृजन का रूप और स्तर निर्धारित होता है। इस प्रकार की प्रेरणा कवि के व्यक्तित्व का अग हो जाती है।'' बच्चन के बगाल का काल' म प्रथम प्रकार की प्रेरणा है।[1]

बाह्य प्रेरणा प्रेमीजी को ऐतिहासिक नाटक लिखने की प्रेरणा देने वाली उनकी बहन लज्जावती है। उन्होंने स्वय लिखा है— पजाब म मान की बासुरी और कम का शख फूकने वाली बहन कुमारी लज्जावती ने एक बार मुझे कहा था कि हमारे भारतीय साहित्य म हिन्दी और उर्दू तथा अन्य प्रातीय भाषाओ के साहित्य म हिन्दुओ और मुसलमानो को अलग करनेवाला साहित्य तो बहुत बन रहा है उन्हे मिलाने का प्रयत्न बहुत थोडे साहित्यकार कर रह है। तुम्हे इस दिशा म प्रयत्न करना चाहिए। इसी लक्ष्य को सामने रखकर मैंने रक्षाबधन नाटक लिखा। शिवा साधना' के रूप मे इस दिशा म मेरा यह दूसरा पग है।[2]

प्रांतरिक प्रेरणा एक ही व्यक्ति का विषय या प्रसग भेद से प्रेरणा करने वाले निमित्त अलग अलग हाते हैं। यह नियम नहीं है कि जिसे आतरिक प्रेरणा होती हो वह बाह्य प्रेरणा को स्वीकार न करे या बाह्य प्रेरणा से प्रेरित को कभी आतरिक प्रेरणा न होती हो। प्रेमीजी को दोनो प्रकार की प्रेरणाएँ मिलती थी।[3] प्रेमीजी को अपने ही भीतर से नाटक लिखने की प्रेरणा मिली है उनका व्यक्तिगत जीवन ही उनके नाटको का प्रेरक है। दूसरी ओर बाह्य परिस्थितियो से भी उन्हे प्रेरणा मिली। जिस देश भक्ति ने हिन्दुत्व का रूप धारण करके भारतेन्दु को प्रेरित किया, जो आगे सास्कृतिक चेतना के रूप म प्रसाद की राष्ट्रीय प्रेरणा बनी उसी राष्ट्रीय उत्थान की भावना ने 'प्रेमी' को हिन्दू मुस्लिम एकता का चोगा पहनकर प्रकाश दिखाया।'[3]

---

१ डा० श्यामसुन्दर घोष, पृ० १४ १५
२ हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक कुमारी सरला जौहरी पृ० १६
(शिवा साधना' की भूमिका से उद्धृत)
३ नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी व्यक्तित्व और कृतित्व
विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक', पृ० २ ३

आदर्श महाकवि 'हरिऔध' के चौपदों का मूल प्रेरणा-स्रोत उनका आदर्श था—'यदि हिन्दुओं और मुसलमानों का वास्तविक सम्मिलन किसी भी क्षेत्र म सबसे पहले सम्भव है तो वह साहित्य क्षेत्र ही है। यदि साहित्य म कोरी नकल को प्रोत्साहन न देकर हम मूल्यवान आदान प्रदान का स्थान देंगे तो उसमें पारस्परिक सहानुभूति और एक-दूसरे के प्रति आदरभाव की वृद्धि होगी। इस दृष्टि से हरिऔधजी इस दिशा म अग्रसर होकर साहित्य निर्माण के एक बहुत ही उपयोगी किन्तु अन्य कवियों द्वारा उपेक्षित विभाग की ओर कार्यरत हुए। हरिऔध जी के इस प्रयत्न का राष्ट्रीय मूल्य न भी स्वीकार करें तो हिन्दी साहित्य के भीतर दैनिक जीवन म व्यवहृत बोलचाल के मुहावरों के प्रति उदासीनता के कारण साहित्यिक भाषा और बोल चाल की भाषा मे पड़ी निरन्तर वृद्धिशील व्यवधान को रोकना तथा खड़ी बोली कविता की आकाश-चारिणी कल्पना-लक्ष्मी को उसके थामने और बाल बच्चों की याद दिलाने का श्रेय हरिऔधजी को देना ही पड़ेगा।[1]

इस आदर्श म निहित भावना कई रूपों म हमारे सम्मुख आती है—'हिन्दु-मुसलमान-सम्मिलन', भाषा के उपेक्षित रूप का प्रकाश, 'खड़ी बोली' के व्यावहारिक रूप की सुरक्षा या जनता और साहित्य की भाषा म एकरूपता।

चरित्रनिर्माण की भावना इसी प्रकार साहित्य म जीवन चरित्र निर्माण का आदर्श कवि को जड़ रूढ़ि विरोधी नये प्रतिमानों म पौराणिक पात्रों को ढालने की प्रेरणा देता है— सामाजिक आदर्शों की रूढ़ियाँ जब कथा को निष्प्राण और चरित्रों को जड़ बनाने लगती हैं तब उन्हें नयी चेतना प्रदान करने की आवश्यकता होती है। आधुनिक युग की मानवतावादी काव्य प्रवृत्तियों ने राम-कथा को मानवीय भूमिका पर अंकित किया और उसके उपेक्षित चरित्रों को नवजीवन प्रदान किया। आशय यह है कि साकेत चरित्र प्रधान कथा सृष्टि है। कथा विकास तो उसका पृष्ठाधार है। उसके त्रुटिपूर्ण वस्तु विन्यास का एक कारण यह भी है। उसमें लम्बे दृश्यावली, सन्तापों, आत्मोद्गारों रूप चित्रणों और प्राकृतिक वर्णनों की संगति चारित्रिक भूमिका पर देखी जानी चाहिए। कवि ने कथा-सूत्र को छोड़ा नहीं, क्योंकि उसकी काव्य-पद्धति वस्तु-मुखी है, आत्माभिमुखी नहीं।[2]

आन्तरिक आवश्यकता (मनोविज्ञान) इस उद्धरण म साकेत के प्रेरणा स्रोत को हम प्राणवान चरित्र निर्माण के आदर्श म देख पाते हैं परन्तु कवि ने इसका कहीं दावा नहीं किया है। इसके प्रमाणस्वरूप हम एक पत्रोत्तर को देख सकते हैं।[3]

सरस्वती संवाद के महाराज विशेषांक निकलने के अवसर पर पत्रिका के

---

1 महाकवि हरिऔध श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' पृ० २५६
2 मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य, डा० कमलाकान्त पाठक, पृ० ४४३
3 मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य दानबहादुर पाठक 'वर', पृ० १६२

सपादक डॉ० नाथ शभु पाण्डय ने गुप्तजी को पत्र लिख कर उनसे यह अनुरोध किया था कि 'साकेत' की प्रेरणा के स्रोत पर कृपया स्वय प्रकाश डालें। इस पत्र का उत्तर गुप्तजी ने इस प्रकार दिया था—

६ नार्थ एवेन्यू नई दिल्ली

२२-४ ५६

प्रिय महाशय !

पत्र मिला। धन्यवाद !

अपने विषय म स्वय क्या कहूँ ? इष्टदेव के विषय म कुछ लिखना ही था। 'साकेत' लिख गया। कैसा लिखा गया इसे आप लोग ही जानें। कृपा के लिए कृतज्ञ हू।

भवदीय

मैथिलीशरण

इसमे प्रेरणा स्रोत का कोई सकेत नही है परन्तु प्रकारान्तर से डा० नगेन्द्र ने इसका इशारा रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महावीरप्रसाद द्विवेदी की उर्मिला विषयक रचनाओ की ओर किया है।[1] पुराने चरित्रो को नव-जीवन प्रदान करने के आदश का प्रमाण साकेत स्वय है—कैकेयी के पात्र का उज्ज्वल चित्रण और आधुनिक नारी की प्रतीक स्वरूप उर्मिला के प्रति अपनी सारी मानिक सहानुभूति की अभिव्यक्ति। इसी अभिप्राय को व्यक्त करते हुए अनुसधाता ने विशेषाक म प्रकाशित डा० पाण्डेय के वक्तव्य को उद्धृत किया है— गुप्तजी रामभक्त सत हैं। अत उनके स्वभाव में वही देवता, वही निरभिमानता और शालीनता है जो सतो का सहज स्वभाव है। आपका जन्म एक एम परिवार म हुआ था जो परम्परा से वैष्णव था। अत श्रद्धा और विश्वास उनको बचपन से ही विरासत के रूप मे प्राप्त हुआ था। परन्तु यह समझना भूल होगी कि युग धर्म ने उनके मानस पर अपना प्रभाव नहीं डाला।"[2]

आगे अनुसधाता ने प्रेरणा स्रोत की व्याख्या करते हुए लिखा है— साकेत की प्रेरणा का कोई एक प्रधान स्रोत नही प्रत्युत पुजीभूत मार्मिकता है जिससे कवि का सहज भावुक हृदय इस अभिनव प्रयोग के लिए अग्रसर हुआ। जहाँ तक मैं समझ सका हू, साकेत-निर्माण का मूल प्रेरक बिन्दु अथवा लक्ष्य उर्मिला की करुण गाथा मात्र प्रस्तुत करना न होकर उसके माध्यम से कवि का अपनी अनन्य राम भक्ति का भिन्न रूपात्मक अभिव्यक्तिकरण है। कवि के इस कथन म ही मैं साकेत की मूल प्रेरणा के दर्शन करता हू—"इष्टदेव के विषय म कुछ लिखना ही था। साकेत लिख गया।"[3]

१ साकेत एक अध्ययन, डा० नगेन्द्र, पृ० १

२ मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य, दानबहादुर पाठक 'वर' पृ० १६२

३ वही पृ० १६३

इन विभिन्न चर्चाओं म मावेन के प्रेरणा स्रोत का लेकर पूर्णत एक मत नहीं मिलता उनम सूक्ष्म भेद हैं। फिर भी, उर्मिला मुख्य नहीं तो गौण रूप से ही सही प्रेरणा बनी अवश्य है, ऐसा ध्वनित हुए बिना नहीं रहता। इसके अलावा मावत के प्रणयन काल की राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक सामाजिक और कवि-जीवन की निजी परिस्थितियों का भी इस प्रेरणा के मूल म स्वीकार गया है।[१]

मानसिक प्रतिक्रिया समस्या नाटक के आधुनिक जन्मदाता मिश्रजी मान जाते हैं। इस पद्धति का पहला नाटक संन्यासी १६२७ ई० म लिखा गया। इस नाटक की प्रेरणा के विषय म मिश्रजी कहते हैं—'पहले महायुद्ध की समाप्ति पर कथराइन की 'मदर इण्डिया' निकल चुकी थी। यूरोप और अमेरिका के कितने ही लेखक काले, भूरे और पीलो स गोरा का सावधान रहने की चेतावनी दे रहे थे। रंगीन जातियाँ जो सब ओर स हीन करने की चेष्टा की जा रही थी। हिडमन क्लाट, 'पुटनमवील' 'नाथाम्नोदार आदि कितने ही राजनैतिक सदस्य इस बात की घोषणा कर रहे थे कि भविष्य म गोरा का संकट रंगीन जातियों स बढेगा। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पुस्तकालय म इस तरह का साहित्य बराबर बढ रहा था जिसके पढने का सुयोग मुझे विद्यार्थी जीवन म वही मिल गया। इस प्रकार की जो प्रतिक्रिया हुई उसी ने हिन्दी के प्रथम समस्या-नाटक संन्यासी का जन्म दिया। जाति के गौरव बोध अपनी संस्कृति और अपने पूर्वजा की विभूति निष्ठा ने अन्तर्जगत' के कवि को समस्या-नाटककार बना दिया। मैंने तभी स० १९८० वि० के आसपास ही देख लिया था कि छायावादी हिन्दी कविता के रूप म अंग्रेजी कवियों की लीरिक पाएटी का जो प्रभाव चल रहा है वह व्यक्ति की अतृप्त लालसा वासना, परिताप, एकांगी स्वार्थ के उन्माद का फल है। इसमें जातीय जीवन और अपनी संस्कृति का ह्रास है। इसलिए मुक्त कविताओं का लिखना छोड़कर म सदन के लिए नाटककार बन गया जिसम जीवन की स्वाभाविक धारणा और उसके चित्रण का अवसर है। कम समय स छूटकर गीता की रंगीनी म डूब मरने को मैंने पाप समझा।[२]

(छ) सांस्कृतिक स्रोत—चित्रकला, शिल्पकला, मानचित्र भवन मंदिर बिना मशीन नृत्य—ये स्वतन्त्र रूप स और सम्मिलित रूप से भी साहित्य को प्रेरित और प्रभावित करते हैं। वेद पुराण, उपनिषद इतिहास संस्कृति के प्रतिनिधि इन स्रोतों की अपनी मान्यता और गरिमा स प्राणवान बनाने वाले होने के कारण इन्हीं के अन्तर्गत अपना स्थान रखते हैं।

अनिश्चित और मौखिक ज्ञान का स्वरूप सांस्कृतिक श्रेणी का होते हुए भी उसे वेद, दर्शन, इतिहास, धर्म या परम्परा किसी एक के साथ हम साथ नहीं जोड़ सकते।

---

१ मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य दानबहादुर पाठक 'वर' पृ० १५२ १५८
२ हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृ० ५१४

महोदय डॉ० रामशंभु पाण्डेय ने गुप्तजी को पत्र लिख कर उनसे यह अनुरोध किया था कि साकेत की प्रेरणा के स्रोत पर कृपया स्वयं प्रकाश डालें। इस पत्र का उत्तर गुप्तजी ने इस प्रकार लिखा था —

६ नार्थ एवेन्यू नई दिल्ली
२२-४-५६

प्रिय महाशय !

पत्र मिला । धन्यवाद !

अपने विषय में स्वयं क्या कहूँ ? इष्टदेव के विषय में कुछ लिखना ही था । 'साकेत' लिख गया । कैसा लिखा गया इसे आप लोग ही जानें। कृपा के लिए कृतज्ञ हूँ ।

भवदीय

मैथिलीशरण

इसमें प्रेरणा-स्रोत का कोई संकेत नहीं है परन्तु प्रकारान्तर से डॉ० नगेन्द्र ने इसका इशारा रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महावीरप्रसाद द्विवेदी की उर्मिला विषयक रचनाओं की ओर किया है ।[1] पुराने चरित्रों का नव जीवन प्रदान करने के आग्रह का प्रमाण साकेत स्वयं है—कैकेयी के पात्र का उज्ज्वल चित्रण और आधुनिक नारी की प्रतीक-स्वरूप उर्मिला के प्रति अपनी सारी मार्मिक सहानुभूति की अभिव्यक्ति । इसी अभिप्राय को व्यक्त करते हुए अनुसंधाता ने विशेषांक में प्रकाशित डॉ० पाण्डेय के वक्तव्य को उद्धृत किया है— गुप्तजी रामभक्त सन्त हैं । अतः उनके स्वभाव में वही देवता, वही निरभिमानता और शालीनता है जो सन्तों का सहज स्वभाव है । आपका जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था जो परम्परा से वैष्णव था । अतः श्रद्धा और विश्वास उनको बचपन से ही विरासत के रूप में प्राप्त हुआ था । परन्तु यह समझना भूल होगी कि युग धर्म ने उनके मानस पर अपना प्रभाव नहीं डाला ।[2]

आगे अनुसंधाता ने प्रेरणा-स्रोत की व्याख्या करते हुए लिखा है— साकेत की प्रेरणा का कोई एक प्रधान स्रोत नहीं प्रत्युत पुञ्जीभूत भावुकता है जिससे कवि का सहज भावुक हृदय इस अभिनव प्रयोग के लिए अग्रसर हुआ । जहाँ तक मैं समझ सका हूँ साकेत निर्माण का मूल प्रेरक बिन्दु अथवा लक्ष्य उर्मिला की करुण-गाथा मात्र प्रस्तुत करना न होकर उसके माध्यम से कवि का अपनी अनन्य राम भक्ति का भिन्न रूपात्मक अभिव्यक्तिकरण है । कवि के इस कथन में ही मैं साकेत की मूल प्रेरणा के दर्शन करता हूँ— इष्टदेव के विषय में कुछ लिखना ही था । साकेत लिख गया ।[3]

---

१ साकेत एक अध्ययन, डा० नगेन्द्र पृ० १

२ मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य, दानबहादुर पाठक 'वर' पृ० १६२

३ वही, पृ० १६३

इतना निश्चित है कि ये दोनो परस्पर को प्रभावित करते हैं और एक-दूसरे की सहायता से परिष्कृत और विकसित होते रहते हैं। इसका मुख्य कारण है लोक कथाओं की पृष्ठभूमि में छिपे निहित ऐतिहासिक तथ्य का आधार। सम्भव है कि कथा के आवरण में वह पूर्णतया प्रच्छन्न ही रहा हो। लोक मानस की कल्पना जगत में नवसृजन के लिए मौलिकता के साथ इतिहास का आधार आवश्यक होता है। सिंहासन बत्तीसी जैसी कथाओं का इसमें प्रमाण है।

'संस्कृति' की व्याख्या करते हुए डा० मायारानी टंडन लिखती हैं— 'हिन्दी के प्रमुख कोशकारों में से एक ने संस्कृति को 'रहन सहन की रुचि' कहा है तो दूसरे ने उसे आचारगत परम्परा बताया है और तीसरे ने उसके अन्तर्गत मन रुचि आचार-विचार कला कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास सूचक बातें की हैं। इस प्रकार मानव के रहन-सहन और आचार विचार से सम्बन्धित उन सभी परम्परागत बातों से 'संस्कृति' का सम्बन्ध बताया गया है जो उसकी विविध विषयक रुचियों के परिष्कार और विविध अर्थात शारीरिक मानसिक और आत्मिक शक्तियों के विकास में सहायक होती है। या संस्कृति के दो पक्ष हो जाते हैं पहले का सम्बन्ध उन बातों से रहता है जिनका निर्माण रहन सहन आचार विचार आदि से सम्बन्धित वातावरण संस्कार संपर्क आदि के फलस्वरूप हुआ करता है और दूसरे पक्ष का सम्बन्ध परम्परा से अर्थात उन बातों से रहता है जो मानव अपने पूर्वजों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ग्रहण करता है। प्रथम पक्षीय विषयों की नींव मानव के जन्मकाल से ही पड जाती है और उसके रहन सहन आचार विचार आदि पर जिन बातों का आरम्भ से ही प्रभाव पडने लगता है उनमें प्रमुख है प्राकृतिक वातावरण जीवन की सामान्य रूप रेखा, पारिवारिक सामाजिक धार्मिक राजनीतिक स्थिति आदि। द्वितीय पक्ष के अन्तर्गत विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में परंपरा से प्राप्त विश्वास और मान्यताओं के साथ साथ अनेक पर्वोत्सव आदि भी आ जाते हैं जिनसे जीवन के प्रति समाज के दृष्टिकोण की संकुचितता या व्यापकता का सहज ही परिचय मिल सकता है। प्रथम प्रकार की जानकारी का घनिष्ठ सम्बन्ध इतिहास से सहज है क्योंकि ऐतिहासिक परिस्थिति के साथ साथ उक्त सभी प्रकार की स्थितियाँ भी परिवर्तित होती रहती हैं। द्वितीय प्रकार का परिज्ञान अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व का होता है। कारण समाज विशेष के लौकिक जीवन सम्बन्धी आदर्शों का निर्माण शताब्दियों में होता है, उन आदर्शों की जड ऐतिहासिक भूमि में बहुत गहरी समायी रहती है।'[1]

आगे इस सन्दर्भ में वे बताती हैं काव्य का सम्बन्ध भी जाति के इतिहास से अधिक उसके संस्कार-जन्य आदर्शों से रहता है। फलस्वरूप ऐतिहासिक स्थिति के सम्बन्ध में जो संकेत या विवरण किसी काव्य में मिलते हैं वे प्रायः सामान्य और

---

१ अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, पृ० २९ ३०

असम्बद्ध ही होते हैं। प्रबन्ध-काव्य म तत्सबधी उल्लेखो के लिए थोडा-बहुत अवकाश हो भी सकता है, परन्तु गीति काव्य म उनके लिए कोई स्थान नहीं होता यद्यपि स्वय कवि उनकी सवथा उपेक्षा नही करना चाहता। द्वितीय प्रकार की स्थिति से सम्बन्धित अनेक सकेत सभी प्रकार की रचनाओ म मिलते हैं कारण तत्सबधी उल्लेख कोई भी कवि अनायास ही कर जाता है क्योकि उसके व्यक्तित्व का निर्माण भी उन्ही सस्कारो और आदर्शो से होता है। य सकेत कभी तो प्रत्यक्ष रूप से वर्णित विषयो म मिलते हैं और कभी परोक्षत अलकारो के रूप म इस उद्देश्य से अपनाये जाते हैं कि अबोधावस्था म ही सस्कार रूप म पोषित पाठक उन्हे सहज ही हृदयगम कर सके।[1]

सस्कृति के समस्त स्रोत लेखक के लिए महान प्रेरणा रूप हैं यह अनुभव से प्रमाणित हो चुका है। प्रतापनारायण टडन अनुभव का वणन करते हुए लिखते हैं—
यूरोप भ्रमण के समय लेखक अपने म नित्य नवीन अनुभूतियो को प्राप्त करता था। एक ऐतिहासिक नगर म जाने पर लेखक ने देखा कि एक ही नगर म एक ओर साज-सज्जा म आधुनिकतम साधन तथा कलात्मकता की अनुपम प्रगति तो दूसरी ओर अति प्राचीन सभ्यता तथा सस्कृति अपने उसी रूप म पूर्ण सुरक्षित जिसे देख कर लगता है कि उसमे पाच हजार वष पूर्व के वातावरण म, उसी समय की चहल पहल म प्रवेश कर गये हो। यह देख कर लेखक ने नई प्रेरणाएँ प्राप्त की।"[2]

सास्कृतिक स्रोत म इतिहास और परम्परा के सम्बन्ध का वही रूप है जो लोक साहित्य और इतिहास का है। परन्तु साहित्य म सास्कृतिक जीवन के आलेखन म क्या ऐतिहासिक होते हुए भी युग धर्म से वचित नहीं हो सकती। पुरातन को आधुनिकता प्रदान करने म और उसकी जडता को भग कर लोकोपयोगी बनाने म ही सस्कृति के व्याख्याता लेखक की सार्थकता है। गुप्तजी को हम इस रूप म देख सकते हैं—'इस देश की भी अपनी परम्पराएँ हैं —परम्परा से कतिपय प्रथाएँ सस्कार और विश्वास प्रचलित हैं। गुप्तजी के काव्य म प्राय व सभी प्रस्थापित हैं। किन्तु युग धर्म की भी व कभी उपेक्षा नही करते इसीलिए पारस्परिक मूल्यो एव रूढियो को दृढता से ग्रहण करने पर भी उनका साहित्य आधुनिकता के प्रभाव से मुक्त नही है। उनकी बहुमानसिक ग्राहकता और स्थितिस्थापकता विलक्षण है।'[3]

डॉ० नगेन्द्र मत मे सामाजिक जीवन की प्रथाएँ और सस्कार भी सस्कृति के भव्य निदर्शन हैं—उनम सस्कृति का स्वरूप न जाने कब से सुरक्षित चला आता

---

१ अष्टछाप काव्य का सास्कृतिक मूल्याकन प० ३० ३१
२ हिन्दी साहित्य का नया क्षितिज प० ८१
३ मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय सस्कृति के आख्याता
डा० उमाकान्त पाठक, प० ४७० ४७१

है।"[1] समाज अर्थात लोक जीवन का प्रतिनिधित्व देने वाला लेखक सांस्कृतिक स्तर पर स्वयं को और अपने पात्रों को रख कर ही इतिहास आदि सांस्कृतिक स्रोतों के सहारे वर्तमान समस्या का समाधान खोजने में सफलता पाता है। प्रसादजी के साहित्य में पुनर्विवाह की समस्या का समाधान सांस्कृतिक स्तर पर अर्थात धर्म के सहारे किया गया है। वधू की पवित्रता में विश्वास रखने वाले प्रसादजी ने 'प्रेमपथिक' की पुतली को अपने प्रिय किशोर के शरीर की अपेक्षा हृदय मात्र से मिलने में ही संतुष्ट कर दिया है। परन्तु 'विजया' में विधवा सुन्दरी कमल को प्राप्त कर लेती है। चित्तौर उद्धार के माध्यम से प्रसादजी ने पुनर्विवाह को सामाजिक स्तर पर स्वीकृति दिलाने की चेष्टा की है। ध्रुवस्वामिनी में इस विचार का और भी विकास हुआ है और धार्मिक स्तर पर इसको स्वीकृति प्राप्त कराई गई है।

जब पति पति के कर्तव्यों को पूर्ण करने में असमर्थ हो, प्रसादजी ने विवाह विच्छेद और पुनर्विवाह का एक साथ विधान बता दिया है— धर्म का उद्देश्य इस तरह पद दलित नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म विवाह केवल परस्पर द्वेष से नहीं टूट सकते पर यह सम्बन्ध उन प्रमाणों से भी विहीन हैं। यह रामगुप्त मृत और प्रव्राजित तो नहीं पर गौरव से नष्ट आचरण से पतित और कर्मों से राजकिल्विषी क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।[2]

सांस्कृतिक स्रोत में इतिहास की प्रधानता के कारण यह परोक्ष और प्रत्यक्ष दोनों स्रोतों के रूप में लेखक को सहायता देता है। परोक्ष स्रोत के रूप में तत्कालीन साहित्य से सीधी सामग्री ग्रहण करते हुए भी यदि संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाली हो तो इसी स्रोत में उसकी गणना होनी चाहिए। बाणभट्ट की आत्मकथा के लेखक हजारीप्रसाद के इस कौशल का परिचय देते हुए अनुसंधाता ने लिखा है— उपन्यासकार ने इतिहास का केवल सहारा भर लिया है। पर उसने कल्पित घटनाओं को इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि उनका इतिहास से कहीं विरोध नहीं होने पाया है। उपन्यासकार की कल्पना भी निराधार नहीं है क्योंकि उसने तत्कालीन काव्यग्रन्थों एव नाटकों की साक्षी देकर उसे अत्यन्त तर्कसंगत बना लिया है। कथा का अधिकांश भाग 'हर्षचरित' सार और 'कादम्बरी' से लिया गया है। कुछ विषय 'रत्नावली नाटिका' कुमारसम्भव मेघदूत नागानन्द शिशुपालवध, महाभारत मृच्छकटिक रघुवंश नाट्यशास्त्र अभिज्ञानशाकुन्तल चिन्तामणि कामसूत्र मालतीमाधव, धन शतक वसन्त महिमा और मिलिन्द प्रश्नादिक ग्रन्थों से लिये गये हैं[3]। इन ग्रन्थों की सहायता से प्राप्त विषयों का उपयोग प्राय सामाजिक आचार विचार,

---

१ साकेत एक अध्ययन पृ० ११४ ११५ पंचम संस्करण

२ ध्रुवस्वामिनी

आन्दोत्सव तथा प्राकृतिक चित्रण आदि वर्णित प्रसगो को सजीव बनाने के लिए किया गया है। उक्त ग्रन्थो म भारतीय संस्कृति तथा परम्पराओ का जो आदर्श देखने को मिलता है उसका पूर्ण जीवन्त चित्र हम 'बाणभट्ट की आत्मकथा' म मिल जायगा।'[1] अनुसधाता न संस्कृति क अथ म इस रचना की व्याख्या इस प्रकार की है—'आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा लगभग चार-सौ पृष्ठो म समाप्त हुआ है जबकि अपेक्षाकृत मुख्य कथा भाग अल्प ही है।'[2] वे आगे लिखते हैं— अन्त म जाण न बातर कण्ठ स कहा — फिर कब मिलना होगा? इसी स्थान पर अपने समस्त प्रभावो के साथ उपन्यास की कथा समाप्त हो जाती है जो अपेक्षाकृत उपन्यास म अन्य कार्य-व्यापारो के वर्णन स बहुत छोटी है, पर उपन्यासकार न अनेक प्रसगो की सहायता स कथा-वस्तु का निर्माण इतने कौशल पूर्वक किया है कि उसमे हम एक ऐसी प्रशस्त भूमि दे दी है जिसमे हर्षकालीन भारत के समस्त सामाजिक आचार विचार राजनैतिक उलट फेर धार्मिक आदान-प्रदान जनता म व्याप्त अनेक मत मतान्तर एव विश्वास तथा कला और संस्कृति आदि सिमिटकर आ गयी हैं।'[3]

ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण म 'राजनीतिक और शासन प्रबन्ध राज्याभिषेक परिषद अन्य कर्मचारी न्याय-न्यायाधिकरण, रणनीति सैन्य-योजना और युद्ध के अतिरिक्त भौगोलिक विवरण भी अपेक्षित है। उसके अभाव म प्रदेश या देश-विशेष की संस्कृति का पूर्ण प्रतिनिधित्व सम्भव नही है—इस विवरण म 'देश नदी, पर्वत शहर प्रान्त नगर ग्राम, यातायात (रथ शिविका अश्व नौका), सामाजिक (वर्ण व्यवस्था आश्रम) प्रधान धर्म और देवी देवता लोक विश्वास (धूमकेतु, उल्कापात शिवाह भविष्य वाणी ज्योतिष तान्त्रिक, सिद्ध) प्रणय विवाह खान पान वस्त्र-आभूषण उत्सव क्रीडा विनोद, द्वन्द्व युद्ध शिक्षा, कला, संगीत साहित्य' गिनाये जाते हैं।

जब तक अनुसधाता को सांस्कृतिक ज्ञान व अन्तर्गत आने वाली वस्तुओ का सम्यक ज्ञान नही होता वह अनुसधान म प्रगति नही कर पाता। ऐतिहासिक साहित्य म यह जानकारी विशेष रूप स उपयोगी होती है। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटको का अनुसधान इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि— अपने इतिहास के लिए प्रसाद के पास जो भी उत्स थे, उन सबका उपयोग उन्होने किया है। ज्ञात इतिहास के दोनो खण्ड— ध्रुव और चल दोनो प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री उनके नाटको की घटनाओ के मूल म रही हैं और एक सपन्न इतिहासकार की तरह उन्होने इन दोनो प्रकार के बीच

१ ऐतिहासिक उपन्यास की सीमा और बाणभट्ट की आत्मकथा

डा० त्रिभुवनसिंह पृ० २३ २४

२ वही, पृ० ३२ ३ वही पृ० ३६

४ प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक डा० जगदीशचन्द्र जोशी

सामजस्य स्थापित किया है। प्राग इतिहास के लिए जहाँ तक उन्होंने वेद और इतिहास, बौद्ध इतिहास शिलालेख ताम्रपत्र मूर्तियाँ, लौह-स्तम्भ इत्यादि का सहारा लिया है वहीं बुद्ध, कालिदास विक्रम इत्यादि के सम्बन्ध में किम्वदन्तियाँ, दन्त-कथाओं और पौराणिक उपाख्यानों की भी पर्याप्त सहायता ली है।'[1]

सम्पूर्ण उपादानों का उपयोग करने पर लेखक अनायास ही अपनी रचना में सांस्कृतिक वातावरण की सृष्टि कर देता है। प्रसाद ने १९१२ में पहले (ऐतिहासिक रचनाओं के निर्माण के पूर्व ही)— ग्रीक अंग्रेजी और भारतीय इतिहासकारों के मतों और भारतीय पुरातत्त्व विभाग के अन्वेषणों के आधार पर एक अत्यन्त विशद, विवेचनात्मक निबन्ध प्रस्तुत किया। शिलालेखों ताम्रपत्रों महावंश मुद्राराक्षस वायुपुराण और कौटिल्य के अर्थशास्त्र से अपनी यथा-वस्तु की सामग्री का चयन कर प्रसाद ने चन्द्रगुप्त के जीवन पर नवीन प्रकाश डाला।[2]

साहित्य के सांस्कृतिक पक्ष का स्पष्ट हुए कहा जा सकता है कि प्रसाद इसमें सर्वांगीण प्रतिभा को प्राप्त थे। धर्म, इतिहास कला कारीगरी संगीत आदि के साथ दर्शन में भी उनकी रुचि और जानकारी सराहनीय है। अनुसंधाता ने बड़े परिश्रम के साथ इन विशिष्ट स्रोतों का पता लगाकर प्रसाद के 'कामायनी' महाकाव्य पर अपना अभिप्राय व्यक्त किया है' — प्रसाद ने इच्छा ज्ञान और क्रिया के तीनों लोकों का जो चित्रण किया उसके मूल वैदिक और लौकिक संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद में अग्नि को तीन रूपों में अभिव्यक्त किया गया है और उसे त्रिधातु कहा गया है (३।२३।७)। यजुर्वेद में उसे लोहमय रजतमय और स्वर्णमय घरों में वास करने वाली कहा गया है (५।८)। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि पराजित असुरों ने प्रजापति की तपस्या करके तीन प्रदेशों का निर्माण किया। पृथ्वी में लोहे का अन्तरिक्ष में रजत का और द्युलोक में स्वर्ण का नगर निर्माण किया। परन्तु देवताओं ने उपसद नामक अग्नि को प्रसन्न कर उन तीनों पुरों का विनाश करा दिया है (८।४।४। ४)। इसी तरह महाभारत (वन पर्व अ० ३३ ३४) और पुराणों में इसी कथा का पुनरावर्तन मिलता है केवल अग्नि की जगह शिव का नाम है। शैवागमों में त्रिपुर का दार्शनिक विवेचन मिलता है (तन्त्रालोक भा० १ पृ० १०४) इसमें त्रिपुर को अथ इच्छा ज्ञान और क्रिया शक्ति के रूप में दिया गया है। इन शक्तियों की अधिष्ठात्री त्रिपुरा देवी मानी जाती हैं जो ब्रह्मा विष्णु और शिव के सदृश है। वह त्रिशक्तियों से समृद्ध है। अपने चन्द्रमा रूप से वह सृजन करती हैं अग्नि रूप से संहार करती है और सूर्य रूप से संचालन करती है (तन्त्रालोक,

---

१ प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, डा० जगदीशचन्द्र जोशी, पृ० ८६

२ प्रसाद की दार्शनिक चेतना, डा० चक्रवर्ती पृ० ४५७

३ वही पृ० ५४२ ५४३

भा० २ पृ० ७८ ७९) जब तक इन तीनों पुरों म पार्थक्य बना रहता है, तब तक उपाधियों और वस्तुओं से आक्रान्त संसार द्वन्द्व और वैषम्य म रहता है। इनके समरस होने पर आनन्द की प्रतिष्ठा होती है।

तान्त्रिकों ने इस ही निरानावस्था के नाम से अभिहित किया, जिस अवस्था म योगी सब बन्धनों से मुक्त होकर अखण्ड आनन्दमय शिव रूप को उपलब्ध करता है (तन्त्रालोक, भा० ३, पृ० ११४ ११५)।'

'उक्त सूत्रों के आधार पर प्रसाद ने त्रिपुर की अभियजना की। पुरों की दशा की कल्पना उन्होंने श्रद्धा से ली। शैवागमों से इच्छा, ज्ञान और क्रिया की। दार्शनिक उपपत्तियों को लिया और अन्तत श्रद्धा के द्वारा उन तीनों लोकों के वैषम्य को दूर किया जिसका आधार उन्हें त्रिपुरा रहस्य म मिलता है। इस तरह प्रसाद ने इच्छा, ज्ञान और क्रिया को त्रिपुर और त्रिकोण के रूप म अभिव्यक्ति कर शैवों के दार्शनिक रहस्य को समझाने का यत्न किया। तीनों के सामञ्जस्य से ही आनन्द की जो उपलब्धि तन्त्रों म बताई है इसका निरूपण कर प्रसाद ने मनु को आनन्द की उपलब्धि कराई।' तदनुसार प्रसाद ने वैदिक और लौकिक साहित्य का अवलम्ब लेकर कामायनी की कथा-वस्तु का निर्माण किया जिसम मनु न केवल ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप म अभिव्यक्त हुए, वरन मन के प्रतीक रूप म भी उपस्थित हुए हैं। एक ओर मानव सृष्टि के इतिहास का निरूपण है तो दूसरी ओर मानव-जीवन का विकास। साथ ही साथ प्रसाद ने रूपकत्व और प्रतीकत्व के द्वारा इसम मन के विकास का भी इतिहास संगुम्फित कर दिया है।

(ज) प्राकृतिक स्रोत प्राकृतिक चैतन्यमय सौन्दर्य का अनुभव किये बिना साहित्यिक चेतना का विकास नहीं हो पाता। पक्षी का कलरव फूल का सौरभ और रंगीनी, उसकी सुषमा और रस, उस पर मंडराते भौरों का गुंजन और तितलियों का विहार तथा मधुमक्खियों का रस पान, रात्रि बादल चन्द्र, चमक सितारे, सूम नदी, सागर सरोवर विविध ऋतुएँ और भाँति भाँति के वृक्ष, पौधे लताएँ, घास-पात, पत्थर और बालू आदि असंख्य स्रोत लेखक की रचना म प्रेरणा या प्रभाव रूप म अवश्य रहते हैं। लेखक प्रकृति के इन उपादानों को प्रतीक रूप म ग्रहण करके अपने अमूर्त भावों को मूर्तिमान और सम्प्रेषणीय बनाता है या प्रकृति का मानवीकरण करके मानव हृदय के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करता है।

किसी भी देश, भाषा या जाति का साहित्य बिना प्राकृतिक ज्ञान का प्रयोग किये पूर्ण जीवित और समृद्ध नहीं हो सकता। विश्व स्रष्टा की कविता प्रकृति के रूप म प्रकट होकर अपने रूप सौंदर्य को नित्य नूतन शैली म व्यक्त करके निखिल भुवन के प्राणियों को जीवन, ज्ञान और आनन्द दान करती रहती है। सच्चिदानन्दमयी इस प्रकृति का सान्निध्य कवि हृदय म अलौकिक रस का संचार करता है और अपनी निराली प्रतिभा के साँचे म उस रस और सौन्दर्यानुभूति को ढाल कर कवि पुन पुन

काव्य-सर्जन में प्रवृत्त होता है। आदिकाव्य रामायण से लेकर आज तक यह परम्परा चली आ रही है। इन सबका यह दावा करने में समर्थ ऐसी इस प्रकृति का सम्यक् दर्शन कराने वाली दृष्टि होनी चाहिए। हिन्दी साहित्य में भक्ति काव्य में प्रकृति चित्रण बहुत उत्तम कोटि का हुआ है। अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन में श्रीमती मायारानी टंडन प्राकृतिक सौन्दर्य की व्याख्या करते हुए लिखती हैं'— अष्टछापी कवियों ने अनेक प्रकार के जीवों का उल्लेख उपमान रूप में अथवा प्रकृति वर्णन के साथ स्वतन्त्र रूप से किया है। इन सभी प्रकार के वर्णनों के आधार पर तीन निष्कर्ष निकलते हैं

(१) अष्टछापी कवियों ने पशु पक्षियों के सामान्य जीवन को लेकर उनकी प्रवृत्तियों और प्रभावों का चित्र प्रदर्शित किया है जैसे, कपि गुंजा की नाईं।

(२) मनुष्य जिस प्रकार पशु पक्षियों का अपने जीवन में उपयोग करने लगा है उसको ध्यान में रख कर अष्टछाप के कवियों ने अनेक उक्तियाँ कही हैं। जैसे, तेली के बैल ज्यौं नित भटकता।

(३) अष्टछापी कवियों ने पशु पक्षियों के पारस्परिक संबंधों उन पर आने वाले संकटों तथा उनकी प्रतिक्रियाओं से संबंधित कुछ बातें कही हैं। जैसे— बक प्रसित अजा।

प्रथम दोनों प्रकार की उक्तियों का आधार वे अनेक लोकोक्तियाँ हैं जो मनुष्य समाज में अनादि काल से प्रचलित रहकर हमारी जनभाषा का स्थायी अंग बन गयी हैं। अतः इन कवियों ने इनका संग्रह मात्र किया है। इसके विपरीत तृतीय प्रकार की उक्तियों से अष्टछापी कवियों की पर्यवेक्षण शक्ति तथा सूक्ष्मग्राहिणी प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। इनसे उनकी प्रतिभा और सूझ-बूझ का परिचय मिलता है। किसी सीमा तक उनकी ये उक्तियाँ मौलिक कही जा सकती हैं।

भक्ति-काव्य में प्रकृति का जीवन्त चित्रण हुआ परन्तु रीतिकाव्य में स्थूल शृंगार चित्रण की प्रधानता से प्रकृति भी निष्प्राण हो गयी। उसकी एक परम्परा सी बन गई। भारतेंदु काल में कुछ विशिष्ट कवियों को छोड़कर इसी परिपाटी का निर्वाह किया गया। 'द्विवेदीयुगीन प्रकृति काव्य' पर अपना अभिप्राय व्यक्त करते हुए अनुसंधाता ने लिखा है— द्विवेदी युग में पहली बार स्वतन्त्र दृष्टि से काम लिया गया और उसके वैभिन्यपूर्ण व्यक्तित्व की स्थापना का यत्न भी की गई। प्रयागनारायण मिश्र का 'ऋतुकाव्य (१९१०) अयोध्यासिंह का उपाध्याय ऋतुमुकुट (१९१७) श्रीधर पाठक का 'वनाष्टक (१९२२) जगनारायण देव शर्मा का मधुप (१९२३) विद्याभूषण विभु का चित्रकूट चित्रण, श्यामकांत पाठक का उषा (१९२५) और दरबखां का 'प्रकृति-सौन्दर्य आदि रचनाओं में इस प्रवृत्ति के स्पष्ट दर्शन किये जा सकते हैं।

इस युग से पूर्व प्रकृति चित्रण परम्परागत था। कवियों ने मुख्य रूप से

---

१ प्रसाद की दार्शनिक चेतना, डा० चक्रवर्ती पृ० ११७ ११८

उद्दीपन रूप म ही इसका ग्रहन किया था, आलंबन रूप म बहुत कम । नतिकता का उपदेश दन के निमित्त भी प्रकृति का सहारा लिया गया था । इसके आग प्रकृति के स्वतन्त्र अस्तित्व का स्वीकार करन की आवश्यकता जस किसी कवि न नहीं अनुभव की थी । अपवाद रूप एक-आ-कवियो के आलंबन चित्र अवश्य मिल जाते ह ।'[1]

इस तथ्य का अनुसधाता न अधिक स्पष्ट करने के लिए पाच वर्गो म इस प्रकृति-काव्य को विभक्त किया है—(i) भाव (भाव रूप चित्रण), (ii) सौदय (मधुरता-कामलताप्रधान और भयकरता उग्रताप्रधान) (iii) विभाव (उद्दीपन आलवन) (iv) निरूपित और निरूपायित क सबध की दृष्टि से दृष्टि-दशक सम्बध सूचक और तादात्म्यसूचक, (v) विधान (प्रस्तुत-अप्रस्तुत) ।[2]

आग इस तथ्य की अनुसधाता ने विशद व्याख्या करक निष्कष रूप म बताया कि— द्विवेदीयुगीन प्रकृति चित्रण बहुत समद्ध नहीं है । उसम तल्लीनता का अभाव है । प्रकृति क व्यक्तित्व म कविगण अपना व्यक्तित्व नही मिला पाय ह और न उनका तादात्म्य ही स्थापित हो सका है । फलस्वरूप प्रकृति के रहस्यो क उद्घाटन म भी उह सफलता नहीं मिल पायी है । इसके अतिरिक्त मानवता को प्रकृति का कोई सदेश देने म भी वे समथ नहीं रह हैं । अधिकाश रचनाओ म प्रकृति क ऊपरी रूप की ही झलक प्रकट हो सकी ह ।[3]

कवि पत क व्यक्तित्व निर्माण का पूरा श्रेय प्रकृति का है । व स्वय लिखत है 'मेर कवि-जीवन के विकास क्रम को समझने के लिए पहल आप मेर साथ हिमालय की प्यारी तलहटी म चलिए । मरा काव्यकार अभी तक फूटा नही था पर प्रकृति मुझ मातहीन बालक को कवि जीवन के लिए मेरे बिना जान ही जस तयार करन लगी थी । मेर हृदय म वह अपनी मीठी स्वप्ना से भरी हुई चुप्पी अकित कर चुकी थी जो पीछे मेर भीतर अस्फुट तुतल स्वरो म बज उठी । मैं बचपन से ही जनभीरु और शरमीला था । उधर हिम प्रदेश की प्राकृतिक सुदरता मुझ पर अपना जादू चला चुकी थी इधर घर म मुझे मेघदूत शकुतला और सरस्वती' मासिक पत्रिका म प्रकाशित रचनाओ का मधुर पाठ सुनने को मिलता था जो मेर मन म भर हुए अबाध सौदय का जस वाणी की झकारो म झनझना उठन के लिए अज्ञात रूप स प्रेरणा देता था । मेरे बडे भाई साहित्य और काव्य क अनुरागी थ । मेर मनम तभी से लिखने की ओर आकषण पदा हो गया था ।

प्रकृति और कवि के सबध की व्याख्या करते हुए डा० चक्रवर्ती लिखत है—

---

१ मथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य दानबहादुर पाठक वर, पृ० ४५ ४६

२ वही पृ० ४६ ५०

३ वही, पृ० ५१

४ शिल्प और दशन, श्री सुमित्रानन्दन पत पृ० ३२१

''सृष्टि परम सुन्दर की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति है। इस निखिल भुवन में परिव्याप्त इस चिरन्तन सौन्दर्य की अनुभूति प्रत्येक व्यक्ति को होती है किन्तु कवि की अनुभूति अन्यों की अपेक्षा अनिवार्यतः तीव्र होती है।''[1] फिर आलोचक ने इस सिद्धान्त का आधार बना कर प्रसाद के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया है—'प्रसाद की सचेतना और संवेदना का आभास उनकी सौन्दर्यानुभूति में ही मिलता है। उन्होंने अपने यत्र तत्र के आक्रोश भावद्रष्टा का प्रकृति के उपकरणों पर आरोपित कर रहस्य का झीना आवरण इस तरह डाल दिया कि सौन्दर्य की अभिव्यक्ति दार्शनिक व्यंजना में परिणत हो उठी।

'प्रसाद ने प्रकृति-सौन्दर्य की अंतरानुभूतियों और जीवन संवेदना की पृष्ठभूमि में प्रतिष्ठित कर देखा। इसीलिए अभिव्यक्ति में स्थूल-सूक्ष्म का अपूर्ण पूर्ण का और रूप विरूप का विलक्षण सामंजस्य उपस्थित हुआ।'[2]

प्रसाद के प्राकृतिक-सौन्दर्य चित्रण पर अंग्रेजी प्रभाव भी लक्षित हुआ है। प्रसाद ने वर्ड्सवर्थ की भाँति प्रकृति से शिक्षा ग्रहण की है। 'प्रेमपथिक' में विश्व प्रेम का जो व्यापक रूप ग्रहण कर लिया है वह कीट्स के सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण से पर्याप्त साम्य रखता है। प्रकृति का रमणीय वातावरण कीट्स के लिए इस जगत की कठोर वास्तविकताओं से, शांति निकेतन के रूप में था, प्रसाद ने भी उसे उसी रूप में ग्रहण किया है। किशोर के माध्यम से अपने विश्व प्रेम के दर्शन की व्याख्या करते हुए उनके शब्द हैं—

> आत्मसमर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर।
> प्रकृति मिला दो विश्वप्रेम में विश्व स्वयं ही ईश्वर है॥
>
> × × ×
>
> क्षणभंगुर सौन्दर्य देख कर रीझो मत देखो! देखो!!
> उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में छाई है।
>
> × × ×
>
> न्यौछावर कर दो उस पर तन मन जीवन सर्वस्व यहीं।
> एक कामना रहे हृदय में, सब उत्सर्ग करो उस पर॥
>
> —प्रेमपथिक पृ० २४ २५

चमेली इस जीवन दर्शन को सहज रूप में स्वीकार कर लेती है और उसी के प्रवाह में कहती है—

---

१ प्रसाद की दार्शनिक चेतना प० ३२१

२ वही, प० ३२२

चना मिलें सौन्दय प्रेम निधि म
जहा अखड शान्ति रहती है वहा सन्त स्वच्छन्दता रह।'

—वही, पृ० २६

इसके अनन्तर दाता आत्मविभोर होकर अरण्यान्य देखने लगते है। यह जीवन दशन निश्चित रूप से प्राकृतिक शोभा की उपासना का दशन है।[1]

साहित्य-साधना म प्रेरक और उद्दीपक रूप म प्रकृति का स्थान अनुपम है। इस स्रोत स कवि-व्यक्तित्व की एकता इस हद तक है कि वह उसके शक्तिशाली स्रोत के स्वरूप स अनजान है परन्तु उस सत्य शिव सुन्दरम की आराधना की नीरव किन्तु प्रशस्त पगडडी वहा म मिलती है।

---

१ हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव
डा० विश्वनाथ मिश्र, पृ० २५५ २५६

मौलिकता | ५

साहित्य के विविध स्रोतों का अध्ययन हमें एक रहस्यपूर्ण संकेत करता हुआ साहित्य में महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य तत्त्व मौलिकता की दिशा में गंभीर चिंतन और तत्संबंधी अनुसंधान के लिए अग्रसर करता है। इसके साथ स्रोत और मौलिकता के बीच सूक्ष्म अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है। स्रोत साहित्यकार को विविध क्षेत्रों की सामग्री देता है उसके भाव विचार और कल्पना को उत्तेजित करता है अनुकूल प्रतिकूल सूचन करता है और प्रतिभाशाली को अपनी मौलिकता प्रकट करने का अवसर देता है, फिर भी स्रोत मौलिकता की व्यंजना में निमित्त मात्र है क्योंकि संपादित समग्र सामग्री मौलिकता के अभाव में जड़ है शव मात्र है प्रदर्शनी या संग्रह है एक बोझ से अधिक कुछ नहीं है। प्रतिभा के अभाव में मौलिकता के उद्घाटन में समर्थ महान साहित्य के निर्माण में शक्तिशाली स्रोत भी निरुपयोगी ही नहीं भुलावा बन जाते हैं और अविवेक से अनर्थ की सृष्टि भी कर सकते हैं।

स्रोत और मौलिकता प्रतिभाशाली में निर्जीव अनुकरण का नितांत अभाव होता है। जिसका प्रत्यक्षीकरण उसे होता है उसमें उसकी सचेत कल्पना और आत्मानुभूति उसे नया रूप देन को लनचाती है। अपनी कृति में भी समय बीतने पर संशोधन, परिवर्तन परिवर्द्धन आदि की प्रवृत्ति उसमें हो तो आश्चर्य नहीं है। जैनेन्द्रजी अपनी इस प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए लिखते हैं— भई मुझे अपने से डर रहता है। कुछ सामने आए तो हमेशा बदलने का जी हुआ करता है। मन कभी अपने लिखे से भरता नहीं है और तसल्ली नहीं पाता। ऐसे काटने बदलने का सिलसिला चले तो उसका अंत कहाँ है![1]

इस सर्जन प्रक्रिया में स्रोत बाह्य निमित्त के अर्थ में प्रभाव डाल कर अंत प्रेरणा को संचालित करता है परन्तु वहाँ भी प्रतिभा की बात है। कवि बच्चन इस सर्जनशीलता की व्याख्या करते बताते हैं— अनुभवों में डूब और अभिव्यक्ति के माध्यम पर यथासंभव अधिकार प्राप्त करके मैंने अपने आपको प्रेरणा पर छोड़ दिया है। प्रेरणा के अस्तित्व को मैं मानता हूँ। किसी मन स्थिति में, किसी परिस्थिति में किसी

---

[1] जैनेन्द्र, व्यक्ति कथाकार और चिन्तक, सं० बांकेबिहारी भटनागर, पृष्ठ ११२

घटना से, किसी दृश्य से, किसी विचार से, सृजन की यह प्रवृत्ति सहसा जाग उठती है जो सृजन के लिए निए विवश करती है।"[१]

प्रगतिशील जीवन में कोई भी स्नात मूलता के अभाव में निरर्थक सिद्ध होता है। जैसे 'नयी पीढ़ी के साहित्यकारों के ऊपर अपने समकालीन साहित्यकारों ने यह आरोप लगाया है कि उनके विचार घिसे पिटे हैं वे सदैव जर्जर और प्राचीन विचारों को गले लगाये रहते हैं। क्रांति में उनकी आस्था नहीं है उनके विचार सनातन और चिरंतन जीवन-दर्शन पर आधारित रहने के कारण तत्वहीन और निरर्थक हैं। उनसे वर्तमान समाज को एक व्यवस्थित रूप देने के लिए कोई प्रेरणा नहीं मिल सकती क्योंकि प्राचीन विचार प्रणाली अब कुछ-कुछ उद्देश्य हीन हो चुकी है।[२]

जब साहित्य में प्रचलित भाषा शैली भाव विचारों आदि में शिथिलता आती है तब उसी में से नव निर्माण की शक्ति प्रस्फुटित होती है और वर्तमान में आभासित भावी सत्ता का ग्रहण कर प्रतिभाशाली कवि उसे साकार कर देता है। जैसे, 'प्राचीन काव्य के आदर्शों और भावों की शिथिलता का परिचय सबसे अधिक आस्था तक गीतियों में मिलता है उनमें काव्य की पूर्व प्रचलित शैली का तनिक भी आभास नहीं मिलता, वरन उनमें भावी काव्यादर्शों की पूर्व छाया-सी मिलती है। वे काव्य के नूतन युग की अग्रदूत हैं। उदा० लाला भगवानदीन का वीर प्रताप रीतिकालीन काव्य-परम्परा और आदर्श, भाषा और छन्द रूप और शैली से बिलकुल विपरीत है फिर भी उसका साहित्यिक गौरव कम नहीं है।"[३]

भविष्य को वर्तमान में मूर्तिमान करने की क्षमता का प्रमाण अनेक महान कृतियों में उपलब्ध है। यथा ' उमर खय्याम की रुबाइयाँ तो आज से छः सात सौ बरस पहले लिखी गई थी पर फिटजेरल्ड ने उन्हें जिस रूप में अंग्रेजी में रक्खा उसमें वे आधुनिक युग के सपय सदेहशील बुद्धि-जीवियों की मन स्थिति का दर्पण बन गई।[४]

मौलिकता का स्वरूप वास्तव में मौलिकता प्रतिभा की चेतना है, अन्तर्ज्ञान है। एक ही वस्तु व्यक्ति घटना या दृश्य का दर्शन सब करते हैं परन्तु कलाकार या कवि की पैनी अन्तर्दृष्टि उसके मर्म का वेधनकारी होने से गहरे में पैठकर अनल से मोती निकाल लाती है। कवि और प्रतिभा, प्रतिभा और मौलिकता इतने अभिन्न हैं कि 'कवि' शब्द के साथ उनका ग्रहण अलक्षित रूप से ही सही, अवश्य हो जाता है। कवि प्रतिभा में मौलिकता का कारण है यथार्थ युग-दर्शन की क्षमता चिंतन की

---

१ नये-पुराने झरोखे, बच्चन, पृ० १४६, मेरी रचना प्रक्रिया

२ उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी, शिल्प और चिंतन

डा० ललित शुक्ल, पृ० १४३

३ हिंदी साहित्य का इतिहास, (१६०० १६२५), पृ० ६७ ७८

४ नए पुराने झरोखे बच्चन, मैं और मेरी मधुशाला, पृ० १८५

गंभीरता, समस्याओं के समाधान की खोज में तत्पर अन्वेषिकी बुद्धि, संवेदनशील हृदय, निर्भयतापूर्वक आत्माभिव्यक्ति, अपने निर्णय में अचल आत्मविश्वास, अपने प्रति सचाई, परम सत्य में निष्ठा, व्यावहारिक सत्यों के अन्तराल में निहित परम सत्य की उपलब्धि।

इन विशिष्ट तत्त्वों से उर्जस्वित और अनुप्राणित प्रतिभा के कारण ही साहित्य के समस्त स्रोतों का अनुसंधान कर लेने के बाद भी पूर्ण उपलब्धि का सन्तोष अनुसंधाता को नहीं होता। अनुसंधान की प्रक्रिया में कवि की मौलिकता की जानकारी से ही अनुसंधाता को भी मौलिक चिंतन का कोई राजमार्ग या क्रम में कम एकाध पगडंडी जरूर मिल जाती है जो साहित्य के उपासक के लिए परम आनन्द का विषय है। दूसरे शब्दों में यही कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा का सुभग मिलन है, कवि और सहृदय की एकात्मता है। कवि और अनुसंधाता के सुख-दुःख इसी अर्थ में कवि के अपने व्यक्तित्व का धीर, गंभीर, मधायी चिंतक और मर्मी ही पहचान सकता है और इस पहचान का मुक्त हृदय से आनन्द भोग सकता है।

साहित्य की विभिन्न विधाओं और प्रत्येक विधा के विभिन्न तत्त्वों में प्राण रूप से प्रतिष्ठित कवि की आत्मचेतना भी नये नये और अनेक रूपों में दिखाई देती है। किसी की मौलिकता मूल्यों के नवनिर्माण में तो किसी की परिवर्तन में, किसी की प्रतिक्रियात्मक प्रभाव के रूप में तो किसी की सरल आत्माभिव्यंजना में क्रियाशील होती है। इसी कारण प्रत्येक कृति के मूल में प्रेरणा या ग्रहण का कोई-न-कोई स्रोत रहते हुए भी उसकी अपनी एक विशेषता और नवीनता भी होती है।

मौलिकता अर्थात् प्रतिभा मौलिकता की एक शर्त है आत्मानुभूति। कवि की मौलिकता की खोज अर्थात् रचनाकार के परिपूर्ण व्यक्तित्व का दर्शन। कवि का सूक्ष्म अनुभव ही शब्द रूप में अवतरित होता है जिसे हम रचना की संज्ञा देते हैं। इस अनुभव की शक्ति ऐसी अद्भुत होती है कि प्रतिभाशाली के द्वारा किसी कृति के किये गये अनुवाद में भी उसका प्रभाव लक्षित होता है। वह प्रचलित को नया अर्थ देती है, प्राचीन को नया बनाती है। मौलिकता के अभाव में प्रेरणादि स्रोत मात्र अनुकरण या स्थूल अनुवाद रह जाते हैं। प्रतिभाशाली की दृष्टि मौलिक होने का कारण है उसका त्रिकाल दर्शन। वह बीते युग को वर्तमान के लिए उपयोगी बना कर वर्तमान की समस्याओं का समाधान करने में उसकी सहायता लेता है और उसे युगसापेक्षता देकर भूत के शव में प्राणों का संचार करता है। वर्तमान तक अपनी दृष्टि को निरुद्ध न रख कर भविष्य के गर्भ में भी प्रवेश कर जाता है, दूर को निकट लाकर रख देता है और वर्तमान का सफल पथ-प्रदर्शक बनता है।

मौलिकता का रहस्य प्रत्येक अनुसंधाता मौलिकता पर विचार करने के पहले स्रोतों का सम्यक् अध्ययन करे, यह वांछनीय है, अन्यथा सब कुछ मौलिक ही मालूम पड़ेगा। स्रोतों की उपलब्धि होने पर विश्लेपण की प्रक्रिया में मूल स्रोत और

कृति का तुलनात्मक अध्ययन करके उनमें विद्यमान समान असमान तत्वों का वर्गीकरण करना चाहिए। समान तत्वों में मूल से क्या विशेष है यह जान लेने पर उसकी व्याख्या सरल हो जायगी। असमान तत्वों का सबंध कवि की रुचि, अनुभव, संस्कार, उसकी आस्था, वातावरण आदि अनेक व्यक्तिगत और सामाजिक परिस्थितियों से होता है। इस अध्ययन में जितनी अधिक सूक्ष्मता आती है अध्ययन के सब बाह्य विषय छूट जाते हैं, कवि के व्यक्तित्व का साक्षात्कार होता है। बच्चनजी ने मौलिकता को रचना के अर्थ में ग्रहण करते हुए लिखा है— रचना यदि सच्चे अर्थों में रचना है, जिसमें रचनाकार का परिपूर्ण व्यक्तित्व तल्लीन है तो वह सृजनात्मक प्रक्रिया है। सृजन कैसे होता है इसे जानना या बतलाना विश्लेषणात्मक प्रक्रिया है। और यह सर्वमान्य धारणा है कि सृजन के क्षण में विश्लेषण और विश्लेषण के क्षण में सृजन नहीं हो सकता। रचना प्रक्रिया जानने की जिज्ञासा हो भी तो उसे सम्यक रूप से शान्त करने के लिए कोई सजक सक्षम हो सकेगा, इसमें मुझे संदेह है। केवल रचना के विश्लेषण से भी रचना प्रक्रिया का अनुमान भर किया जा सकता है, ज्ञान नहीं। कहने का तात्पर्य है कि रचना प्रक्रिया का रहस्य पूरी तरह से नहीं खुल सकता, और इस रहस्य में किसी भी बड़ी रचना का सौन्दर्य निहित है।[1]

कवीन्द्र रवीन्द्र की मौलिकता के रहस्य का उद्घाटन करते हुए कवयित्री महादेवी लिखती हैं— अपनी कल्पना को जीवन के सब क्षेत्रों में अनन्त अवतार देने की क्षमता रवीन्द्र को ऐसी विशेषता है जो अन्य महान साहित्यकारों में भी विरल है। भावना, ज्ञान और कर्म जब एक सम पर मिलते हैं तभी युग प्रवर्तक साहित्यकार प्राप्त होता है।"[2]

अनुवाद में मौलिकता स्पष्ट है कि प्रभाव और प्रेरणा निमित्त मात्र हैं, मौलिकता व्यक्ति की आत्म चेतना है और इन निमित्तों से वह उद्बुद्ध है। प्रबुद्ध आत्मचेता का अनूदित कृति भी मौलिक-सी जान पड़ेगी और मौलिकता के अभाव में स्थूल और शुष्क अनुवाद या अनुकरण हो कर रह जायगा। बच्चन ने रुबाइयाते उमर खय्याम का अनुवाद किया है, उसकी स्पष्टता करते हुए वे स्वयं उमर खय्याम और अपनी दृष्टि का अन्तर समझाते हुए लिखते हैं— मधुशाला को रुबाइयाते उमर खय्याम का अनुकरण मात्र कहना मैं पसन्द न करूँगा। उसमें कुछ अपने-पन की चेतना का आभास मैंने प्रथम संस्करण के संबोधन में ही दे दिया था। जहाँ तक मुझे मालूम है किसी ने उमर खय्याम और मेरे दृष्टिकोण में अन्तर देखने का प्रयत्न नहीं किया। अँग्रेजी अनुवाद (The House of Cine) की भूमिका में मेरे मित्र स्वर्गीय श्री ज्ञानप्रकाश जौहरी ने इस ओर कुछ संकेत किया है। उनका कहना है कि उमर खय्याम में जीवन के प्रति वितृष्णा है और मुझमें जीवन के प्रति आसक्ति।[3]

---

१ नये पुराने झरोखे पृ० १६७ १६८

२ पथ के साथी पृ० ८

३ मधुशाला बच्चन, पृ० १६६

अनुवाद म मौलिकता के अनुसंधान के लिए अत्यन्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि की ओर तुलनात्मक अध्ययन की अपेक्षा है। व्यक्ति की अपनी रुचि संस्कार योग्यता अभिलाषा परिस्थितियों का प्रभाव और जीवन दर्शन कभी कभी मूल कृति को नया अर्थ देते है। तब अनुवादक की दृष्टि म जो अनुवाद है वही समीक्षक या अनुसंधाता के लिए मौलिकता की खोज का साधन बन जाता है।

प्रेरणा और मौलिकता मौलिकता के मूल म जब प्रेरणा स्रोत की उपलब्धि होती है तब भी तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता रहती है। वैयक्तिक चेतना के अनुरूप ही प्रेरणा या प्रभाव ग्रहण होता है। अज्ञेय के साहित्य को अनुकरण कहने वाले कई आलोचक हैं परन्तु डा० सत्यपाल की मनोविश्लेषक दृष्टि ने उनकी प्रतिभा का दर्शन कुछ अनोखे रूप म किया है। उनका विश्वास है कि— अज्ञेय न अपनी वैयक्तिक चेतना के अनुकूल फ्रायड के प्रभावों को अधिक ग्रहण किया। फ्रायड के मनो विश्लेषण विज्ञान ने प्रभाव विस्तार से उपन्यास-कला म आत्मनिष्ठता की प्रवणता का विशेष विकास हुआ। इससे उपन्यासकार भी आत्मविश्लेषक हो उठा। तदनुकूल अज्ञेय की वैयक्तिक कला दृष्टि ने अपने आत्म की अभिव्यक्ति म—आत्म निरीक्षण आत्म विश्लेषण तथा आत्म समीक्षण करते हुए आत्मा की उपलब्धि म—शिल्प को भी नवता उन्मुक्तता स्वच्छता तथा परिपक्वता दी है इसम उनके असाधारण व्यक्तित्व का योगदान भी स्पष्ट है जो पहले क्रांतिकारी था— किन्हीं सत्ता के विरुद्ध क्रांति कार्यों मे सलग्न रहा—और बाद म साहित्य म भी क्रांति लेकर आया। वस्तुत नये-नये प्रयोगों की प्रवृत्ति उनके विद्रोही स्वभाव तथा व्यक्तित्व सम्पन्नता या व्यक्तित्ववादिता की बहुत कुछ मौलिक विशेषता है जो बाह्य जगत और कथा संसार म एक साथ प्रस्फुटित हुई। [१]

परंपरा और आधुनिकता के समन्वित प्रभाव मे मौलिकता प्रतिभाशाली कवि परम्परा के निर्वाह मे सन्तुष्ट नहीं होता। उसकी अन्तर्दृष्टि नित्य आधुनिक होने के कारण वह प्राचीनता म भी सनातन मूल्यों के रूप म उपलब्ध आधुनिकता का दर्शन करके जड परम्परा से हट कर मूल वस्तु को सुरक्षित रखकर भी उसके आवरण का सांगोपांग बदलने म समर्थ होता है। पौराणिक कथाओं के नवनिर्माण म यह चेष्टा प्राय देखने म आती है। भागवत के दशम स्कन्ध को लेकर रचना करने वाले जयदेव, विद्यापति सूरदास आदि कवियों ने अपनी मौलिक उद्भावनाओं का सम्यक परिचय दिया है। राधा कृष्ण का प्रेम वर्णन भागवत मे नहीं है। इन कवियों की भगवत् प्रेमानुभूति ने उसे नया अर्थ दिया परन्तु रीतिकाल म मात्र परंपरा निर्वाह ही लक्षित होता है। हरिऔधजी द्वारा परम्परा और आधुनिकता का जैसा समन्वय हुआ, उसकी व्याख्या करते हुए लिखा गया है—प्रारम्भ म तो हरिऔधजी कृष्ण विषयक रचनाओं म परम्परा का निर्वाह करते रहे किन्तु आगे चलकर अपने चिन्तन एव

१ अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्प विधि डा० सत्यपाल चुघ, पृ० १६६ १७०

युग की पुकार से प्रभावित होकर उन्होंने अपने काव्य-ग्रन्थों को नवीन दिशा प्रदान करने का प्रयास किया। 'प्रियप्रवास' तथा 'वैदेही वनवास' इसी दिशा की ओर बढ़ते हुए चरण हैं।[1] हरिऔधजी ने अपनी इन रचनाओं में अवतार को आदर्श मानव के रूप में प्रस्तुत करके ईश्वर विषयक अपने व्यापक दृष्टिकोण का जो परिचय दिया है वही उनकी मौलिकता है।

लेखक आत्मानुभूति की तीव्रता और प्रबलता के कारण प्रेरणा और ग्रहण के रहते भी नया परम्परा से अभीष्ट ज्ञान हुए भी मूलकृति में उपन्यास सामग्री को शैली की नितान्त नवीनता से अनुप्राणित कर देता है— लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि उपन्यास बहुत कुछ डायरी शैली पर लिखा गया है। जैसे-जैसे घटनाएँ अग्रसर होती गई वैसे वैसे लेखक उन्हें लिपिबद्ध करता गया है। जहाँ उसके भावावेग की गति तीव्र होती है, वहाँ वह जमकर लिखता है परन्तु जहाँ दुःख का आवेग बढ़ जाता है वहाँ उसकी लेखनी गम्भीरता के साथ मर्म को छूती जाती है। अंतिम उच्छ्वासों में तो वह जैसे अपने में ही धीरे धीरे डूब रहा है। इस प्रकार की वर्णन शैली का संस्कृत साहित्य में नितान्त अभाव है और यही इस उपन्यास के प्रणेता की मौलिक कल्पना है।'[2] हजारीप्रसाद द्विवेदी रचित 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और बाण-रचित 'कादम्बरी' का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए इस मौलिक कल्पना की व्याख्या भी दी गई है 'बाणभट्ट की आत्मकथा और कादम्बरी की प्रेम-व्यंजना में यही स्पष्ट अंतर दिखाई पड़ने लग जाता है। 'कादम्बरी' में वर्णित प्रेम अत्यन्त मुखर है। प्रेमीजनों के बीच होने वाली सभी शास्त्रीय प्रक्रियाओं का चित्रण कादम्बरीकार ने कर डाला है जिसमें परम्परित शृंगार का सुन्दर वर्णन हम कादम्बरी में मिल जाता है। बाणभट्ट की 'आत्मकथा' की प्रेम व्यंजना अत्यन्त गूढ़ एवं अप्रकट भावों के आधार पर होने के कारण कादम्बरी से भिन्न है।'[3]

प्रतिक्रियात्मक प्रभाव और मौलिकता प्रतिभाशाली लेखक सत्य का प्रेमी और आग्रही होता है। सत्य के विपरीत परिस्थिति घटित होता या कथन उसके लिए असह्य हो जाता है। असत्य कथन श्रवण या प्रचार से क्षुब्ध होकर वह सत्य का अनुसंधान और प्रकाशन कर असत्य को समाप्त करने के लिए उद्यत सन्नद्ध होता है तब अक्सर प्रतिक्रियात्मक प्रभाव में वह प्रेरित होता है। सत्यानुसंधान के फलस्वरूप उसके द्वारा होने वाले सत्य का प्रकाशन उसकी मौलिकता को भी प्रकाशित करता है— 'स्वदेश प्रेम की प्रबल भावना के उदय में उनके अध्ययन ने, जो प्रभाव स्वीकार किया

---

१ महाकवि हरिऔध और प्रियप्रवास, देवेन्द्र शर्मा पृ० १५० १५१
२ ऐतिहासिक उपन्यास की सीमा और बाणभट्ट की 'आत्मकथा' डा० त्रिभुवनसिंह, पृ० २५ २६
३ वही, पृ० २५

जायगा, जिसने गजनी गवानिती के सम्मुख पत्थर बनकर उसके वेग का प्रचण्ड वार लिया। मालकम तथा अन्य अंग्रेज एवं विदेशी लेखकों द्वारा भारत का अपमान यहाँ की वीरता और महानता पर व्यंग्य देख उनका मन तिलमिला उठा। वर्माजी ने अपने पूर्वजों और समाज से वीरात्माओं के प्रति जो यश और गौरवगान सुना था, किंवदंतियों ने जो उनके हृदय पर एक कोमल प्रभाव डाल दिया था उसके विपरीत विदेशी लेखकों कृत पुस्तकों ने गहरी प्रतिक्रिया उत्पन्न की और उन्होंने सच्ची घटनाओं कथाओं द्वारा सत्य को दृढ़ता से समाज के सम्मुख उपस्थित किया।[1]

मूल्यों का नव निर्माण और मौलिकता नित्य-नूतन सौन्दर्य का प्रेमी परिवर्तन का प्रेमी होता है। वह जानता है कि परिवर्तन ही जीवन है। आवश्यक परिवर्तन के अभाव में चिरंतन मूल्य भी घिस पिट हो जाते हैं। जर्जर और प्राचीन विचारों को छोड़ नहीं पाते। प्रगति की या परिवर्तन की आवश्यकता के रहते भी उसके अभाव में आधुनिक जीवन के लिए कोई व्यवस्था वह नहीं दे सकता। दूसरी ओर नवीनता का प्रेमी उपलब्ध वस्तुएँ परिवर्तन किये बिना सन्तुष्ट और प्रसन्न नहीं होता। यह काट छाँट और परिवर्तन की प्रक्रिया अनन्त काल तक चलती ही रहती। इसी कारण साहित्य में मूल्यों के नव निर्माण की चेष्टा जितनी स्वाभाविक है उतनी मौलिक भी है। नयी कहानी की उपलब्धियों पर अभिप्राय देते हुए बताया जाता है— नयी या पुरानी पीढ़ी केवल आयु और काल क्रम के अनुसार विभाजित नहीं होती जीवन की गति और इतिहास की प्रक्रिया भी वे व्यक्त करती हैं। इनका संघर्ष मूल्य दृष्टि प्रतिमान और भाव बोध के परिवर्तन से कारण होता है जिसका भ्रम उस समय होता है जब या तो यह मान लिया जाता है कि काल का क्रम रुक गया है और मानवी नियति और प्रकृति में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया है। अतः परम्परा और पुरातन ही श्रेष्ठ है या जब नये और पुराने में एक तरह के संबंध का ध्यान न करके केवल *उनके विरोध को ही समस्या का मूल बिन्दु मान लिया जाता है। वस्तुतः प्रत्येक नयी* परिस्थिति में सामाजिक सम्बन्ध और संबंध परिवर्तित होते हैं और नये जीवन मूल्यों की चेतना जाग्रत होती है। ऐसी नयी परिस्थिति में रचना के संस्कार और प्रेरणा भी बदलते हैं। यदि जीवन की प्रक्रिया अधिक गत्यात्मक हुई जा रही है तो कभी कभी पूरा स्वरूप बदल जाता है तब यह परिवर्तन इतना क्रान्तिकारी होता है कि 'नया विकास न होकर एक स्वतंत्र उद्भावना अधिक लगता है।'[2]

ऐसी स्थिति में पुराने मूल्यों की उपेक्षा हो जाना भी संभव है। 'अज्ञेय' की 'शेखर एक जीवनी' उपन्यास में समाज तथा संस्कृति के प्रति उनकी उपेक्षा दिखाई

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा—साहित्य और समीक्षा सियारामशरण गुप्त, पृ० ३१

२ नई कहानी दशा दिशा संभावना श्री सुरेन्द्र पृ० ८६

देती है। परतु साथ ही साथ वे नवीन सामाजिक और सास्कृतिक मूल्यो के अन्वेषण के लिए आतुर भी दिखाई देते है। अज्ञेयजी ने इस 'स्वातन्त्र्य की खोज' बताया है।[1]

स्वातन्त्र्य खोज' की चेतना ने भारतीय आजादी के आदोलन मे सलग्न और उससे प्रभावित साहित्यकारो की ऐतिहासिक मूल्यो के नव निर्माण करने के लिए उनकी प्रतिभा को उजागर किया। वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यास इसका प्रमाण हैं—' वर्माजी ने ऐतिहासिक मूल्यो की मौलिकता से निर्धारण किया और नवी सधी तत्त्वो को पूर्वाग्रह से विमुक्त नव निर्माण और नव प्राण प्रतिष्ठा दी चिता की मूर्तियो को। लक्ष्मीबाई का सघर्ष वयक्तिक स्वातन्त्र्य की मिहनत और प्रयास नही था, वरन राष्ट्रीय चेतना की जागृति मे पिसती स्वातन्त्र्य भावना का दहकता अगार था। मृग नयनी भुवन विक्रम 'माधवजी सिंधिया मे भी राष्ट्रीय पुनीत भावना का समावेश भारतीय सस्कृति का समुज्ज्वल दिग्दर्शन मुख्य है। राष्ट्रीयता की पुकार युग की कराहती पुकार के निमित्त भी आवश्यक प्रतीत हुई। भारत परतन्त्रता की अग्नि मे जल रहा था नराश्य और अनास्था से समस्त वायुमडल आच्छन्न था उस समय उन्होने साहित्य सृष्टियो के माध्यम से आज के नियोजन द्वारा भी उत्साह और स्फूर्ति का निर्माण किया। मानवता के सच्चे पुजारी के नाते सास्कृतिक उच्चता प्रस्तुत करते हुए वीरत्व का डका युगानुकूल परिवेश मे सगृहीत किया। ऐतिहासिक छवियो को नये सिरे से नई स्वतन्त्र दृष्टि से विचारणीय बना दिया और ऐतिहासिक साहित्य का मापदड और स्तर बहुत ऊपर उठा लिया मौलिकता के समावेश द्वारा उचित प्राण प्रतिष्ठा दी।'[2]

अनुसधाता किसी एक लेखक एक लेखक वर्ग या किसी युग विशेष की प्रवृत्ति मे मौलिकता की खोज का प्रयत्न करे और स्वय किसी निष्कर्ष के आधार पर अपना मत स्थापित करे उसके पूर्व अन्य आलोचको विवेचको अनुसधाताओ का मत अपने स्वतन्त्र मनन की दृष्टि से उपलब्ध हो तो सावधानी से उस पर विचार करना चाहिए और अपना मत भ्रामक जान पड़ता हो उस वदन मे किसी प्रकार की हिचक निर्भय का अनुभव किए बिना सशोधनपूर्वक पुनर्मूल्याकन करके वास्तविकता के आधार पर निर्णय देना चाहिए।

अज्ञेय के मौलिकता विषयक उपयुक्त मत का समर्थन अन्यत्र भी किया गया है— आस्थाहीन बौद्धिकता तथा मध्यवर्गीय कुण्ठाओ मे डूबे इस युग के उपन्यासकारो ने विच्छिन्न समस्त मूल्यो का निषेध किया गया उन्होने नवीन मूल्यो की स्थापना की। इन उपन्यासकारो मे अज्ञेय इलाचद्र जोशी तथा यशपाल प्रमुख है। समाज के सपूर्ण विकास तथा सास्कृतिक परम्परा को अस्वीकार कर दिया गया। मूल्यो का

---

१ आत्मने पद, पृ० ६७

२ वृदावनलाल वर्मा —साहित्य और समीक्षा, सियारामशरण गुप्त, पृ० २०६

निश्चित करने के लिए आदिम मानव की प्राथमिक प्रवत्तियों का आधार बनाया गया बौद्धिक अनास्था न समाज तथा संस्कृति की सत्ता ही ठुकरा दी। अत उनकी दृष्टि म सामाजिक एव सांस्कृतिक मानव भी उपेक्षणीय हो गया। समाज तथा संस्कृति का सम्पूर्ण विकास ही उनकी दृष्टि म गलत ढग से हुआ। अत य उपन्यासकार पुन आदिम मानव की मूल प्रवत्तियों की सत्ता घोषित करके समाज, संस्कृति तथा सभ्यता का नव निर्माण करना चाहते हैं। वास्तविकता तो यह है कि य मध्यवर्गीय उपन्यास कार समाज म अपना अस्तित्व मिटता देख कर वतमान स्थिति से क्षुब्ध है अत प्रतिक्रिया क फलस्वरूप व आदिम युग की शरण लेना चाहता है। यह प्रवत्ति ठीक एसी है कि विदेशी शासन की पराधीनता म निस्सहाय स्थिति के कारण कतिपय चिंतक प्राचीन इतिहास की शरण लेते हैं।[१]

नवीनता और मौलिकता इस प्रकार मूल्यों का नवनिर्माण अर्थात परिवतन की प्रक्रिया चक्रवत होने के कारण प्राचीन की नूतन शैली म अवतारणा है। स्वय अनुसंधाता नवीनता के मोह की चकाचौंध म इस बात को देख नहीं पाता। आमूल परिवतन से ही मूल्यों का नवनिर्माण सम्भव है और इसके लिए नवीनता के प्रति मोह न होना जरूरी है अन्यथा सवप्रथम वह अपने को ही धोखा देता है। उसे चाहिए कि वह अपने को ही धोखा देता है। उसे चाहिए कि वह नवीनता' का सही अथ प्रथम जान ले— नवीनता और नवीनता के प्रति आसक्ति दो अलग चीजें हैं। आसक्ति बहुत दूर तक झूठ होती है। हम अपनी आसक्ति म औरों से अधिक अपने को छलते हैं। आत्म सताप जो आत्म वचना का ही दूसरा नाम है—के लिए हम असल के नमूने पर एक नकली चीज तयार करते हैं और जिस तरह प्रेम और जिस तरह रोमांटिसिज्म के अन्तर को समझ सकते हैं असमथ हर रोमांटिक आदमी यह विश्वास करना चाहता है कि उसका रोमांटिसिज्म ही प्रेम है उसी तरह नवीनता के प्रति रोमांटिक रुख अपनाकर चलने वाले कलाकार अपने आप को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि नवीनता के प्रति उनकी आसक्ति ही नवीनता है। लेकिन हर रोमांटिक जानता है कि उसके प्रेम म कहाँ न कहीं कोई छल है। इस कारण वह अपने आपको सौ बार छलता है। नवीनता के प्रति आसक्त कलाकार भी स्वय को दो बार छलता है।

ऐसा म किसी चीज को छोड़ कर नहीं अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को तोड़कर कोई चीज नयी होती है। जब मूल्यों म परिवतन होता है तो सबसे पहले उनके दोषों म परिवतन होता है।[२]

यदि साहित्यकार आत्म वचना से अपनी रक्षा चाहता है तो वह यथाथ और आदश का स्पष्ट अन्तर जान और आदश को यथाथ से अभिन्न अनुभव करके यथाथ

---

२ नयी कहानी सदभ और प्रकृति डा० देवीशंकर अवस्थी, पृ० १८८ १८६

१ हिन्दी उपन्यास—समाजशास्त्रीय विवेचन, डा० चण्डीप्रसाद जोशी, पृ० ४२१

का ही आदर्श में परिणत करने की स्वाभाविक विकास प्रक्रिया का अपनी रचना में संचार करे। यही उनकी मौलिकता होगी—"जोशीजी अपने पात्रों के प्रति सहानुभूति आकृष्ट करने के लिए अथवा उनके जीवन से कुछ उपदेश निकालने के लिए यथार्थ से कभी विमुख नहीं होते। यथार्थ की उनकी धारणा भी व्यापक है क्योंकि उन्होंने आन्तरिक जीवन और बाह्य जीवन दोनों को समान महत्त्व दिया है। कुछ बाहरी आदर्श उपस्थित करके उनकी ओर जीवन की गति मोड़ने की बात न करके जोशीजी स्वाभाविक आदर्श का उन्नयन करते हैं अर्थात् वह आदर्श जो यथार्थ स्थिति से अपने आप विकसित होता है।"[1]

युग-बोध और मौलिकता मौलिकता का अर्थ स्वच्छन्द कल्पना नहीं है उसमें अपने युग और समाज में सापेक्षता अनिवार्य है। साहित्यकार स्वतन्त्रचेता होकर भी अपनी रचनाओं में युग विशेष को प्रतिबिम्बित किये बिना अपने मन को सफल नहीं मानता। युग निरपेक्ष साहित्य सनातन मूल्यों से हीन होने पर तो जन्मते ही मर जाता है। रचनी का प्रयोग लेखक का व्यक्तिगत रहा नहीं रहता और वह समष्टि का ग्रहण करके ही युग को अपने में आत्मसात करके आत्माभिव्यञ्जना में प्रवृत्त होता है—वाजपेयीजी का साहित्य वस्तुतः युग की अनुभूतियों पर आधारित है। उन्होंने केवल कल्पना के सहारे आकाश कुसुमों का चयन नहीं किया है। और अब तो वह युग भी बीत चला जब उपन्यास को केवल मनोरंजन का साधन माना जाता था। वर्तमान स्थिति तो यह है कि उपन्यास साहित्य की वह विधा है जिसके आधार पर हम युग-चिन्तन और युग प्रवृत्ति विम्बित करते हैं। वाजपेयीजी के उपन्यासों में युग-बोध का पता लगाने के लिए हम दो बातों पर विचार करना होगा—

(i) लेखक ने युग के अनुकूल अथवा प्रतिकूल अपनी क्या मान्यताएँ व्यक्त की हैं?

(ii) पात्रों के माध्यम से युग सम्बन्धी विचार किस प्रकार के हैं?[2]

ऐतिहासिक-पौराणिक प्रबंधात्मक रचनाओं के लिए युग बोध जितना महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है उतना ही निकृष्ट और दुष्कर भी प्रबंधात्मकता में कथा का स्रोत और उत्पाद्य—दोनों रूपों में स्वतन्त्र और मिश्रित स्वीकार किया गया है। कोई भी कथाकार इतिहास का मात्र ज्यों का त्यों रूप में नहीं अपना सकता। उसे अपनी कल्पना का सहारा लेकर अपने युग के साँचे में ढालना पड़ता है उसी प्रकार पुराण काव्य रूप होते हुए भी इतिहास है। उसमें आधुनिकता के लिए पर्याप्त सामग्री रहते भी युग को व्यंजित करने के लिए आवश्यक परिवर्तन करना पड़ता है। गुप्तजी के परवर्ती रचनाओं की व्याख्या में लिखा गया है—"ऐतिहासिक-पौराणिक कथानकों को गुप्तजी

---

1 इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास, बलभद्र तिवारी, पृ० १७२

2 उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी—शिल्प और चिंतन डा० अनिल [illegible] पृ० १०२

अपना अवश्य है किन्तु उनका स्थान गौण है। उनके माध्यम से युगीन समस्याओं का पुरस्करण एवं समाधान करना है। साथ ही उन्होंने उनमें से अविश्वसनीय तत्त्व निकाल कर उन्हें स्वाभाविक परिधान प्रदान करने का प्रयत्न किया है। परम्परा के प्रति अटूट श्रद्धा की स्थिति में भी मैथिलीशरण मौलिकता प्रदान में समर्थ हैं। मौलिकता उनमें है प्रकरण तथा प्रबन्ध की नवता की।[1]

वास्तव में इतिहास और साहित्य में अन्तर होने का कारण है प्रथम में तथ्य-पक्ष की प्रधानता और दूसरे में भाव पक्ष की। रचना को रुचिकर बनाने के लिए सत्य घटनाओं में कल्पना की संयोजना अनिवार्य है। आधुनिक भावनाओं की ओर विचार पद्धति की स्पष्टता इसमें अत्यन्त आवश्यक रहते हैं। इसकी उपलब्धि के लिए जीवन के यथार्थ का अनुभव और सद्बुद्धि की आशा है। पर मौलिकता की खोज के लिए लक्षण भी यही जाना जाता है। क्योंकि—'मौलिकता का गुण उपन्यासकार की प्रतिभा का परिचायक होता है। किसी उपन्यास के कथानक में जितनी मौलिकता होती है उतना ही उसका महत्त्व बढ़ जाता है। यदि विषय के अनुसार देखा जाय तो संसार के सभी उपन्यासों का वर्गीकरण करके उन्हें विभिन्न विषयों में प्रस्तुत किया जा सकता है। परन्तु इस समय उपन्यासकार की दृष्टि की सूक्ष्मता का परिचय इस बात से मिलता है कि वह जीवन की गहनता से किस सीमा तक परिचित है तथा उसकी मूलभूत समस्याओं और उनसे संबंधित तथ्यों का उसने साक्षात्कार किया है अथवा नहीं क्योंकि इन्हीं कुछ बातों से इस बात का पता चलता है कि उपन्यासकार ने कभी जीवन के यथार्थ का तीखा अनुभव किया है या नहीं। यदि कोई उपन्यासकार किसी नव अनुभूति की अभिव्यक्ति अधिक विस्तार और सूक्ष्मता से कर सकता है तो यह उसकी मौलिक दृष्टि का परिचय दे सकने योग्य है क्योंकि एक उपन्यासकार के दृष्टिकोण में मौलिकता की कितनी संभावनाएं हैं यह इन्हीं कुछ बातों पर निर्भर करता है।[2]

संगीत सामग्री में निहित सत्य की रक्षा साहित्यकार का प्रथम कर्तव्य है। वह आवश्यकतानुसार युग की माँग की पूर्ति के लिए कुछ हद तक कथा तथ्य में परिवर्तन कर सकता है, पर आदर्श को विकृत करने का अधिकार किसी को नहीं। मैथिलीशरण गुप्त मौलिक और आधुनिक होते हुए भी प्राचीन आदर्शों के प्रेमी थे— साकेत अभिनव राम काव्य है। उसकी कथा वस्तु चरित्र सृष्टि और विचार धारा आधुनिक युग का परिवेश और नवीनता लिए हुए है किन्तु सुप्रसिद्ध राम कथा को गुप्तजी विकृत नहीं कर सकते थे। एक ओर रामोपासना उनकी कौटुम्बिक वस्तु थी, जो उन्हें

---

१ मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, उमाकांत, पृ० १८४ १८५

२ हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास, डा० प्रतापनारायण टंडन, पृ० ७६ ७७

अपने वातावरण और संस्कार के रूप में उपलब्ध हुई, दूसरी ओर वे असत अथवा अन्याय का पक्ष भी नहीं ले सकते थे क्योंकि भारतीय संस्कृति पर उनकी आस्था प्रतिक्रियामूलक थी भी नहीं।'[1]

प्रकारान्तर में हम मौलिकता का दृष्टि का परिष्कार कह सकते हैं, जब लेखक आरम्भ से प्रेरणा प्राप्त करके उस बीती वस्तु को युगानुरूप और सजीव बनाने का प्रयत्न करता है और उपेक्षित में महत्त्व की स्थापना कर उसमें नया आकर्षण भर देता है तब गृहीत कथा आधार मात्र होती है। गुप्तजी की काव्य रचना में यह प्रयत्न स्पष्ट नजर आता है—'सामाजिक आदर्शों की रूढ़ियाँ जब कथा को निष्प्राण और चरित्रों को जड़ बनाने लगती हैं तब उसमें नई चेतना प्रदान करने की आवश्यकता होती है। आधुनिक युग की मानवतावादी काव्य प्रवृत्तियों ने राम कथा को मानवीय भूमिका पर प्रतिष्ठित किया और उसके उपेक्षित चरित्रों का नवजीवन प्रदान किया। आशय यह है कि साकेत चरित्र प्रधान कथा सृष्टि है। कथा विकास तो उसका पृष्ठाधार मात्र है। उसके त्रुटिपूर्ण वस्तु विन्यास का एक कारण यह भी है। उसमें काव्य दृश्यावली संलापों आत्मोद्गारों रूप चित्रणों और प्राकृतिक वर्णनों की संगति चारित्रिक भूमिका पर देखी जानी चाहिए। कवि ने कथा-सूत्र को छोड़ा नहीं, क्योंकि उसकी काव्य-पद्धति वस्तुमुखी है, आत्मामुखी नहीं।'[2]

१ चरित्रगत

अनुभव और मौलिकता गुप्तजी ने प्रायः कथावस्तु को मूल रूप में ग्रहण करते हुए भी आधारित चरित्र विषयक उनकी कल्पना ने उर्मिला, कैकेयी जैसे पात्रों को उनके अनुभवगत मनोवैज्ञानिक सत्यों पर नया व्यक्तित्व प्रदान किया है—'चरित्र प्रधान काव्य की सफलता के लिए यह आवश्यक माना गया है कि उसके सभी पात्र मुख्य पात्र के चरित्र पर घात प्रतिघात के द्वारा प्रभाव डालें तथा कभी परिस्थिति और कभी पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित होकर उसको प्रकाश में लाएँ। साकेत के सभी पात्र ऊर्मिला के चरित्र विकास में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायक हैं।[3]

ऐतिहासिक या पौराणिक पात्रों के चरित्र चित्रण में लेखक अपनी ओर से कुछ नहीं मिला सकता इसलिए गुप्तजी के उर्मिला और कैकेयी संबंधी कथानक में नयी कल्पना नहीं है हाँ उनके मनोवैज्ञानिक चित्रण में उन्होंने अपनी मौलिकता का अपूर्व परिचय दिया है। पुराने चित्र को उभारकर रोचक रूप में प्रस्तुत करना भी लेखक की मौलिकता है। बृहन्नला भट्टजी का पहला नाटक है जिसमें चित्र उभर कर आ सके हैं। कथा अपनी रोचकता बनाए रख सकती है।'[4]

---

१ मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य डा० कमलाकांत पाठक, पृ० ४०४
२ वही, पृ० ४४३
३ वही पृ० ४४४
४ वही, पृ० ४४७

उसके कथानक में घटना का पूर्ण कालनिक होने के कारण मौलिक बनाया जाता है, परन्तु वे घटित जगत के अनुभव जगत के होते हैं और एक चरित्र लेखक का पूर्ण प्रतिनिधित्व करनेवाला भी होता है। वह पात्र बाहर के वास्तविक जगत में या स्वप्न जगत से संबंधित होता है। कभी कभी दोनों में समन्वय से अभिनव व्यक्तित्व का निर्माण हो जाता है। चरित्र-सृष्टि के इस रहस्य को प्रयोग में लाते हुए बताया गया है—'उपन्यासकार को अपनी सारी सामग्रियों का कल्पना के माध्यम से ही लाना और ले जाना तथा प्रस्तुत करना पड़ता है और उसको उपन्यासकार को पुनः स्वयं अनुभव भी करना पड़ता है। इस प्रकार किसी-न-किसी पात्र के साथ उपन्यासकार की पूर्ण आत्मीयता भी हो जाती है जिसमें वह अपने व्यक्तित्व का आत्मदान करके व्यक्त करता है यद्यपि उस पात्र के जीवन काल में वह उस रूप में कभी भी नहीं रहा। इतना अवश्य है यद्यपि ऐसे लेखक के आत्मीय पात्र का छोड़कर अन्य पात्र सत्य से नितान्त दूर होते हैं और उनमें लेखक के व्यक्तित्व अथवा अनुभव का प्रश्न नहीं होता। उपन्यास में ऐसे ही कम पात्र होते हैं जो सीधे किसी एक व्यक्ति के जीवन से उतार लिए जाते हैं क्योंकि एक ही पात्र में सभी समस्याओं एवं आदर्शों का उत्पन्न करना लेखक के लिए कभी भी संभव नहीं है।'[1]

२ कथानक में मौलिकता

रचना की कथा कितनी भी मौलिक हो उसकी पृष्ठभूमि में लेखक के निजी अनुभवों का संग्रह होता है। विषयगत नवीनता न रहते भी मूलभूत समस्याओं के समाधान में वह पूर्ण मौलिक हो सकता है। इस कसौटी पर उपन्यासकार के कथानक की मौलिकता को परखने वाला मान इस निश्चित करते हुए लिखा गया है—'उपन्यासकार के कथानक में मौलिकता तभी आ सकती है जब उसे जीवन का यथार्थ रूप में पूर्ण अनुभव हो। क्योंकि मौलिकता का गुण उपन्यासकार की प्रतिभा का परिचायक होता है। विषय वस्तु की दृष्टि से यदि संसार के प्रमुख उपन्यासकारों का प्रवृत्तिगत वर्गीकरण करें तो संभवतः कुछ भिन्न-भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत उन सभी को रखा जा सकता है किन्तु एक समर्थ उपन्यासकार विषयगत नवीनता पर बल न देते हुए भी अपने उपन्यास में मौलिकता का गुण ला सकता है। उसकी दृष्टि सूक्ष्मता का परिचय प्रायः इस बात से लग जाता है कि वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रीय पक्षों से कितनी गहनता के साथ परिचित है और उसकी मूलभूत समस्याओं तथा उनसे संबंधित तथ्यों का इसने किस सीमा तक साक्षात्कार किया है। वस्तुतः अनुभूत्यात्मक मौलिकता ही उपन्यास की सबसे बड़ी मौलिकता है और उसका निर्माण उपन्यासकार की अपनी प्रतिभा से होता है।'[2]

---

१ ऐतिहासिक उपन्यास की सीमा और बाणभट्ट की आत्मकथा, डा० त्रिभुवनसिंह पृ० ७६

२ हिंदी साहित्य का नया क्षितिज (प्रतापनारायण टंडन का साहित्य) राजेन्द्रमोहन अग्रवाल पृ० ७६

उपर्युक्त सिद्धान्त की स्थापना करके उसके अनुरूप उदाहरण के द्वारा लेखक की मौलिकता की ओर निर्देश किया गया है—'डा० प्रतापनारायण के उपन्यास में मौलिकता एक प्रधान गुण है। मौलिकता की दृष्टि से यदि उनके कथानकों की विवेचना की जाय तो विषयगत नवीनता और अनुभूत्यात्मक सूक्ष्मता दोनों ही गुण सहज प्राप्त हो जाते हैं। मृत्यु के प्रत्याशित और अप्रत्याशित रूपों की सहज अनुभूति उनके और यथार्थ के धरातल पर चित्रण विषय की मौलिकता निर्विवाद सिद्ध कर देता है।'[1]

सब लेखकों की मौलिकता का स्वरूप एक सा नहीं होता। प्रत्येक प्रतिभा अपनी विशेषता लिए हुए होती है। एक लेखक अनुभव को प्रमुखता देता है तो दूसरा कल्पना या अनुमान को। परन्तु दोनों तत्त्व कम अधिक मात्रा में कथा निर्माण में और अन्य तत्त्वों के निर्माण में रहते अवश्य हैं। जैनेन्द्र ऐसे कथाकार हैं जो अनुभव से अधिक तत्त्वाश्रित अनुमानवाद के प्रेमी हैं। स्वयं लेखक के शब्दों में—'मेरे साथ आपबीती प्रमुख नहीं रही है कल्पना प्रमुख रही है जो कथा को आगे बढ़ा कर उसे स्वरूप देती चली गई है। यहाँ तक कि अन्तिम उपन्यास 'जयवर्धन' इस कदर कोरा गल्प है कि हद नहीं। वहाँ मानो देश की तनिक यथार्थता नहीं है पात्र और चरित्र सब कल्पित और कृत्रिम हैं। नाम और आकार वे जीवन-यथार्थ की भूमिका पर विचरते नहीं मालूम होते हैं। यह स्वीकार करने में मुझे तनिक असुविधा और दुविधा नहीं जान पड़ती कि मेरा या संसार का अनुभव मेरे लिखने में उतना नहीं है जितना कि एक तत्त्वाश्रित अनुमानवाद है।'[2]

३ विषयगत

परिस्थितियों से प्रभावित और युग की माँग की पूर्ति के लिए प्रेरित साहित्यकार विषय चयन में आत्मनिष्ठ से अधिक वस्तुनिष्ठ होता है। वह नई परंपरा या विषय का प्रवर्तक होता है युग निर्माता का श्रेय भी उसे मिल सकता है। १९वीं शताब्दी के पूर्व भारतीय साहित्य में जन्मभूमि अथवा राष्ट्र पर काव्य नहीं लिखा जाता था। इसका कारण था भारतीय प्रजा में राष्ट्रभावना का अभाव। जन्म भूमि के अर्थ में पूर्ण भारत का ग्रहण पश्चिम के प्रभाव से हुआ। उसके पूर्व अपने छोटे छोटे गाँव या नगर ही जन्मभूमि या मातृभूमि माने जाते थे। भारतवासियों की समाज विषयक कल्पना भी अस्पष्ट थी और उसका विशेष महत्त्व न था। महत्त्व मानव का था या व्यक्ति का। ऐसी स्थिति में हिन्दी में राष्ट्रीय काव्य के प्रथम प्रणेता का श्रेय युगनिर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है। उन्हीं से प्रभावित होकर या उनके अनुकरण में बाद में अनेक कवियों ने राष्ट्रीय-काव्य निर्माण में अपनी मौलिकता का परिचय

---

१ हिन्दी साहित्य का नया क्षितिज (प्रतापनारायण टंडन का साहित्य), राजेन्द्रमोहन अग्रवाल पृ० ८०

२ जैनेन्द्र व्यक्ति कथाकार और चिन्तक, म० बाँकेबिहारी भटनागर, पृ० १०९-११०

दिया जिनमें श्रीधर पाठक, सत्यनारायण कविरत्न, मैथिलीशरण गुप्त, आदि गिनाये जा सकते हैं।[1]

विषय को मूल रूप में ग्रहण करनेवाला साहित्यकार शैली की मौलिकता से उसे अभिनव रूप में प्रस्तुत करता है। साकेत के प्रबंध शिल्प में प्राचीन महाकाव्यों की इतिवृत्तात्मक शैली का अनुसरण नहीं किया गया। राम कथा का पर्याप्त शोधन करके मार्मिक स्थलों के चयन द्वारा तथा कैकेई मंथरा संवाद से लेकर चित्रकूट की सभा तक जो घटनात्मक कथा चलती है उनका प्रत्यक्ष शैली में निरूपण कवि की मौलिकता का परिचायक है।[2]

मौलिकता या स्फुरण साहित्यकार की रुचि और योग्यता से सर्वाधिक संबंध रखता है। वह रुचि के अनुसार प्रवृत्ति और प्रयासों में अधिक आनन्द पाता है और अपनी योग्यता का बार-बार परख के उसमें परिष्कार और वृद्धि का प्रयत्न करता है। इस वस्तु को पाठक एकाग्रता से रचना पढ़कर समझ सकता है। और उसकी भी वैसी ही रुचि और योग्यता हो तो वह उसका अभिप्रशंसन और अनुशीलन करने में भी सफलता पाता है। वृन्दावनलाल वर्मा की रचनाओं की समीक्षा करते हुए लिखा गया है— वर्माजी स्वयं संगीत, चित्रकला और मूर्ति कला के गहरे प्रेमी हैं। हम उनके संगीत कला के ज्ञान का उपयोग कई पुस्तकों में देखते हैं। उदा० मृगनयनी का बैजनाथ गायक और संगीतज्ञ है। माधवजी सिंधिया में रानी बेगम सितार में दक्ष है और इनके माध्यम से जितने सूक्ष्मातिसूक्ष्म संगीत ज्ञान और कौशल का प्रदर्शन है यह एक कुशल संगीतज्ञ एवं संगीत प्रेमी ही समझ सकता है।'[3]

४ चिंतन

साहित्यकार के ज्ञान की धारा अंतर्मुखी होने पर रचना में चिंतन की बहुलता आ जाती है। उसमें सिद्धांत का निरूपण या आदर्श की स्थापना की प्रवृत्ति होती है, समस्या का समाधान या अस्पष्ट को स्पष्ट किया जाता है तथा पुराने विचार को नये रूप में प्रस्तुत किया जाता है। ये सारी विशेषताएँ मौलिक चिंतन की परिचायिका हैं। जिन उदाहरणों और निष्कर्षों को प्रस्तुत किया जाता है वे भी चिंतक के अपने अनुभव और तर्क प्रणाली पर आश्रित होते हैं। एक तथ्य के उदाहरण द्वारा इसकी व्याख्या करने से मौलिक चिंतन का स्वरूप स्पष्ट होगा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है— न्यायाधीश न्याय करता है, कारीगर ईंटें जोड़ता है। समाज कल्याण के विचार से न्यायाधीश का साधारण व्यवहार में कारीगर के प्रति यह प्रकट करना उचित नहीं कि तुम हमसे छोटे हो। जिस जाति में छोटाई-बड़ाई का अभिमान जगह जगह जम कर दृढ़ हो जाता है उसके भिन्न भिन्न

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (१६०० १६२५) श्रीकृष्णलाल, पृ० ८२
२ मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य डा० कमलाकान्त पाठक, पृ० ४१६
३ वृन्दावनलाल वर्मा—साहित्य और समीक्षा सियारामशरण गुप्त, पृ० ३४

वर्गों के बीच स्थायी ईर्ष्या स्थापित हो जाती है और सब शक्ति का विकास बहुत कम अवसरों पर देखा जाता है। '[1] इस प्रकार के अनेक तथ्यों की व्याख्या में मौलिक चिंतन की ओर निर्देश करते हुए निष्कर्ष रूप में व्याख्याकार ने लिखा है— मनोविकार, जीवन-व्यवहार, मनोवैज्ञानिक तथ्य, समाज दर्शन, धर्म के स्वरूप और वर्तमान स्थिति, विश्वजनीन चिरंतन सत्य, काव्य के स्वरूप, साहित्य के सिद्धान्त आदि पर तो आचार्य शुक्ल ने सर्वथा मौलिक और पृथक चिन्तन पद्धति का परिचय दिया है। उनमें उनकी बौद्धिक स्पष्टता, प्रतिभा की पकड़, धुली निखरी धारणा और विश्लेषणात्मक मानसिक प्रक्रिया का पता चलता है। अनेक वाक्य तो आदर्श और कहावत के रूप में प्रयोग किये जाने लायक हैं।[2]

५ मौलिकता के अध्ययन द्वारा लेखक के व्यक्तित्व का साक्षात्कार

लेखक के व्यक्तित्व-दर्शन की यह प्रक्रिया मौलिकता के अनुसंधान कार्य में बहुत उपयोगी और महत्वपूर्ण है। लेखक के भाव और बुद्धि को हम अपनी सहृदयता और चिंतन के पारदर्शी माध्यम से ही साक्षात कर सकते हैं। लेखक के जीवन और कृतियों का जितना गहरा आत्मीयतापूर्ण अध्ययन किया जायगा उतना ही वह सत्य के अधिक निकट और समग्र होगा। व्यक्तित्व दर्शन में विश्लेषण और संश्लेषण दोनों प्रक्रियाएँ आवश्यक हैं। संभव है विश्लेषण की प्रत्येक इकाई से हम कुछ भी विशेष की उपलब्धि न कर पर तु उन्हीं की समग्रता में एक नये चित्र को उभरते हुए हम देख सकते हैं। महादेवी लिखती हैं— 'बहिन सुभद्रा का चित्र बनाना कुछ सहज नहीं है क्योंकि चित्र की साधारण जान पड़ने वाली प्रत्येक रेखा के लिए उनकी भावना की दीप्ति संचारिणी दीपशिखा बनकर उसे असाधारण कर देती है। एक एक करके देखने से कुछ भी विशेष नहीं कहा जायगा परन्तु सबकी समग्रता में जो उद्भासित होता था उसे दृष्टि से अधिक हृदय ग्रहण करता था।'[3]

६ तुलनात्मक अध्ययन

मौलिकता के अध्ययन में एक और दृष्टिकोण है—परम्परा के संदर्भ में पूर्ववर्ती समकालीन और परवर्ती लेखकों के साथ तुलनात्मक अध्ययन द्वारा विवेच्य लेखक की मौलिकता की खोज की जाय। पूर्ववर्ती शायद युग निर्माता या प्रारम्भकर्ता हो सकता है उसने प्रवर्तन का कार्य बाद के लेखकों के लिए किया हो तो वह उसकी मौलिक प्रतिभा का सूचक होगा। समकालीनों के साथ समान असमान तत्वों के

---

१ चिंतामणि पृ० ११२

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जयनाथ नलिन पृ० ४०

३ पथ के साथी पृ० ६

मौलिक ढंग से दिखाया है। रीतिकालीन कवि और आचार्य चिन्तामणि इसी कवि के हैं जिन्होंने मात्र परम्परा का अंधानुकरण न करते हुए अपनी मौलिक सूझ और उद्भावना का परिचय दिया है।"[1] गुण प्रकरण में वामनसम्मत गुणों का मम्मटसम्मत तीन गुणों में समावेश इन्होंने सफलतापूर्वक दिखाया है। कुछ एक रचनाओं पर इन्होंने मूल ग्रंथकार से असहमति प्रकट की है। मम्मटसम्मत काव्य लक्षण को अपनाते हुए भी अलंकार की अनिवार्यता का प्रश्न न उठाकर इन्होंने प्रकारान्तर से उसके महत्त्व को कम नहीं किया। विश्वनाथ के समान हाव, भाव आदि सयत्न अलंकारों को स्वतन्त्र न मानकर इन्हें अनुभाव का ही अंग माना है। मद तथा मरण नामक संचारी भावों को इन्होंने अपेक्षाकृत पुष्ट एवं स्वस्थ रूप दिया है। इसी प्रकार उदारता, गुण में अर्थ-चारुता और अर्थव्यक्ति गुण में अलंकियता के समावेश द्वारा इन्होंने इन गुणों का रूप और भी अधिक निखार दिया है।[2]

७ नयी

हिन्दी सर्वप्रथम 'कौंसिल' और 'छंद' लिखनेवाले 'हरिऔध' हैं और संस्कृत के आर्या छन्द का प्रयोग करने वाले रामचरित उपाध्याय हैं। साहित्यिक गति-विधियों में क्रान्ति लाने वाले साहित्यकार दिशानिर्देशक होते हैं। वे अपनी अन्तर्दृष्टि से अधिक प्रेरित होते हैं परम्परा और ग्रहण, प्रभाव, प्रेरणा आदि स्रोत तो निमित्त मात्र होते हैं। आगामी युग चेतना के मर्म को हृदयंगम करने वाली उनकी प्रतिभा साहित्य जगत को नूतनता से समृद्ध बनाती है। लाला भगवानदीन के 'वीर प्रताप' का परिचय इसी रूप में प्राप्त होता है—"प्राचीन काव्य के आदर्शों और भावों की शिथिलता का परिचय सबसे अधिक आख्यानक गीतियों में मिलता है। उनमें काव्य की पूर्व प्रचलित शैली का तनिक भी आभास नहीं मिलता वरन् उनमें भावी काव्यादर्शों की पूर्व-छाया भी मिलती है। ये काव्य नये नूतन युग की अग्रदूत हैं। उदा० लाला भगवानदीन का 'वीर प्रताप' रीतिकालीन काव्य-परम्परा और आदर्श, भाषा और छन्द रूप और शैली से बिलकुल विपरीत है फिर भी उसका साहित्यिक गौरव कम नहीं है।"[3]

प्रेमचन्द की मौलिकता सर्वविदित है। गांधीजी और प्रेमचन्द समकालीन थे। प्रेमचन्द पर गांधी दर्शन का प्रभाव माना गया है परन्तु इसके साथ प्रेमचन्द स्वयं भी इस विचार धारा से प्रेरित थे। इस प्रकार मौलिकता की खोज के लिए समकालीन के प्रभाव के समय के पूर्व की रचनाओं के सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता

---

१ आचार्य भिखारीदास, डा० नारायणदास खन्ना पृ० ३१५

२ हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास षष्ठ भाग, रीतिकाल, रीतिबद्ध काव्य, (सं० १७०० १९००), सं० नगेन्द्र पृ० ३१८

३ आधुनिक हिन्दी साहित्य १९०० १९२५ श्रीकृष्णलाल, पृ० ९७ ९८

है, महान प्रतिभाशाली सर्वभिकालदर्शी और समष्टि से एक होने के कारण निर्वैयक्तिकता की अंतिम सीमा पर पहुँचकर भाव-भंगिमा और विचार प्रदर्शन की शैली और भाषा प्रयोग में भिन्न होते हुए भी तत्त्वतः एक ही वस्तु का प्रकाशन करते हैं। वह प्रतिभाशाली लेखक हो या महात्मा, राजनेता हो या धर्मात्मा, गरीब हो या अमीर, पंडित ब्राह्मण हो या कबीर दादू की तरह अशिक्षित और निम्न वर्ग का उनके ध्येय और प्रतिपाद्य विषय में अद्भुत एकता दृष्टिगोचर होती है। प्रेमचन्द के प्रथम उपन्यास 'वरदान' का विवेचन करने पर निष्कर्ष मिला — यदि भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का आविर्भाव नहीं होता तो भी प्रेमचन्द के साहित्य के मूल स्वरूप में कोई मौलिक अंतर नहीं आता क्योंकि हम देख चुके हैं कि 'वरदान' में मूलतः वे सब तत्त्व विद्यमान हैं जिनका विकास उनके शेष कृतित्व में है।[1]

उपसंहार

इस प्रकार की प्रतिभा प्रेरणा में भी अपने मौलिकता का स्थान होता है उनके अवचेतन मन की क्रियाशीलता उनके अन्तर्मन की उदात्त भूमिका की द्योतक होती है। प्रसाद साहित्य ने इसी भूमिका पर प्राचीन विधान का अभिनव दर्शन प्रस्तुत कर मानव के हृदय और बुद्धि में सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है। उनकी मौलिकता में कल्पना का सुरुचिपूर्ण योग देखने के लिए इतिहास के अगाध सागर में बिखरी सामग्री का प्रामाणिक ज्ञान अपेक्षित होगा। कल्पना के रूप में उनकी मौलिकता को हम दो रूपों में देख सकते हैं —[2]

(१) इतिहास की जो बातें विकीर्ण होकर इधर उधर दूर दूर पड़ गई हैं उन्हें एक सूत्र में बाँधने के लिए।

(२) नाटकीय पूर्णता के निमित्त कुछ अनैतिहासिक पात्रों की सृष्टि।

हिन्दी साहित्य के अनुसंधान कार्य में मौलिकता पर साहित्यकार के व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रसंग में अनेक पहलुओं पर विचार किया गया है और आगे भी होता रहेगा। प्रेरणा, प्रभाव और मौलिकता का अध्ययन किसी भी एक के अध्ययन के लिए अनिवार्य है। इस अध्ययन का एक रूप 'हिन्दी [illegible] का नया क्षितिज' में

आधुनिक उपन्यासों में लक्षित होने वाली नवीनता के आविर्भाव के मूल में चार बातें दृष्टिगोचर हुई हैं[1]—

१ रूपाकार की अपेक्षाकृत परम्परा मुक्तता,

२ महान प्रतिभावान कलाकारों की नवनवोन्मेषिणी शक्ति

३ नए परिवर्तित विषय का प्रादीपन तथा उसके सुचारु निर्वाह की सहज प्रयत्नशीलता, और

४ युगधर्मी उपन्यास की यथार्थोन्मुखता

अनुसंधान कार्य में साहित्यकार की मौलिकता से निश्चित नहीं होती अनुसंधाता से भी मौलिकता की अपेक्षा की जाती है। उसके मौलिक योगदान के अभाव में पी एच डी आदि शोधन पर आधारित उपाधियाँ के योग्य नहीं माना जाता। वह मौलिक होकर भी किसी नवीन साहित्य की सृष्टि नहीं करता है उसकी गवेषणा पर आधारित आलोचना द्वारा साहित्यकार की रचनाओं के उन अभिन्न परन्तु महत्त्वपूर्ण तथ्यों और तत्त्वों को प्रकाश में लाता है जिस पर अब तक किसी ने अपनी लेखनी नहीं उठायी है उसे भ्रामक मतों को शुद्ध और सत्य रूप में पुनः स्थापित करता है, लुप्त सूत्र कृतियों का संपादन कर उनकी प्रामाणिकता सिद्ध करती है और कृति विषयक विचारों को अपनी भाषा शैली में प्रस्तुत कर दूसरों के लिए अध्ययन का नया क्षेत्र उद्घाटित कर देता है।

---

१ अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्पविधि डा० सत्यपाल चुघ, पृ० २१

है, महान प्रतिभाशाली सर्वत्रिकालदर्शी और समष्टि से एक होने के कारण निर्वैयक्तिकता की अंतिम सीमा पर पहुंचकर भाव भंगिमा और विचार प्रदर्शन की शैली और भाषा प्रयोग में भिन्न होते हुए भी तत्त्वतः एक ही वस्तु का प्रकाशन करते हैं। वह प्रतिभाशाली लेखक हो या महात्मा राजनेता हो या धर्मात्मा गरीब हो या अमीर, पंडित ब्राह्मण हो या कबीर दादू की तरह अशिक्षित और निम्न वर्ग का उनके ध्येय और प्रतिपाद्य विषय में अद्भुत एकता दृष्टिगोचर होती है। प्रेमचन्द के प्रथम उपन्यास वरदान का विवेचन करने पर निष्कर्ष मिला — 'यदि भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का आविर्भाव नहीं होता तो भी प्रेमचन्द के साहित्य के मूल स्वरूप में कोई मौलिक अंतर नहीं आता क्योंकि हम देख चुके हैं कि वरदान' में मूलतः वे सब तत्त्व विद्यमान हैं जिनका विकास उनके शेष कृतित्व में है।[1]

उपसंहार

इस प्रकार की प्रतिभा प्रेरणा में भी आगे मौलिकता का स्थान होता है उनके अवचेतन मन की क्रियाशीलता उनके ऊर्ध्वमन की उदात्त भूमिका की द्योतक होती है। प्रसाद साहित्य ने इसी भूमिका पर प्राचीन विधान का अभिनव दर्शन प्रस्तुत कर मानव के हृदय और बुद्धि में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की है। उनकी मौलिकता में कल्पना का सुरुचिपूर्ण योग देखने के लिए इतिहास के अगाध सागर में बिखरी सामग्री का प्रामाणिक ज्ञान अपेक्षित होगा। कल्पना के रूप में उनकी मौलिकता को हम दो रूपों में देख सकते हैं—[2]

(१) इतिहास की जो बातें विकीर्ण होकर एक दूसरे से दूर पड़ गई हैं, उन्हें एक सूत्र में बांधने के लिए।

(२) नाटकीय पूर्णता के निमित्त कोरे अनैतिहासिक पात्रों की सृष्टि।

हिन्दी साहित्य के अनुसंधान कार्य में मौलिकता पर साहित्यकार के व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रकाश में अनेक पहलुओं पर विचार किया गया है और आगे भी होता रहेगा। प्रेरणा प्रभाव और मौलिकता का अध्ययन किसी भी एक के अध्ययन के लिए अनिवार्य है। इस अध्ययन का एक रूप हिन्दी साहित्य का नया क्षितिज[3] में देखा जा सकता है। मौलिकता की खोज में सीधा स्पष्ट मार्गदर्शन इन पंक्तियों में मिलेगा—' उपन्यास रचना में जिस प्रक्रिया से लक्ष्य तथा संवेदनानुभूति उसके तत्त्वों— कथानक, पात्र वातावरण आदि—में परिणत हो औपन्यासिक रूप का निर्माण करते हैं वही उनकी शिल्प विधि है। दृष्टिकोण तथा मूल अनुभूति शिल्प का नियमन करते हैं और शिल्प से ही वे व्यंजित होते हैं।'[4]

---

१ प्रेमचन्द और गांधीवाद रामदीन गुप्त पृ० १४८
२ प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन जगन्नाथप्रसाद शर्मा पृ० २५०
३ प्रतापनारायण टंडन का साहित्य राजेन्द्रमोहन अग्रवाल
४ अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्पविधि डा० सत्यपाल चुघ पृ० १६

आधुनिक उपन्यासों में लक्षित होने वाली नवीनता के आविर्भाव के मूल में चार बातें दृष्टिगोचर हुई हैं[1]—

१ रूपाकारों की अपेक्षाकृत परम्परा मुक्तता
२ महान प्रतिभाओं व नाटकों की नवनवोन्मेषिणी शक्ति
३ नए परिवर्तित विषय का प्रोद्दीपन तथा उसके सुचारु निर्वाह की सहज प्रयत्नशीलता और
४ युगधर्मी उपन्यास की यथार्थोन्मुखता

अनुसंधान कार्य में साहित्यकार की मौलिकता से इतिश्री नहीं होती अनुसंधाता में भी मौलिकता की अपेक्षा की जाती है। उसके मौलिक योगदान के अभाव में वह पी एच डी आदि मनोरथ पर आधारित उपाधियों के योग्य नहीं माना जाता। उस मौलिक होकर भी किसी ललित साहित्य की सृष्टि नहीं करता है उस की गवेषणा पर आधारित आलोचना द्वारा साहित्यकार की रचनाओं के उन उपेक्षित परन्तु महत्त्वपूर्ण तथ्यों और तत्वों को प्रकाश में लाता है जिन पर अब तक किसी ने अपनी लेखनी नहीं उठायी है उसे आमक मतों को शुद्ध और सत्य रूप में पुन स्थापित करता है, लुप्त मूल कृतियों का सपादन कर उनकी प्रामाणिकता सिद्ध करती है और कृति विषयक विचारों को अपनी भाषा शैली में प्रस्तुत कर दूसरों के लिए अध्ययन का नया क्षेत्र उत्पादित कर देता है।

---

१ अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्पविधि डा० सत्यपाल चुघ पृ० २१